यू जी सी अनुमोदित पत्रिका
ISSN 0523-1418

अंक 309 वर्ष 62

भाषा

जुलाई–अगस्त 2023

सत्यमेव जयते

केंद्रीय हिंदी निदेशालय
उच्चतर शिक्षा विभाग
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार

भाषा
जुलाई–अगस्त 2023

भाषा (द्वैमासिक)

लेखकों से अनुरोध

1. ***भाषा*** में छपने के लिए भेजी जाने वाली सामग्री यथासंभव सरल और सुबोध होनी चाहिए। रचनाएँ टंकित रूप में (यूनिकोड में) भेजी जाएँ। भेजी जानी वाली सामग्री के साथ रचनाकार कृपया अपनी पासपोर्ट आकार की फोटो, पूरा पता और अपना संक्षिप्त परिचय भी अवश्य भेजें।

2. लेख आदि सामान्यतः फुल स्केप आकार के दस टंकित पृष्ठों से अधिक नहीं होने चाहिए और हाशिया छोड़कर एक ओर ही टाइप किए जाने चाहिए।

3. अनुवाद तथा लिप्यंतरण के साथ मूल लेखक की अनुमति भेजना अनिवार्य है। इससे रचना पर निर्णय लेने में हमें सुविधा होगी। मूल कविता का लिप्यंतरण टंकित होने पर उसकी वर्तनी संबंधी त्रुटियाँ प्रायः नहीं होंगी, अतः टंकित लिप्यंतरण ही अपेक्षित है। रचना में अपना नाम और पता हिंदी के साथ–साथअंग्रेजी में भी देने का कष्ट करें।

4. सामग्री के प्रकाशन विषय में संपादक का निर्णय अंतिम माना जाएगा।

5. रचनाओं की अस्वीकृति के संबंध में अलग से कोई पत्राचार कर पाना हमारे लिए संभव नहीं है, अतः रचनाओं के साथ डाक टिकट लगा लिफाफा, पोस्टकार्ड आदि न भेंजे। इन पर कोई कार्रवाई नहीं की जाएगी।

6. अस्वीकृत रचनाएँ न लौटा पाने की विवशता/असमर्थता है। कृपया रचना प्रेषित करते समय इसकी प्रति अपने पास अवश्य रख लें।

7. भाषा में केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा स्वीकृत मानक हिंदी वर्तनी का प्रयोग किया जाता है। अतः रचनाएँ इसी वर्तनी के अनुसार टाइप करवाकर भेजी जाएँ।

8. समीक्षार्थ पुस्तकों की दो प्रतियाँ भेजी जानी चाहिए।

9. द्वैमासिक पत्रिका भाषा का ई–संस्करण केंद्रीय हिंदी निदेशालय की वेबसाइट (www.chdpublication.education.gov.in) पर देखा जा सकता है।

10. भाषा पत्रिका में प्रकाशित अंकों से संबंधित लेखकों/पाठकों की टिप्पणियों/सुझावों का स्वागत है। पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं पर पाठकों की टिप्पणियों को 'आपने लिखा' शीर्षक के अंतर्गत प्रकाशित किया जाएगा।

संपादकीय कार्यालय

संपादक, भाषा, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, पश्चिमी खंड–7, रामकृष्णपुरम,
नई दिल्ली–110066

भाषा

जुलाई–अगस्त 2023

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा अनुमोदित पत्रिका (क्रमांक–16)

अध्यक्ष, परामर्श एवं संपादन मंडल
प्रो. सुनील बाबुराव कुलकर्णी 'देशगव्हाणकर'

परामर्श मंडल
प्रो. सूर्यप्रसाद दीक्षित
सुश्री ममता कालिया
प्रो. सत्यकाम
प्रो. करुणाशंकर उपाध्याय
प्रो. पूरनचंद टंडन
प्रो. शैलेंद्र शर्मा
डॉ. एम. गोविंदराजन
डॉ. जे.एल.रेड्डी
श्री रविशंकर 'रवि'

संपादक
डॉ. अनिता डगोरे

सह–संपादक
डॉ. किरण झा
मीनाक्षी जंगपांगी

सहायक संपादक
श्री प्रदीप कुमार ठाकुर

कार्यालयीन व्यवस्था
विक्रान्त हुड्डा
संजीव कुमार

केंद्रीय हिंदी निदेशालय, उच्चतर शिक्षा विभाग,
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार

ISSN 0523-1418
भाषा (द्वैमासिक)
वर्ष : **62 अंक : 4 (309)**
जुलाई–अगस्त **2023**

संपादकीय कार्यालय
केंद्रीय हिंदी निदेशालय,
उच्चतर शिक्षा विभाग,
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार,
पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम्,
नई दिल्ली-110066
वेबसाइट : www.chdpublication.education.gov.in
www.chd.education.gov.in
ई–मेल : bhashaunit@gmail.com
दूरभाषः 011-26105211/12

बिक्री केंद्र :
नियंत्रक,
प्रकाशन विभाग, सिविल लाइंस,
दिल्ली - 110054
वेबसाइट : www.deptpub.gov.in
ई–मेल : acop-dep@nic.in
दूरभाष : 011-23817823/ 9689

सदस्यता हेतु ड्राफ्ट नियंत्रक,
प्रकाशन विभाग,
दिल्ली के पक्ष में भेजें।

बिक्री केंद्र :
केंद्रीय हिंदी निदेशालय,
उच्चतर शिक्षा विभाग,
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार,
पश्चिमी खंड-7, रामकृष्णपुरम्,
नई दिल्ली-110066
वेबसाइट : www.chdpublication.education.gov.in
www.chd.education.gov.in
ई–मेल : bhashaunit@gmail.com
दूरभाषः 011–26105211 / 12

सदस्यता हेतु ड्राफ्ट निदेशक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय,
नई दिल्ली के पक्ष में भेजें।

1. शुल्क सीधे www.bharatkosh.gov.in → Quick Payment → Ministry (007 Higher Education) → Purpose (Education receipt) में digital mode से जमा करवाई जा सकती है।
2. कृपया दिए गए बिंदुओं के आधार पर सूचनाएँ देते हुए संलग्न प्रोफॉर्मा भरकर भेजें।
3. भाषा पत्रिका की सदस्यता हेतु आवेदन पत्र निदेशालय की वेबसाइट www.chdpublication.education.gov.in से डाउनलोड किया जा सकता है।

मूल्य :			
1. एक प्रति का मूल्य	=	रु. 25.00	
2. वार्षिक सदस्यता शुल्क	=	रु. 125.00	
3. पंचवर्षीय सदस्यता शुल्क	=	रु. 625.00	(डाक खर्च सहित)
4. दस वर्षीय सदस्यता शुल्क	=	रु. 1250.00	
5. बीस वर्षीय सदस्यता शुल्क	=	रु. 2500.00	

पत्रिका में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। इनसे भारत सरकार या संपादन मंडल का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

अनुक्रमणिका

निदेशक की कलम से

संपादकीय

आलेख

1.	मणिपुरी भाषा के शारीरिक उपांग संबंधी मुहावरे	तेनसुबम मंलेम्बा सिंह ह. सुवदनी देवी	09
2.	जन–मन के निकट '	ओमप्रकाश शर्मा 'प्रकाश'	18
3.	सामाजिक संजाल के मध्य बड़े स्पेस की तलाश	रीना कुमारी चौधरी	21
4.	मध्यकालीन भक्ति–आंदोलन के विकास में असम के श्रीमंत शंकरदेव और माधवदेव का अवदान	दिनेश साहू	28
5.	काव्यशास्त्र में वर्णित शांत रस का दार्शनिक परिशीलन	मृगांक मलासी	37
6.	हिंदी और दक्षिण भारतीय भाषाओं का अंतरसंबंध	अजीत प्रियदर्शी	42
7.	लोकसाहित्य में सामाजिक–सांस्कृतिक परिवेश (विशेष संदर्भः हिमाचली लोकसाहित्य)	गुरमीत सिंह	53
8.	झारखंड के पग–पग पर गीत	अनिता रश्मि	73
9.	साहित्य में आंचलिक भाषाओं का स्वर माधुर्यः विलुप्त हो रहे लोकोक्ति, कहावतें व मुहावरे	सुरभि बेहेरा	80
10.	लघुकथाः अतीत से भविष्य की ओर	किशन लाल शर्मा	88
11.	अनुवाद और सांस्कृतिक संचरणः कुछ विचार	प्रमोद कोवप्रत	98

हिंदी कहानी

12. तुलसीदल गंगाजल	ऋता शुक्ल	105
13. अलविदा	सुमन सिंह	116

हिंदी कविता

14. माई कभी नहीं हँसेगी	भावना शेखर	121
15. इस घने अंधेरे में	सोनी पांडेय	124
16. माँ	भरत प्रसाद	126

अनूदित खंड (कहानी)

17. अंबा मरजानी (पंजाबी/हिंदी)	मूल : रेमन अनुवाद : केवल गोस्वामी	128
18. मृतकों का मार्ग (अफ्रीकी/हिंदी)	मूल : चिनुआ अचेबे अनुवाद : सुशांत सुप्रिय	134

अनूदित खंड (कविता)

19. एक औरत (बोडो/हिंदी)	मूल : अनिल बोडो अनुवाद : अंशु सारडा 'अन्वि'	138 140
20. लोहे की मिजराव (पंजाबी/हिंदी)	मूल : वनिता अनुवाद : रेखा सेठी	142 143

धरोहर

21. भोलाराम का जीव	हरिशंकर परसाई	144

परख

22. अर्थ तलाशते शब्द/राकेश शर्मा	गौरव गौतम	149
23. आलोचक का आत्मावलोकन/ गोपेश्वर सिंह	चंद्रभान सिंह यादव	155

संपर्क सूत्र **160**

सदस्यता फॉर्म **162**

निदेशक की कलम से

भारत विभिन्न भाषाओं और बोलियों का एक गुलिस्तान है। हमारे पास हड़प्पा, मौर्य से मुगल और अंग्रेजों की महान सभ्यताओं की धरोहर है। यदि हम भारतीय संस्कृति को करीब से देखें तो हमें ग्रीक (यूनानी) फारसी, हड़प्पा, अरबी, मंगोलियन, वैदिक आर्यन द्रविड़ और नवीनतम मुगल और अंग्रेजी सभ्यताओं की झलक मिल जाएगी। भारत ने हमेशा नई संस्कृतियों और रीति–रिवाजों का स्वागत किया है और विभिन्न रंगों की निराली छटाओं के साथ खुद को समृद्ध किया है।

भाषा के बिना न तो किसी देश की कल्पना की जा सकती है और न किसी समाज की इसलिए भाषा की उपेक्षा करना अपने अस्तित्व को नकारना हैं। हिंदी हमारे देश की राजभाषा के रूप में प्रतिष्ठित हैं। हिंदी की सहजता, वैज्ञानिकता और रागात्मकता भी भारत की प्रांतीय भाषाओं में मिल जाती है। हमारे देश के प्रतिष्ठित साहित्यकारों ने कई विदेशी भाषा– अंग्रेजी, पोलिश, जर्मन, हंगेरियन, डेनिश, चीनी, जापानी इत्यादि भाषाओं का अनुवाद करके विश्वस्तरीय एकता का परिचय दिया है।

आज मीडिया का जमाना है। इंटरनेट के कारण सारा विश्व एक ग्लोबल गाँव के रूप में विकसित होता जा रहा है। ऐसे में हिंदी और भारतीय भाषाओं को एक साथ विश्वस्तर पर स्थापित करने के अवसर बढ़ते जा रहे हैं। हिंदी विश्वस्तर पर तभी प्रतिष्ठा पाएगी जब अन्य भारतीय भाषाओं को साथ लेकर चलेंगी। आवश्यकता है भारतीय भाषाओं के शब्दों, शैलियों और सांस्कृतिक चेतना से ओत–प्रोत होकर हिंदी अधिक सहज और संग्रहणीय बने इससे हिंदी के साथ अन्य भारतीय भाषाओं के अन्तर्संबंध बढ़ेंगे।

भाषा के इस अंक के माध्यम से सार्थक साहित्य की विभिन्न आलेखों, कहानियों, कविताओं को समाहित करके पत्रिका ने अनेक आयामों को स्पर्श किया है।

भाषा के संबंध में आपके विचार सदैव स्वीकार्य एवं स्वागत योग्य है। इस अंक के संबंध में हमें अपने पाठकों की प्रतिक्रियाओं की प्रतीक्षा रहेगी।

(प्रो.सुनील बाबुराव कुलकर्णी 'देशगव्हाणकर')

लीक पर वे चलें....

लीक पर वे चलें जिनके
चरण दुर्बल और हारे हैं,
हमें तो हमारी यात्रा से बनें
ऐसे अनिर्मित पंथ प्यारे हैं।

साक्षी हों राह रोके खड़े
पीले बाँस के झुरमुट
कि उनमें गा रही है जो हवा
उसी से लिपटे हुए सपने हमारे है।
शेष जो भी हैं–
वक्ष खोले डोलती अमराइयाँ
गर्व से आकाश थामे खड़े
ताड़ के ये पेड़,
हिलती क्षितिज की झालरें
झूमती हर डाल पर बैठी
खिलखिलाती शोख अल्हड़ हवा,
गायक–मंडली–से
थिरकते आते गगन में मेघ
वाद्य–यंत्रों–से पड़े टीले
नदी बनने की प्रतीक्षा में, कहीं नीचे
शुष्क नाले में नाचता एक अंजुरी जल,
सभी, बन रहा है कहीं जो विश्वास
जो संकल्प हममें
बस उसी के सहारे हैं।

– सर्वेश्वरदयाल सक्सेना

संपादकीय

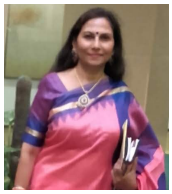

'भाषा' पत्रिका का सदैव से यह प्रयास रहा है कि वह पाठकों के समक्ष नए–नए विषयों व विचार को लेकर आए। द्वैमासिक पत्रिका 'भाषा' का जुलाई–अगस्त 2023 अंक एक सामान्य अंक है जिसमें लेखकों व रचनाकारों ने अपने लेख कहानी, कविता व समीक्षा के माध्यम से अपने विचारों को पाठकों के समक्ष रखा है।

भारत विश्व का इकलौता ऐसा देश है जहाँ अनेक भाषाएँ व बोलियाँ बोली जाती हैं। वर्ष 2011 की गणना के अनुसार भारत में 1369 भाषाएँ हैं। जिनमें से 121 भाषाएँ 10 हजार से भी अधिक लोगों द्वारा बोली जाती हैं। दुर्भाग्यवश समय के साथ–साथ कई भाषाएँ विलुप्त हो गईं और होती जा रही हैं। ऐसे में भारतीय भाषाओं व बोलियों को बचाए रखना लेखकों व रचनाकारों की एक बड़ी जिम्मेदारी बन जाती है। इस अंक में भारत के कुछ राज्यों में बोली जाने वाली बोलियों में प्रयुक्त होने वाले मुहावरे, लोकोक्तियों व कहावतों का प्रयोग इसका उदाहरण है। भारत के कई राज्य ऐसे हैं जहाँ प्राचीन काल से आदिवासी व जनजाति समुदाय के लोग रहते आए हैं। झारखंड में आदिवासी समुदाय द्वारा गाए जाने वाले पारंपरिक गीत हों या हिमाचली लोक साहित्य या ओडिया साहित्य हो इन सभी के माध्यम से उनकी संस्कृति, सभ्यता व परंपरा का बोध होता है।

धरोहर के रूप में जाने–माने लेखक आलोचक व व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई की कहानी 'भोलाराम का जीव' प्रस्तुत है। हरिशंकर परसाई जी पाठकों के बीच अपनी व्यंग्य लेखनी के लिए सदैव जाने जाते रहे हैं एवं समाज में व्याप्त कुरीतियों व भ्रष्टाचार पर अपनी लेखनी द्वारा कुठाराघात करते रहे। उनकी चुनिंदा कहानियों में से 'भोलाराम का जीव' एक चर्चित कहानी है। जिसको पढ़कर सुधिजन पाठक इस कहानी के व्यंग्य का आनंद ले सकेंगे। उनकी जन्मशती पर प्रस्तुत कहानी के माध्यम से 'भाषा' पत्रिका की ओर से उनको भावभीनी श्रद्धांजलि।

अनिता

(डॉ. अनिता डगोरे)

जब वर्षा शुरू होती है

जब वर्षा शुरू होती है
कबूतर उड़ना बंद कर देते हैं
गली कुछ दूर तक भागती हुई जाती है
और फिर लौट आती है।

मवेशी भूल जाते हैं चरने की दिशा
और सिर्फ रक्षा करते हैं उस धीमी
गुनगुनाहट की
जो पत्तियों से गिरती है
सिप् सिप् सिप् सिप्...

जब वर्षा शुरू होती है
एक बहुत पुरानी–सी खनिज गंध
सार्वजनिक भवनों से निकलती है
और सारे शहर पर छा जाती है

जब वर्षा शुरू होती है
तब कुछ नहीं होता
सिवा वर्षा के
आदमी और पेड़
जहाँ पर खड़े थे वहीं पर खड़े रहते हैं
सिर्फ पृथ्वी घूम जाती है उस आशय की ओर
जिधर पानी के गिरने की क्रिया का रुख़ होता है।

केदारनाथ सिंह

मणिपुरी भाषा के शारीरिक उपांग संबंधी मुहावरे

ह. सुवदनी देवी
मणिपुरी एवं हिंदी में भाषाविज्ञान संबंधी लेखनकार्य 'हिंदी.मणिपुरी अध्येता कोश','मणिपुरी लोक साहित्य' आदि कई पुस्तकें प्रकाशित। पत्र–पत्रिकाओं में कई शोध–आलेख प्रकाशित। संप्रति–विभागाध्यक्ष,हिंदी विभाग,मणिपुर विश्वविद्यालय,कांचीपुर,इंफाल।

तेनसुबम मंलेम्बा सिंह
मंलेम्बा–लोक साहित्य में विशेष अभिरुचि। विविध पत्र–पत्रिकाओं में शोध आलेख प्रकाशित। संप्रति–शोधार्थी,मणिपुर विश्वविद्यालय।

मुहावरा हर भाषा का एक महत्वपूर्ण अंश है। इसका प्रयोग भाषा को प्रभावशाली बनाता है। इस आलेख में मणिपुर में प्रचलित मुहावरों का संक्षिप्त विवरण कुछ उदाहरणों के साथ प्रस्तुत किया गया है। इसमें मुहावरों की कुछ परिभाषाएँ एवं विशेषताएँ प्रस्तुत की गई हैं। साथ ही कुछ शारीरिक उपांगों पर आधारित मुहावरों को उदाहरण सहित प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। मुहावरों की व्याकरणिक संरचना पर भी ध्यान दिया गया है।

लोकोक्ति और मुहावरे दोनों भाषा के सारगर्भित तत्व हैं। दोनों का प्रयोग लोक जीवन में होता है। लोकोक्ति में जीवन के किसी सार्वभौम तत्व को पुष्ट या प्रमाणित किया जाता है और मुहावरे में किसी भाव या विचार आदि को। मुहावरे अपना शाब्दिक अर्थ छोड़कर रूढ़ अर्थ ग्रहण कर लेते हैं। मुहावरे अपने आप में ऐसे अर्थपूर्ण वाक्यांश हैं जो अपूर्ण होते हुए भी भाषा या बोली को नई शक्तिपूर्ण ऊर्जा देकर अभिव्यक्ति विशेष को जीवंत एवं सजीव बना देते हैं। व्यंग्य अग्नि की ऐसी धार है जो शांत भाव से जीवन, समाज, साहित्य की अनेकार्थी व्यंजनाओं को समेटकर एक साथ जलधार भी है और असिधार का फलक भी। (भारतीय लोक साहित्य कोश भाग 1, पृ.188. मीमांसक और संपादक डॉ. सुरेश गौतम सह–संपादक डॉ. वीणा गौतम) मनुष्य जब अपने विचारों को संकेतात्मक ढंग से अप्रत्यक्ष या व्यंग्यात्मक ढंग से व्यक्त करना चाहता है तो गोपनीयता बनाए रखने के लिए मुहावरे के सूत्र के रूप में प्रयोग किया जाता है। मुहावरे के माध्यम से व्यक्त किए गए विचार सामान्य अर्थ का परित्याग कर विशिष्ट अर्थ ग्रहण कर लेते हैं अतः उसमें गोपनीयता आ जाती है जैसे अपनी पत्नी के अधीन रहने वाले व्यक्ति के लिए हिंदी में 'जोरू का गुलाम' नाम से एक मुहावरे का प्रचलन है। लेकिन इस तरह के प्रयोग के लिए मणिपुरी भाषा में एक मुहावरा

प्रचलन में है 'ओइना ङ़बा' हिंदी अनुवाद– ''बाएँ की जीत'' कहकर इस अर्थ को अभिव्यक्त किया जाता है। इससे प्रत्यक्ष रूप से अर्थ की अभिव्यक्ति न होकर अप्रत्यक्ष रूप से इसकी अभिव्यक्ति होती है। यही मुहावरे की विशेषता है।

मुहावरे का संबंध समस्त सृष्टि एवं लोकजीवन से होता है। इसमें मनुष्य कह नहीं पशु–पक्षी प्रकृति, उपयोगी वस्तुएँ, कार्य आदि उनकी सीमा में आ जाते हैं। अतः मुहावरे कई प्रकार के हो सकते हैं– जैसे शरीर विषयक, प्रकृति विषयक, जीव विषयक, क्रिया विषयक एवं अन्य विषयक आदि।

अन्य भाषाओं की तरह मणिपुरी भाषा में भी मुहावरों का खूब प्रचलन होता है। मणिपुरी भाषा में मुहावरों के संबंध में एक शब्द प्रचलित है 'पांथै'। 'पांथै शब्द 'पान + थै' से बना है। 'पान' का मतलब है 'बातचीत' और 'थै' का मतलब है 'टेढ़ा होकर बोलना'। अतः पानथै एक अभिधार्थ न होकर लक्ष्यार्थ का काम करता है। मणिपुरी भाषा के मुहावरे भी कई प्रकार के होते हैं। इन प्रकारों में यहाँ शरीरविषयक मुहावरों के बारे में उल्लेख किया जा रहा है।

अनेक मुहावरे शरीर के अंगों पर आधारित होते हैं। इन अंगों में सभी प्राणियों के अंगों का समावेश पाया जाता है, जैसे पशुओं की पूंछ, सींग, पंख आदि पर आधारित मुहावरे। शरीर के अंगों पर बने इन मुहावरों में अनेक प्रकार के भावों विचारों तथा क्रियाओं का प्रदर्शन भी मिलता है।

सिर से संबंधित विषयों पर आधारित मुहावरे– मणिपुरी भाषा में सिर संबंधी विषयों पर भी अनेक मुहावरे बनते हैं। नीचे तत्संबंधी मुहावरों के उदाहरण दिए जाते हैं :

1. मणिपुरी मुहावरे– **कोक् लैबा**
   शाब्दिक अनुवाद– सिरवाला
   हिंदी अर्थ– बुद्धिमान होना
2. मणिपुरी मुहावरा– **कोक् चिक्पा**
   शाब्दिक अनुवाद– सर दर्द होना
   हिंदी अर्थ– काम आसान न होना
3. मणिपुरी मुहावरा– **कोकता खुत हाप्पा**
   शाब्दिक अनुवाद– सिर पर हाथ डालना
   हिंदी अर्थ– दुख की सीमा न रहना
4. मणिपुरी मुहावरा– **कोकता सन्थि हानबा**
   शाब्दिक अनुवाद– सिर में गोबर भरना
   हिंदी अर्थ– अत्यंत मूर्ख होना

मुँह तथा उससे संबंधित विषयों पर आधारित मुहावरे :– अनेक मुहावरे मुँह, लार, जीभ, ओठ, दाँत आदि पर आधारित भी हैं। इन मुहावरों को मुँह से संबंधित

वर्ग में ही रखा जाना उचित होगा, क्योंकि जिह्वा, तालू, ओंठ, दाँत आदि सब मुँह के ही उपांग हैं। अतः उक्त सभी विषयों पर आधारित मुहावरों के उदाहरण नीचे दिए जाते हैं–

1. मणिपुरी मुहावरा– **चींदा पाओदानबा**
   शाब्दिक अनुवाद– जबान लड़ाना
   हिंदी अर्थ– आपस में कहा–सुनी होना
2. मणिपुरी मुहावरा–**चिन पोमबा**
   शाब्दिक अनुवाद– मुँह फूलना
   हिंदी अर्थ– गुस्सा दिखाना।
3. मणिपुरी मुहावरा– **चिंदा लाइ तोङबा**
   शाब्दिक अनुवाद– मुँह में भगवान बैठना
   हिंदी अर्थ– सही बात बताना
4. मणिपुरी मुहावरा– **चिंदगी लै चाइथरकपा**
   शाब्दिक अनुवाद– मुँह से फूल झड़ना
   हिंदी अर्थ– मुँह से बहुत ही कोमल, प्रिय और सुंदर बातें करना
5. मणिपुरी मुहावरा– **चिन–या केनगदबा वा**
   शाब्दिक अनुवाद– मुँह–दाँत–गिरनेवाली बात
   हिंदी अर्थ– अकथनीय या गंदी बात कहना

गर्दन से संबंधी मुहावरे :–

1. मणिपुरी मुहावरा– **ङ़क हायगतपा**
   शाब्दिक अनुवाद– गर्दन उठाना
   हिंदी अर्थ–घमंडी होना
2. मणिपुरी मुहावरा– **ङक कनबा**
   शाब्दिक अनुवाद– गर्दन कड़ा होना
   हिंदी अर्थ– अकड़ाव होना
3. मणिपुरी मुहावरा– **ङ़कचाओ थेकपा**
   शाब्दिक अनुवाद– बड़ी गर्दन तोड़ना
   हिंदी अर्थ– गर्वयुक्त होना

मुहावरे हाथों से संबंधित विषयों पर भी आधारित होते हैं। मणिपुरी भाषा में भी हाथों से संबंधित कई मुहावरे उपलब्ध हैं। नीचे हाथों के समस्त अवयवों तथा क्रियाकलापों आदि से संबंधित मुहावरे दिए जाते हैं। मणिपुरी भाषा में हाथ को खुत कहते हैं।

1. मणिपुरी मुहावरा– **खुत तत्पा**
   शाब्दिक अनुवाद– हाथ टूटना

हिंदी अर्थ– बिलकुल कंगाल होना

2. मणिपुरी मुहावरा– **खुत थुंबा**
   शाब्दिक अनुवाद– हाथ मीठा होना
   हिंदी अर्थ– किसी के हाथों से पौधा या बीज लगाने पर जल्दी उगता है, तभी कहा जाता है।
3. मणिपुरी मुहावरा– **खुत थोकनबा**
   शाब्दिक अनुवाद– हाथापाई होना
   हिंदी अर्थ– झगड़ा/लड़ाई होना
4. मणिपुरी मुहावरा– **खूत चङ्बा**
   शाब्दिक अनुवाद– हाथ डालना
   हिंदी अर्थ– शरीक होना
5. मणिपुरी मुहावरा– **खूत शाङबा**
   शाब्दिक अनुवाद– हाथ लंबा होना
   हिंदी अर्थ–चोरी करना
6. मणिपुरी मुहावरा– **खुदोंबी ना उङबा**
   शाब्दिक अनुवाद– उँगली से घुमाना
   हिंदी अर्थ– वश में रखना
7. मणिपुरी मुहावरा– **खुदोंबी शिङबा**
   शाब्दिक अनुवाद– उँगली दिखाना
   हिंदी अर्थ– चुनौती देना
8. मणिपुरी मुहावरा– **खुबी चीखाइबा**
   शाब्दिक अनुवाद– अँगूठा काटना
   हिंदी अर्थ– बहुत स्वादिष्ट होना

कलाई, बाँहें आदि से भी संबंधित मुहावरे मणिपुरी भाषा में उपलब्ध हैं। कलाई, बाहें आदि भी हाथ के उपांग हैं अतः इन उपागों से संबंधित मुहावरों को भी हाथों से संबंधित मुहावरों के अंतर्गत रखा गया है।

1. मणिपुरी मुहावरा–**खुदाङ पीफम तैबा**
   शाब्दिक अनुवाद– कलाई पर आँसू का दाग होना
   हिंदी अर्थ– रोकर, दुखी होकर रहना
2. मणिपुरी मुहावरा– **पांबोम तिङ्बा**
   शाब्दिक अनुवाद– बाँहें फैलाना
   हिंदी अर्थ– अपनेपन के साथ दूसरों की सहायता करना

हिंदी अर्थ– किसी के हाथों से पौधा या बीज लगाने से जल्दी उगता है, तभी यह मुहावरा कहा जाता है।

3. मणिपुरी मुहावरा– **खुत खाबा**
शाब्दिक अनुवाद– हाथ कड़वा होना
हिंदी अर्थ– पौधा या बीज लगाने पर नही उगने पर यह मुहावरा कहा जाता है।

पेट से संबंधित मुहावरे :–

1. मणिपुरी मुहावरा– **पुक खोंबा**
शाब्दिक अनुवाद– पेट गुड़गुड़ाना
हिंदी अर्थ– भूख लगना
2. मणिपुरी मुहावरा– **पुक नाबा**
शाब्दिक अनुवाद– पेट दुखना
हिंदी अर्थ– किसी के काम पर अस्वीकार प्रकट करना

आँख पर आधारित अनेक मुहावरे मणिपुरी भाषा में प्राप्त होते हैं। आँखों के अनेक भागों में पलक, भौंहें, आँसू, आदि आते हैं अतः आँख तथा उसके उपांगों पर आधारित मुहावरों के उदाहरण नीचे दिए जाते हैं :–

1. मणिपुरी मुहावरा– **मीत्ता ई काबा**
शाब्दिक अनुवाद– आँखों में खून चढ़ना
हिंदी अर्थ– अत्यधिक क्रोधित होना
2. मणिपुरी मुहावरा– **मीत खाङबा**
शाब्दिक अनुवाद– आँख का सहन होना
हिंदी अर्थ– देर तक जागना
3. मणिपुरी मुहावरा– **मीत नाबा**
शाब्दिक अनुवाद– आँख दुःखना
हिंदी अर्थ– देखने में अच्छा न लगना
4. मणिपुरी मुहावरा– **ममीत्ता खुदोंबी ना थिनबा**
शाब्दिक अनुवाद– आँख पर उँगली लगाना
हिंदी अर्थ– अच्छी तरह दिखाना

आँख के उपांग भौहें से संबंधित मुहावरेः

1. मणिपुरी मुहावरा– पीसुम सुकपा
शाब्दिक अनुवाद– भौं सिकुड़ना
हिंदी अर्थ– रोष प्रकट करना

कान संबंधी मुख्य मुहावरे :–

1. मणिपुरी मुहावरा– **नाकोङ सेङदोकपा**
शाब्दिक अनुवाद– कान साफ करना
हिंदी अर्थ– सुनने के लिए तत्पर होना

2. मणिपुरी मुहावरा– **नापा सेंदानबा**
शाब्दिक अनुवाद– ठीक से न सुनना
हिंदी अर्थ– अनसुनी करके गलत अर्थ लेना
3. मणिपुरी मुहावरा– **ना फक्लाङदा थेत्पा**
शाब्दिक अनुवाद– कान दीवार पर लगाना
हिंदी अर्थ– दूसरों की बात ध्यान से सुनना

मुँह से आधारित मुहावरे :–

1. मणिपुरी मुहावरा– **मचीन मेनबा**
शाब्दिक अनुवाद– मुँह ढँकना
हिंदी अर्थ– बात छिपाने के लिए घूस देना
2. मणिपुरी मुहावरा– **चीन पुथबा**
शाब्दिक अनुवाद– मुँह गिरना
हिंदी अर्थ– कही हुई बात के अनुसार काम न कर सकना
3. मणिपुरी मुहावरा– **मखौ पोड़ना ङाङबा**
शाब्दिक अनुवाद– गला फुलाकर बोलना
हिंदी अर्थ– घमंड होना

जीभ से आधारित मुहावरा :–

1. मणिपुरी मुहावरा– **मरै अनी लोंगबा**
शाब्दिक अनुवाद– दो जिह्वा होना
हिंदी अर्थ– कही हुई बात से मुकर जाना
2. मणिपुरी मुहावरा– **लैतोन शरु पांदबा**
शाब्दिक अनुवाद– जीभ की नोक में हड्डी न होना
हिंदी अर्थ– जो चाहे बोल देना
3. मणिपुरी मुहावरा– **मरै साङबा**
शाब्दिक अनुवाद– जीभ लंबी होना
हिंदी अर्थ– बड़ी देर तक रोते रहना
4. मणिपुरी मुहावरा– **लैयेंदा सरस्वती फंबा**
शाब्दिक अनुवाद– जीभ पर सरस्वती का बैठना
हिंदी अर्थ– जल्दी समझ में आना

लार से संबंधित मुहावरे भी मणिपुरी भाषा में उपलब्ध हैं।

1. मणिपुरी मुहावरा– **तिन ताबा**
शाब्दिक अनुवाद – मुँह से पानी गिरना
हिंदी अर्थ– अत्यंत लालायित हो उठना

2. मणिपुरी मुहावरा– **तिन योत्थबा**
शाब्दिक अनुवाद– लार निगलना
हिंदी अर्थ– सोच–विचार से काम करना

कुछ मुहावरे कमर पर भी आधारित प्राप्त हुए हैं :–

1. मणिपुरी मुहावरा– **ख्वाङ्चेत लाकपा**
शाब्दिक अनुवाद– कमर कसना
हिंदी अर्थ– किसी काम के लिए तैयार होना

पैर से संबंधी मुहावरे :– पैर शब्द का मणिपुरी अर्थ होता है खोङ

1. मणिपुरी मुहावरा– **खोङ् थाड़दोकपा ड़मदबा**
शाब्दिक अनुवाद– पैर उठाकर जा न सकना
हिंदी अर्थ– जाने की इच्छा न होना
2. मणिपुरी मुहावरा– **खोङशाङ्बा**
शाब्दिक अनुवाद– पैर लंबा होना
हिंदी अर्थ– घुमक्कड़ होना
3. मणिपुरी मुहावरा– **खोङ तेनबा**
शाब्दिक अनुवाद– पैर छोटा होना
हिंदी अर्थ– आने–जाने का साधन न होना
4. मणिपुरी मुहावरा– **खोड़या लेकपा**
शाब्दिक अनुवाद– तलवे चाटना
हिंदी अर्थ– दीनता दिखाना
5. मणिपुरी मुहावरा– **खोङ हामबा**
शाब्दिक अनुवाद– पैर धोना
हिंदी अर्थ– टट्टी करना

रौंगटा संबंधी मुहावरे :–

1. मणिपुरी मुहावरा– **तु चुङ्बा**
शाब्दिक अनुवाद– रोंगटे खड़े होना
हिंदी अर्थ– किसी भी भयानक या क्रूर कांड को देखकर शरीर में क्षोभ उत्पन्न होना
2. मणिपुरी मुहावरा– **तुबुम नामा तेकहंदबा**
शाब्दिक अनुवाद– एक भी रौंगटा बाँका न कर सकना
हिंदी अर्थ– कुछ भी कष्ट या हानि न पहुँचा सकना; पूर्ण रूप से सुरक्षित रहना

गाल, गले आदि से संबंधित मुहावरे भी मणिपुरी भाषा में उपलब्ध हैं।

1. मणिपुरी मुहावरा– **खजाइ हराओबा**
शाब्दिक अनुवाद– गाल खुश होना

हिंदी अर्थ– अचानक गालों में पीड़ा होना

2. मणिपुरी मुहावरा– **खौरिदा मिहुन हुनबा**
   शाब्दिक अनुवाद– गले में नब्ज रहना
   हिंदी अर्थ– गुस्सैल, जल्दी–जल्दी क्रोध करना
3. मणिपुरी मुहावरा– **खानाओदगी खुंबा**
   शाब्दिक अनुवाद– गले से जवाब देना
   हिंदी अर्थ– बिना सोचे–समझे उत्तर देना

मुहावरे भाषिक अभिव्यक्ति को सशक्त एवं प्रभावशाली बनाते हैं। मुहावरे किसी भी भाषा–भाषी समाज की स्वाभाविक देन हैं। सामान्य बोलचाल में प्रयुक्त होने पर भी मुहावरे में भाव–प्रकाशन की अद्‌भुत क्षमता, आलंकारिक वक्रता एवं चामत्कारिक लाक्षणिकता होती है। मुहावरे के माध्यम से उस भाषा के अभिव्यक्ति कौशल एवं शब्द–सामर्थ्य का भी पता चलता है। मुहावरों का सहज एवं सफल प्रयोग किसी भी साहित्यिक कृति के काव्यात्मक सौंदर्य में चार चाँद लगा सकता है। सामान्य बोलचाल से लेकर सृजनात्मक अभिव्यक्ति तक में मुहावरे का विशेष महत्व है। मणिपुरी भाषा में मुहावरों का प्रयोग खूब होता है। साथ ही मणिपुरी भाषा में शरीर के अधिकांश उपांगों से संबंधित मुहावरे मिलते हैं। मुहावरों में अपने समाज का प्रतिबिंब होता है। अतः मुहावरों के माध्यम से समाज विशेष को समग्र रूप में जानने–पहचाने का मार्ग प्रशस्त होता है। मुहावरों के सहज एवं सफल प्रयोग से भाषा के सौंदर्य में चार चाँद लग सकते हैं। सामान्य बोलचाल से लेकर सृजनात्मक अभिव्यक्ति तक में मुहावरे का विशेष महत्व है।

संदर्भ ग्रंथ

1. हिंदी मुहावरा कोश– भोलानाथ तिवारी, हिंदी बुक सेंटर 4/5 बी, आसफ अली रोड़, नई दिल्ली, 2002

2. लोकभारती मुहावरा कोश– डॉ बदरीनाथ कपूर, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद–1, 1981

3. मणिपुरी लोनगी फजबा मशक– मेछिन्नरी थोइबा, मणिपुरी लिटेरेरी सोसाइटि, प्रथम संस्करण 2007

4. मणिपुरी पांथै पाओरौ पाओताक– डॉ. लैशाङथेम तोनदोन सिंह, लैसांथेम पब्लिकेसंस वाङखै थाङ जम लैकाइ इंफाल, 2014

5. पाओरौ पाओताक– शेराम अमुबी और कराम जयचंद्र मैतै, नोहाखोल युरेमबम, लाङजिङ मणिपुर–2018

6. हिंदुस्तानी मुहावरा कोश– प्रो. मुहम्मद हसन, सीमांत प्रकाशन दरियागंज, नई दिल्ली–1996

7. व्यावहारिक सामान्य हिंदी– डॉ. हेतु भारद्वाज, डॉ. सत्यनारायणा शर्मा, मलिक एंड कंपनी जयपुर, दिल्ली–2006

8. हिंदी व्याकरण तथा रचना– डॉ. कैलाशचंद्र अग्रवाल, रंजन प्रकाशन आगरा–3, 1980

9. मणिपुरी पाओरौ नैनबा– डॉ. लोइतोङबम वीरजीता देवी, प्रकाशक : डॉ. निङोबम बिनो सिंह, प्रथम संस्करण

10. मैतैगी पाओरौ पाउताक अखोंबा– अरांबम निपामचा सिंह, इम्फाल, 1989

11. लोकोक्ति कोश– हरिवंश राय शर्मा, राजपाल प्रकाशन, 2018

12. मुहावरा कोश– हरिवंश राय शर्मा, राजपाल प्रकाशन, 2017

13. अंग्रेजी–हिंदी मुहावरा–लोकोक्ति कोश–भोलानाथ तिवारी, द्विजेंद्र नाथ, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2015

❑❑❑

जन–मन के निकट

ओम प्रकाश शर्मा 'प्रकाश'
दो कविता संग्रह,दो हाइकु संग्रह,दो (अँग्रेज़ी से हिंदी) अनुवाद की पुस्तकें प्रकाशित। पत्र–पत्रिकाओं में कविताएँ, लघुकथाएँ, संस्मरण, यात्रा–वृत्तांत आदि प्रकाशित। संप्रति–स्वतंत्र लेखन।

कविता की तरह रामदरश मिश्र की कहानियाँ भी सरल–सहज हैं। उनकी कहानियों में एक रस है। पाठक कहानियों को पढ़ता चला जाता है, कहानी–दर–कहानी, कहीं अटकता नहीं। यह उनकी उपलब्धि है। ऐसा प्रतीत होता है कि सुनाने वाला किसी रोचक घटना का जिससे हमारा भी कोई सरोकार है– रोचलक शैली में हमारे सामने बयान करता चला जा रहा है और हम उसके साथ सहयात्रा करते चलते हैं। ऐसे ख़ास मुकाम भी आते हैं जहाँ पाठक कहानियों की टीस महसूस करता है। कई कहानियों में करुण तत्व सन्निहित है। विडंबना–वश मनुष्य को त्रासद परिस्थितियाँ झेलनी पड़ती हैं। विडंबनाओं का एक मकड़जाल ही तो जीवन है जिसकी जीवंत तस्वीर मिश्र जी प्रस्तुत करते हैं लेकिन साथ–साथ लेखक का अंतर्निहित सुझाव यह भी है कि जीवन में ऐसा होता है; उससे हताश होने की ज़रूरत नहीं। जीवन की गाड़ी को हाँकते रहना चाहिए। जीवन जीने योग्य है, स्वागत–योग्य है, उसका कोई अर्थ है। कथाकार के रूप में मिश्र जी यहाँ स्वयं को ढेर सारे कहानीकारों की भीड़ से अलग कर लेते हैं जो उद्देश्यहीन बयानों से कहानी को लाद देते हैं।

वस्तुतः मिश्र जी स्वयं कम कहते हैं। वे किसी पात्र के बीच में से होकर बोलते हैं जो कहन को न केवल विश्वसनीय बनाता है बल्कि एक अर्थवान संगति भी देता है।

मिश्र जी की कहानियों के चरित्र जाने–पहचाने लगते हैं। वे पारिवारिक हैं। वे आस–पास के परिवेश से उठाए गए हैं। शैली 'मैं' की है। यह 'मैं' आप भी हैं, मैं भी हूँ, हम भी हैं, वह भी है यानी पूरा समाज है।

कथा का विकास सहज गति से होता है। 'दिन के साथ', 'ही इज़ हेमन्त्स फादर', 'फिर कब आएँगे' आदि कहानियाँ इसी प्रकार विकसित हुई हैं। अत्युक्ति नहीं होगी यदि कहा जाए कि कहानी स्वतः फैलती चली जाती है।

कहीं–कहीं लेखक वास्तविक कहानी से पहले एक छोटी प्रस्तावना निर्मित करता है जहाँ से लेखक पूर्व–वृत्त या साहचर्य–संबंध से कहानी को उभारता है। यह तकनीक सीधी–सादी किंतु प्रभावी है। सबसे बड़ी बात है कि कृत्रिम या अटपटी नहीं लगती। 'प्रतिभा' कहानी भाजने की अप्रत्याशित दुखद मृत्यु की प्रस्तावना से शुरू होकर प्रतिभा के जीवन और उसके साथ लेखक के अंतःसंबंधों में विकसित होती है जो अंततोगत्वा मानवीय अंतःसंबंधों की व्याख्या में बदल जाती है।

अपने अन्य लेखन के समान कहानी में भी मिश्र जी किन्हीं लटकों–झटकों का इस्तेमाल नहीं करते, चाहे वे शिल्प के धरातल पर हों या चिंतन के धरातल पर। लगता है उन्हें उसकी आश्यकता ही महसूस नहीं होती। वे जीवन को लिखते हैं। जीवन की घटनाओं में से दिल को लगने वाली घटनाओं को कहानी में तब्दील कर देते हैं। इस भाँति उनका लेखन सहज, स्वाभाविक अतः आत्मीय लगता है। शैली की सहजता देखिए– ''लेकिन मेरी सोच के साथ तो दुनिया नहीं चलेगी न!'' (फिर कब आएँगे', पृष्ठ–97)

भाषा में भावना के प्राण उँडेलने की शक्ति, संभवतः कवि–मन के कारण आ गई है– ''चली गई तो लगा जैसे मैं टूट गया। पूरा तन–मन दर्द बन गया। खाट पर निढाल जो पड़ा तो पूरा दिन–रात पड़ा ही रहा (वही, पृष्ठ–94)। एक पूरी तस्वीर, एक पूरी मानसिक स्थिति इन तीन वाक्यों में बाँध दी गई है। एक और विशेषता है जो अनायास ही पाठक को प्रभावित करती है। इन कहानियों की भाषा अत्यंत 'ग्रैफिक' (graphic) है जो थोड़े में ही भाव, स्थिति या मानसिकता को मूर्त कर देती है– 'बुआ जी का चेहरा उतरा हुआ था और फूफा जी के चेहरे पर क्रोध की पर्त जमी थी– ('प्रतिभा' कहानी– 'फिर कब आएँगे' संग्रह, पृष्ठ–100)

मिश्र जी की कहानियों की कहानी यदि एक वाक्य में समेटनी हो तो कह सकते हैं कि वे संबंधों के कहानीकार हैं। उनके यहाँ आप देख सकते हैं संबंधों की सहजता–असहजता, मिठास, परस्परता, कटुता, औपचारिकता, निर्वाह का बोझ, उन का घिस जाना, रिसना, बहना, मुरझाना और सूखकर पुनः हरे हो जाना। संबंध समय–सापेक्ष हैं जो नित्य नवीन रूप धारण करते रहते हैं। प्रस्तुत कहानियाँ नव–विकसित परिभाषाओं की व्याख्या करती हैं, उन्हें तलाशती और सहेजती हैं और अंततः उनमें से एक मानवीय अर्थ खोजने का उपक्रम करती हैं। उनके यहाँ एक व्यापक जाल–फैलाव है जहाँ परिवार के सदस्यों, दोस्तों, पड़ोसियों, बॉस और कर्मचारी के बीच अदलते–बदलते संबंध दिखाए गए हैं। इन सबके बीच से कहानीकार यह एहसास उभारता है कि आख़िर इंसान के साथ बरतने–बरताने का बुनियादी शऊर कैसा होना चाहिए। 'प्रतिभा' कहानी में जामाता की तुनक मिज़ाजी, व्यर्थ की अकड़ संबंधों की प्रति–दिशा में चलती है। हमारे परिवारों में अक्सर ऐसा होता है।

लेखक ऐसे रीति–रिवाजों और रूढ़ियों की प्रच्छन्न भर्त्सना द्वारा संबंधों के क्षरण को संबोधित करता है; न केवल संबोधित करता है बल्कि रिक्तता में स्वस्थ भरण का दायित्व भी निभाता है।

कुछ कहानियाँ चरित्र–उद्घाटन के सहारे खड़ी की गई हैं। 'पेंशन' में एक देशसेवी स्वाभिमानी किंतु अपेक्षाकृत निर्धन नागरिक की ठसक दिखाई गई है जो कर्तव्यबोध और मानवीय संस्कारों में पला है लेकिन जिसे वक़्त तोड़ना चाहता है पर तोड़ नहीं पाता। बस, यही पक्ष कहानी को विशिष्ट बना देता है।

लड़के–लड़की का भेदभाव या गृहस्थी में घिसती गृहिणियाँ– जिनकी सेवा व त्याग के प्रति हम तिरस्कार का भाव प्रदर्शित करते हैं– रामदरश मिश्र की कई कहानियों के लिए मसाला–मसविदा जुटाती हैं। अन्य कहानियों में यह बात प्रसंगतः आई है, जबकि कुछ कहानियों में यह प्रमुख आधार के रूप में प्रस्तुत है। ये आयाम लेखक की सोच के परिचायक हैं। दकियानूसी चरित्रों का अड़ियलपन और समायोजन न करने की लगभग सौगंध खाने वाले चरित्र भी कहानियों में बखूबी उभरे हैं जैसे 'प्रतिभा' में कुंदन जी या बेहतर उदाहरण हैं 'फिर कब आएँगें' के बड़े भाई साहब। ये समय की नई परिभाषाएँ स्वीकार नहीं करते। लेखक की सफलता इससे आगे है जहाँ वे इनकी त्रासदी को, मन के भीतर की पीड़ा को दिखाते हैं और उसे मानवीय संवेदना के स्तर पर पाठक तक सफलतापूर्वक संप्रेषित करते हैं। यही मिश्र जी की विशिष्ट कहानी–कला है जो नितांत निजी है।

मिश्र जी स्वयं समय के साथ बदले हैं। विभिन्न स्थितियों को लाँघते हुए वे महानगर तक आए हैं। वे उनका सापेक्ष मूल्यांकन करते रहते हैं। उनकी मान्यता है कि रिवाजों/परंपराओं का निकम्मा अंश, जो वक़्त के साथ टूट रहा है, टूट जाने दिया जाए। उस पर टसुए बहाने व्यर्थ हैं। बचाना अगर है तो मानव का संवेदनशील स्वभाव, दया–ममता और पारस्परिकता। एक उदार स्वस्थ भावना विकसित करनी है जो जन–कल्याणार्थ नई सुबह का स्वागत करे। यही मानव के हित में होगा। उनके कुल कहानी–लेखन की यही प्रतिध्वनि है।

अंत में केवल एक बात दोहरानी है कि उनकी कहानियों में पाठक को लीन कर लेने की अद्भुत क्षमता है। यही उनकी कहानियों का मेरुदंड है। मिश्र जी की कहानियाँ लेखक की कम, पाठकों की ज़्यादा हैं।

❑❑❑

सामाजिक संजाल के मध्य बड़े स्पेस की तलाश

रीना कुमारी चौधरी
कथा साहित्य में विशेष रुचि। 'समवेत' समेत विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में लेख प्रकाशित। संप्रति .शोधार्थी,पश्चिम बंगाल राज्य विश्वविद्यालय।

ममता कालिया सातवें और आठवें दशक के मध्य की कथा लेखिका हैं। उपन्यास विधा में साहित्य सृजन का शुभारंभ 'बेघर' (1971) से करते हुए वे लगातार लेखन कार्य द्वारा साहित्य जगत को समृद्ध कर रही हैं। भारतीय समाज में परंपरा से ही परिवार के प्रति अटूट विश्वास एवं मान्यताएँ रही हैं। पर सातवें दशक के बाद सांस्कृतिक मूल्यों की टकराहट और मूल्यगत बदलाव की छटपटाहट ने मनुष्य की इसी आधारभूत सामाजिक संस्था को सर्वाधिक प्रभावित किया। पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव, भावात्मकता के स्थान पर बौद्धिकता, आर्थिक स्वातंत्र्य की भावना, समष्टि के स्थान पर व्यक्ति का महत्व, नारी विद्रोह, धर्म में अनास्था आदि ने संयुक्त परिवार के साथ मूल परिवार के स्तंभों को ही हिलाकर रख दिया, पर ममता कालिया के संपूर्ण कथा–साहित्य में भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों में पूर्ण आस्था दिखलाई देती है। उनका रचना संसार एक ऐसी दुनिया की परिकल्पना हमारे सामने रखता है, जिसमें संबंधों का आधार शोषण और प्रतिशोध नहीं, बल्कि समता और संवेदना है।

विवाह नामक संस्था से ही भारतीय परिवार की कल्पना संभव मानी जाती है पर परिवर्तित परिस्थितियों में स्त्री और पुरुष का विवाह और प्रेम संबंधी दृष्टिकोण पूरी तरह बदल गया है। समाज का यही वर्ग सबसे अतृप्त और टकराव की स्थिति में दिखता है जिसके एक छोर पर पुरुषों में विद्यमान प्रबल श्रेष्ठता बोध हैं, ''मैं ही मैन हूँ। मेरे आगे औरत, औरत रहेगी।''[1] तो दूसरी तरफ स्त्रियों का असंतोष जो छद्म आधुनिकता के लिए स्त्रीत्व का इस्तेमाल कर पुरुषवर्ग का गुलाम भी बन जाती है। वर्तमान समय में विवाह का आधार प्रेम या भावात्मक संवेदना, युग–युग के संबंध की आस्था या विश्वास न होकर मात्र एक सामाजिक समझौता, साथ रहने की आवश्यकता भर बन गया है, ''यहाँ गुजरात सौराष्ट्र में शादी तय होने के बाद लड़की महीने भर ससुराल में रहती है। लड़का–लड़की एक–दूसरे के तौर–तरीके समझने के बाद ही

शादी करते हैं।''[2] 'दौड़' उपन्यास में रेखा अपनी बहू स्टैला को तथाकथित स्त्रियोचित गुण सिखलाने की चेष्टा करती है तो पवन हस्तक्षेप कर अधुनातन प्रवृत्ति की दुहाई देता है, ''अरे माँ, आज के जमाने में स्त्री और पुरुष का उचित अलग–अलग नहीं रहा है। आप तो पढ़ी–लिखी हो माँ, समय की दस्तक पहचानो। इक्कीसवीं सदी में ये सड़े–गले विचार लेकर नहीं चलना है हमें, इनका तर्पण कर डालो।''[3] युवा वर्ग में मोरैलिटी और एथिक्स, जिम्मेदारी जैसे शब्दों के लिए जगह नहीं है। बेटा जेनरेशन गैप भी बतलाता है और अपनी सोच की वजह भी माँ–बाप के ही मत्थे मढ़ देता है। विवाह के पश्चात दांपत्य संबंध सैटेलाईट और इंटरनेट से संभालने की बातें करता है।

इतना ही नहीं पाश्चात्य संस्कृति का अनुपालन करते हुए नई पीढ़ी भारतीय परंपरा से कट रही है और अपने जीवन को नष्ट करने पर तुली हुई है। आज की पढ़ी–लिखी युवा पीढ़ी अपने वैयक्तिक अहम के चलते पति–पत्नी के इस पवित्र संबंध को तुच्छ मानने लगी है। जब तक दांपत्य जीवन में विश्वास नहीं होगा तब तक परिवार टूटते रहेंगे। 'एक पत्नी के नोट्स' उपन्यास का नायक संदीप, एक उच्च अधिकारी होने के बावजूद अन्य स्त्रियों को अपने जाल में फँसाने का प्रयत्न करता रहता है। उसके दोस्त की बीवी जो उसे बहुत पसंद थी; उसे शेर–ओ–शायरी सुनाकर अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयास करता है–

''आह, संगमरमर–सा यह रेशमी शफ्फाक बदन,
देखने वाले तुझे ताजमहल कहते हैं।''

या

''पहलू में कोई चीज जल रही है
तुम हो कि मेरी जान जल रही है।''[4]

वह उसे कार में लिफ्ट देता है लेकिन वह उसे लिफ्ट नहीं देती। इससे वह चिढ जाता है और फिर ऐसे शेर सुनाने लगता है–

''जेहन में मेरे घुस के आप बैठे हैं,
राम जाने किस जनम के पाप बैठे हैं।''[5]

शादीशुदा होने के बावजूद संदीप की ऐसी हरकत पुरुषों की स्त्री लंपटता का ही चित्रण करती है।

ममता कालिया के उपन्यासों में पुरुष द्वारा प्रताड़ित न केवल घरेलू बल्कि पढ़ी–लिखी, शिक्षित स्त्रियों के चित्र भी उभरकर आए हैं। 'एक पत्नी के नोट्स' उपन्यास का नायक संदीप अपनी पत्नी कविता को एक खिलौना मात्र समझता है जिसे जब चाहे इस्तेमाल कर लिया और फेंक दिया और उसे प्रताड़ित करने में ही अपनी सार्थकता समझता है। घर पर आयोजित पार्टी के दौरान गोयल व पंत साहब के मुख से अपनी सर्वश्रेष्ठता के समक्ष कविता की तारीफ सुन संदीप, उसके सर से

सफेद बाल तोड़कर उसके हाथ में रख देता है ताकि उसका मजाक बन सके। इतना ही नहीं पार्टी में बने खाने में स्वयं नमक की मात्रा इतनी बढ़ा देता है कि सारा खाना खराब हो जाता है, और लोगों से यह कहकर माफ़ी माँगता है कि ''आय एम सो सॉरी फॉर माय वाईफ्'स कुकिंग, आय अपोलोजाईज।''[6] लेक्चरर के पद पर कार्यरत कविता को एक दिन कॉलेज से घर पहुँचने में थोड़ी देर हो जाती है तो वह कविता पर चरित्रहीनता का लांछन लगाता है, ''यकायक संदीप ने उसका जूड़ा झिंझोड़ डाला, ''दोपहर में कौन ले गया था तुम्हें लंच पर?''[7] आत्मनिर्भर होने के बाद भी कविता अपने ऊपर हो रहे अत्याचारों को सहती है।

जबकि स्त्री के प्रति पितृसत्तात्मक एवं पुरानी समाज व्यवस्था की नैतिकताओं के पाखंड को 'सपनों की होम डिलिवरी' (2016) की नायिका रुचि का संपूर्ण व्यक्तित्व चुनौती देता है। दादा–दादी के दबाव में रुचि दम घोंटू पारंपरिक विवाह में बँध जाती है, जहाँ पुरुष की भरसक कोशिश होती कि वो पत्नी के संपूर्ण जीवन को संचालित करे। प्रभाकर एक बदचलन, अमर्यादित और संवेदनहीन व्यक्ति था। विवाहित होने के पश्चात भी अनैतिक संबंध बनाना, लड़कियों के साथ छेड़खानी, शराब की लत उसके लिए आम बात थी। शादी जैसे पवित्र बंधन भी उसके लिए मात्र शारीरिक जरूरत की पूर्ति थे, ''उसके जीवन में शादी का मतलब शरीर था जो वह कहीं भी जाकर प्राप्त कर लेता।''[8] स्त्रियों पर होने वाली घरेलू हिंसा को भी उकेरा गया है, ''जब प्रभाकर को प्रचंड क्रोध चढ़ता है वह झाड़ू, चाकू, डंडे किसी भी चीज से उस पर प्रहार करता है।''[9] प्रभाकर अपनी बदचलनी को अतिरिक्त पौरुष का नाम दे सगर्व दोस्तों के मध्य ठहाका लगाता है, ''आय एम सरप्लस फॉर माय वाइफ।''[10] नैतिकता से नदारद पारिवारिक रिश्ते को रुचि छोड़ जब माता–पिता के पास आती है तो माँ का कथन स्त्री की निरुपायता को व्यक्त करता है, ''देख रच्चू बुरा मत मनाई, औरत की इज्जत अपने घर द्वारे ही होती है। तू गुस्से होकर आ गई सो कोई गल नहीं। थोड़े दिन रह ले। जब तेरा गुस्सा ठंडा हो जाए तो चली जाना।''[11] जब तक नारी शिक्षा समाज में आम नहीं हुई थी स्त्रियाँ पैशाचिक प्रवृत्ति वाले पति को भी परमेश्वर मानती थीं। इक्कीसवीं सदी के दूसरे दशक तक स्त्रियाँ शिक्षित और घर के बाहर की दुनिया को देख–समझ रही थीं। अतः ऐसे रिश्तों को नकार कर रुचि अपनी सचेतनता का परिचय देती है और 'हिंदुस्तानी औरत की गुलामी की नींव' जिस रसोईघर में पड़ती है उसी रसोईघर में परिपक्व होती पाककला को आधार बनाकर अपने जीवन को सार्थक बना पाती है। इस समाज व्यवस्था में स्त्री कितनी भी पढ़ी–लिखी गुणी और कर्मठ हो फिर भी पुरुष वर्चस्व को ढोता हुआ पति उसके व्यक्तित्व के सौंदर्य को इस प्रकार रौंद देता है कि उसका मातृत्व भी कुंठित हो जाता है, ''गंदे इंसान का बच्चा भी गंदा निकलेगा।''[12] पारिवारिक स्थितियों से उपजा रुचि के मन में बच्चे के प्रति संवेदनशून्यता वर्तमान समय में धराशायी होते युवा वर्ग के भविष्य के लिए भी

खतरनाक है। यह उपन्यास इस स्थिति का भरपूर संकेत देता है कि व्यक्ति का वैवाहिक जीवन अगर विषमायोजन से भरा हुआ है तो उसका सीधा असर उनकी संतानों पर पड़ता है।

वर्तमान समय में विवाह आवश्यक होते हुए भी आदर्श रूप में नहीं है। विवाह करके आधुनिक नारियाँ अपने अस्तित्व और व्यक्तित्व का हनन नहीं करना चाहतीं। 'लड़कियाँ' उपन्यास की पात्र 'मैं' सामाजिक जिंदगी और जान–पहचान से सुविधानुसार ही मेल रखती। वह तो शादी भी इसलिए नहीं करना चाहती क्योंकि घर में शोर और अशांति पसंद नहीं थी। वास्तव में बदलती सदी के साथ लोगों के जीने के सलीके बदल गए हैं। बदलाव की रफ़्तार इतनी तीव्र है कि समाज में वर्जित माने जाने वाले तत्व, इस दौड़ में सामान्य और सहज हो गए हैं यथा– समलैंगिकता एवं सहजीवन। तभी तो आजाद एवं समझदार व्यक्तित्व वाला सर्वेश बहुत ही सपाट, चपटे और संवेदनाहीन शब्दों में रुचि के समक्ष आने की पेशकश करता है, ''हम बिना कमिटमेंट के साथ रहें जैसे आजकल हजारों लड़के–लड़कियाँ रहते हैं।''[13] 'लिव इन रिलेशन' को लोग बिना सोचे–समझे अपना लेते हैं और क्षणिक दैहिक सुख से गर्वित होते हैं। 'कजिन' शब्द के द्वारा शहरों में होने वाले अपरिभाषित, अंतरंग संबंधों की गोपनीयता का भी वर्णन करते हैं, ''विवाहित महिलाओं के घरों में एक से एक सजीले नौजवान कजिन का बिल्ला चिपकाकर धड़ल्ले से वक्त–बेवक्त घुसते, निकलते थे। पुरुषों को तो और भी छूट थी। माँ और बीवी के अलावा किसी भी औरत को अपनी कजिन कहने में उन्हें कोई कष्ट न था। इस शब्द में दो तरफा राहत थी। कहने वाले की आत्मा न कचोटती और सुनने वाले को उँगली उठाने की जहमत न उठानी पड़ती। लोग बड़े शोभनीय ढंग से काम निपटाते जाते और समाज में कजिन की जनसंख्या में बढ़ोतरी होती जाती।''[14]

आज हर मध्यवर्गीय पुरुष का मन आहत है क्योंकि स्त्री विवाह के पश्चात अपनी प्रेमिका की भूमिका, जिसके लिए पुरुष का मन सदैव ललकता है, को भूलकर वह मात्र गृहस्थिन–सी बन जाती है। न अपने शरीर की साज–सँवार की ओर उसका ध्यान जाता है और न ही वह अपने पति की भावनाओं को आदर दे पाती है।

ममता कालिया द्वारा रचित लघु उपन्यास 'सपनों की होम डिलीवरी' की कथा सृजन की प्रेरणा विदेशी धरातल से संबंधित है परंतु इसमें भारतीय सभ्यता और संस्कृति की सौंधी खुशबू बिखरी मिलती है। वास्तविक पात्र (नाइजैला और साची) अपने स्वाभिमान के साथ जहाँ समझौता नहीं करते हैं वहीं उपन्यास में टूटते रिश्ते को समझदारी के साथ सहेजते हुए जीवंत बनाया गया है। वरिष्ठ हिंदी कथाकार ममता कालिया, जहाँ रुचि के माध्यम से वर्तमान समय में स्वच्छंद रूप से मुक्त जिंदगी बिताने के साथ ही एक सुखद पारिवारिक जीवन की आकांक्षा रखनेवाली आधुनिक

महिलाओं के प्रतिदिन के बाहरी संघर्षों के साथ भीतरी भावनाओं के टूटकर बिखरने और उसे पुनः सृजित करते हुए नए वक़्त के साथ सतत चलने के अदम्य साहस को बयाँ करती हैं तो वहीं एक अक्खर–सा संवेदनहीन, सारा दिन खबर सूँघने वाला अधेड़ खोजी पत्रकार सर्वेश नारंग के भीतरी खालीपन, आत्मीयता और स्नेह की प्यास के माध्यम से यंत्रवत जिंदगी जी रहे आधुनिक पुरुष वर्ग के अंतर्जीवन का यथार्थ प्रस्तुत करती है जिसमें रिश्तों को समेटने की समझ दिखलाई देती है, ''रिश्तों में इतनी जान होती है कि वे प्लेट–प्यालों की तरह नहीं टूटते। हम बार–बार उनमें पट्टी बाँधकर काम चलाते हैं।''[15]

लेखिका ने रुचि और सर्वेश नारंग के माध्यम से दो ऐसे स्त्री–पुरुष चरित्रों को उठाया है जिसमें दोनों ही अपने पहले वैवाहिक जीवन का दंश झेल चुके हैं। रुचि प्रभाकर जैसे लंपट व्यक्ति से पारंपरिक विवाह में बँधकर उपेक्षा और हिंसा की शिकार होती है। सर्वेश भी मनजीत से सदैव उपेक्षा और प्रताड़ित ही होता है। दोनों ही पात्र दांपत्य जीवन की कडुवाहट से आज़ाद हो एकाकी जीवन को अपना लेते हैं, बावजूद इसके दोनों के जीवन में जुड़ाव का माध्यम उनके पुत्र गगन और अंश हैं जो इनसे बालपन में दूर हो जाते हैं तथा केवल आर्थिक जरूरत की पूर्ति के लिए रिश्ते की दुहाई देते नज़र आते हैं। दोनों ही पात्र एक जैसे हालातों से गुजरते हैं, यथा– ''रुचि को शिद्दत से लग रहा था जैसे यह उसके अपने घर परिवार की पटकथा है जो बदले हुए नामों से लिखी जा रही है।''[16] लेखिका जिस आदर्श दांपत्य जीवन का रूप प्रस्तुत कर रहीं, उस पर पश्चिम में स्त्री–विमर्श का सूत्रपात्र करने वाली सिमोन द बुआ की नारी स्वतंत्रता संबंधी उस धारणा की छाप दिखलाई पड़ती है, जिसमें पारिवारिक विघटन के स्थान पर स्त्री–पुरुष के बीच एक समझदारी और आपसदारी की बात है। उम्र की परिपक्वता के कारण रुचि और सर्वेश एक ही मनःस्थिति से गुजरते हैं जहाँ सामने जीवन का भयावह एकाकीपन है और पीछे सिर्फ कड़वी यादें और कुछ स्वार्थपरक अतीतजीवी। सूने जीवन में जीवंतता की तलाश दोनों को ही है। तभी तो खोजी पत्रकार सर्वेश नारंग रुचि को टी.वी. कार्यक्रम के द्वारा खोज पाता है तो रुचि भी हजारों प्रशंसकों के बावजूद सर्वेश नारंग की असहमति से आकर्षित दिखलाई देती है। यंत्रवत जीवन के मध्य प्रेम और आत्मीयता के मृदु स्पर्श रुचि और सर्वेश के मन को पुनः नवीन आशाओं एवं सुखद अनुभूतियों से प्रफुल्लित कर देते हैं। युवा प्रेम की अनुभूतियाँ पाठक वर्ग को ज्यादा आकर्षित करती हैं लेकिन लेखिका ने दो परिपक्व एवं व्यक्तिगत जीवन की कुंठा झेल चुके एकाकीजीवियों में प्रेम की आस जगाई है, जहाँ युवा समाज की तरह ओछी फुहड़ता एवं कामुकता के स्थान पर दोनों समझदारी तथा पेशेगत जीवन को स्पेसियस बनाकर चलते हुए दिखते हैं।

ममता कालिया अनावश्यक विस्तार से दूर कम से कम शब्दों में अपनी बात को पूर्ण करने में सक्षम हैं। इनकी रचनाएँ समय के साथ समाज में होने वाले परिवर्तनों को भी बखूबी चित्रित करती हैं। इनमें एक ऐसी टकराहट है जिसकी गूँज कभी

स्त्री–पुरुष संबंधों में सुनाई देती है तो कभी माँ–बेटे के रिश्तों में। शांत नदी की प्रवाहमयी धारा के समान परत–दर–परत पात्रों के वर्तमान के साथ 'भूली–बिसरी दास्तानों' को बतलाते हुए एक रवानगी के साथ लेखिका कथा का विस्तार करती है। यह उपन्यास एक पल को स्त्री–पुरुष खेमों में बँटा दिखलाई देता है परंतु पात्रों की समाज के प्रति समझ ऐसा होने नहीं देती। पात्रों के दांपत्य जीवन की समझदारी में कहीं न कहीं ममता जी के निजी दांपत्य जीवन की झलकियाँ भी दिखलाई पड़ती हैं, जो कार्यपरस्त दांपत्य जोड़ों के लिए भी आदर्श हैं।

21वीं सदी के दूसरे दशक में रचित यह उपन्यास उस समय के संपूर्ण तकनीकी एवं सामाजिक परिवर्तनों के साथ लोगों की पुरातन सोच को छोड़ के आगे बढ़ने की प्रगतिशील सोच को बिंबित करता है। उपभोक्तावादी संस्कृति के तहत लोगों को घर बैठे ही सारी वस्तुएँ थोड़ी–सी ज्यादा पूँजी की लागत पर डिलीवर कर दी जाती हैं, बस एक सपने ही हैं जिनकी डिलीवरी नहीं हो सकती परंतु लगातार संघर्ष एवं समझदारी से इसे भी पूरा किया जा सकता है। 'सपनों की होम डिलीवरी' शीर्षक से पाठकों के मन में सहसा बहुत–सी रेखाएँ खिंच जाती हैं। ऐसे में पाश की कुछ पंक्तियाँ अनायास याद आ जाती हैं– 'सबसे खतरनाक होता है/हमारे सपनों का मर जाना।' इस उपन्यास में चित्रित दोनों ही पात्र जीवन की कुंठाओं को झेलते हुए भी अपने सपनों को मरने नहीं देते और एक सुखद परिणति में जीवन बदल जाता है। आधुनिक तकनीकी सुविधाओं के महत्व को भी लेखिका रेखांकित करती हैं। ऐप, चैट, एस.एम.एस. एवं आधुनिक गैजेट्स ने लोगों को स्वतंत्र अभिव्यक्ति का माध्यम दिया है और प्रेम–प्रसंगों में होने वाली सामाजिक एवं मानसिक बाधाओं को भी कम किया है। 2009 ई. में प्रकाशित अपने एक साक्षात्कार में ममता कालिया बदलते समय में स्त्री–विमर्श संबंधी स्त्री की आठ माँगों पर रोशनी डालती हैं–''अस्तित्व, अधिकार, अस्मिता, स्वाधीनता, स्वावलंबन, समानता, सजगता, आर्थिक स्वतंत्रता।''[17] स्त्रियों की ये सारी इच्छाएँ इस उपन्यास में पूर्ण होती हुई दिखलाई पड़ती हैं फिर भी यह उपन्यास किसी भी वाद या विचारधारा की दीवारों में बँधा हुआ नहीं है। रुचि जहाँ सर्वेश को 15 अगस्त कहती है तो वहीं सर्वेश रुचि को 26 जनवरी। जहाँ स्त्री को एक रिश्ते में उपरोक्त वर्णित स्वतंत्रता, सजगता आदि चाहिए तो पुरुष को भी अकेलेपन से दूर जीवन में खुशियों की बहार और व्यवस्थता चाहिए। जीवन में चोट खाई हुई स्त्री सतर्क भी होती है और प्रैक्टिकल भी। वह आँख मूँदकर किसी पर भी भरोसा नहीं कर पाती तो वहीं सर्वेश जैसा आज़ाद ख्यालों वाला पुरुष भी अपनी आत्मज से धोखे के खयाल से ही बौखला उठता है। इस उपन्यास से लेखिका की मनौवैज्ञानिकता का बोध होता है कि वो लोगों के सुख–दुःख व अन्य गतिविधियों पर कितनी बारीक निगाह रखती हैं। 1971 ई. में लिखे पहले उपन्यास 'बेघर' में जिस संजीवनी के पात्र को लिखा गया, कहीं न कहीं उसी का सशक्त रूप हम रुचि के माध्यम से देखते हैं। जहाँ लेखिका ने बेघर में 'नायक–नायिका के अलग–अलग दुःख और टूटे स्वप्न

पास–पास ला दिए थे'[18] तो वहीं टूटते सपनों की होम डिलीवरी रुचि और सर्वेश के माध्यम से इस उपन्यास में दिखलाई गई है।

साहित्य का मकसद होता है मनुष्य को रचना और उसे बेहतर स्वप्न दिखाना। मानवीय संबंधों पर लिखा गया इनका रचना संसार आधुनिक यथार्थ से आक्रांत नहीं करता बल्कि बड़े सवाल उठाते हुए, उदार विचारों के बीज बिखेरता है। महानगरीय जीवन की आपाधापी, संवेदनाहीन होते पारिवारिक रिश्ते, व्यक्तिगत जीवन की कुंठा, कैरियरपरस्ती, स्त्री चेतना, संबंधों के उभरते नए रूप, मूल्यहीन पारिवारिक बेड़ियों से निकलने की दृढ़ संकल्प–शक्ति, युवा वर्ग में नशे की लत, भ्रष्टाचार आदि बहुआयामी सामाजिक संजाल के मध्य लेखिका दांपत्य जीवन जैसी पवित्र सामाजिक संस्था को बनाए रखने के लिए स्पेस की आवश्यकता महसूस कर रही हैं।

संदर्भ ग्रंथः

1. ममता कालिया : बेघर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृष्ठ–127
2. ममता कालिया : दौड़, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, पृष्ठ–52
3. वही, पृष्ठ–63
4. और 5. ममता कालिया : तीन लघु उपन्यास, एक पत्नी के नोट्स, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, 2020, पृष्ठ–15
6. वही, पृष्ठ–49
7. वही, पृष्ठ–25
8. ममता कालिया : सपनों की होम डिलीवरी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2016, पृष्ठ–23
9. वही, पृष्ठ–24
10. वही, पृष्ठ–66
11. वही, पृष्ठ–45
12. वही, पृष्ठ–60
13. वही, पृष्ठ–54
14. ममता कालिया : तीन लघु उपन्यास, लड़कियाँ, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, 2020, पृष्ठ–82
15. ममता कालिया : सपनों की होम डिलीवरी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2016, पृष्ठ–50
16. वही, पृष्ठ–52
17. ममता कालिया : मेरे साक्षात्कार, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृष्ठ–100
18. वही, पृष्ठ–97

❑❑❑

मध्यकालीन भक्ति–आंदोलन के विकास में असम के श्रीमंत शंकरदेव और माधवदेव का अवदान

दिनेश साहू

हिंदी एवं असमिया कथा साहित्य में विशेष रुचि। विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में शोध आलेख प्रकाशित। संप्रति–सहायक प्राध्यापक,हिंदी विभाग,सिक्किम विश्वविद्यालय।

भक्ति आंदोलन का भारतीय साहित्य के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है। भारतीय साहित्य के मध्यकालीन इतिहास पर दृष्टि डालें तो स्पष्ट होता है कि उस काल में भक्ति ने एक नया मोड़ लिया जिसे भक्ति आंदोलन के नाम से जाना जाता है। इस आंदोलन ने धीरे–धीरे विस्तार लेकर जन–आंदोलन का रूप ले लिया और संपूर्ण भारतीय साहित्य में इसके फलस्वरूप विशाल भक्ति साहित्य का सूत्रपात हुआ। भक्ति आंदोलन ने जन सामान्य को सम्मानपूर्वक जीने का रास्ता दिखाया, आत्मगौरव का भाव जगाया और जीवन के प्रति सकारात्मक आस्थापूर्ण दृष्टिकोण विकसित किया। भारत में भक्ति के उद्‌भव के संबंध में विभिन्न विद्‌वानों ने अपने–अपने विचार व्यक्त किए हैं। पाश्चात्य विद्‌वान ग्रियर्सन के अनुसार– ''बिजली की चमक के समान अचानक उस समस्त पुराने धार्मिक मतों के अंधकार के ऊपर एक नई बात दिखाई दी। कोई हिंदू यह नहीं जानता कि यह बात कहाँ से आई और कोई भी इसके प्रादुर्भाव का काल निश्चित नहीं कर सकता।''[1] इसी तरह पाश्चात्य विद्‌वान वेबर भी भारतीय भक्ति आंदोलन को विदेशी प्रभाव से उत्पन्न मानते हैं। उनके अनुसार भारतवर्ष में इसका प्रवेश ईसाई धर्म के साथ हुआ क्योंकि ईसाई धर्म का स्पष्ट प्रभाव पुराणों और महाकाव्यों में देखने को मिलता है। परंतु इन दोनों के मतों का एक पाश्चात्य विद्‌वान बार्थ खंडन करते हुए कहते हैं कि ''भक्ति भावना का उदय पूर्णरूप से भारतीय है। भक्ति का उद्‌भव और विकास पूर्णरूप से भारतीय परिवेश में होना ध्रुव सत्य है।''[2] इसी तरह सेनार्ट ने भी भक्ति का उद्‌भव भारतवर्ष में ही माना है। वैदिक साहित्य का अध्ययन करने से यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है। ''आर्य लोग ब्रह्मा, विष्णु, महेश की उपासना करते थे। इस पर विदेशी प्रभाव की बात स्वीकार करना उपहास का विषय होगा।''[3] भारतीय इतिहासकारों और विद्‌वानों ने भी भक्ति की

उत्पति कब और कैसे हुई, इसके प्रमाण खोजने का प्रयास किया है। पद्मपुराण के अनुसार ''भक्ति ने नारद को अपने जन्म की कथा सुनाई कि मैं द्रविड़ देश में जन्मी, कर्नाटक में बड़ी हुई, महाराष्ट्र में कुछ काल तक स्थित रही और फिर गुजरात में जाकर वृद्धा हुई हूँ।''[4] किंतु ऐतिहासिक दृष्टि से यह कथा सत्य नहीं मानी जाती है। आर्यों के आने से पहले ही इस देश में भक्ति का थोड़ा–बहुत विकसित रूप देखने को मिलता है। हाँ, इतना अवश्य कहा जा सकता है कि भक्ति की उत्पति दक्षिण से हुई है, जैसे– ''भक्ति द्राविड उपजी लाये रामानंद, परगट किए कबीर ने, सात द्वीप नौ खंड।''[5]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि यह भक्ति मूल रूप से हमारे दक्षिण भारत से प्रारंभ हुई है। दक्षिण भारत के तमिलनाडु को मानव निवास का आदिम स्थान माना जाता है। दक्षिण भारत में दस्यु, शबर, राक्षस, वानर आदि नामों से आदिम मानव का निवास वेदों में उल्लिखित है। भारत के इतिहास में यह दक्षिणी राज्य सबसे पहले भक्ति का केंद्र बना। छठी शताब्दी से नवीं शताब्दी तक तमिल में जो साहित्य रचा गया, वह पूर्णतः भक्ति साहित्य था। 'आलवार' भक्तों द्वारा तमिल में भक्ति साहित्य की रचना हुई। दक्षिण भारत के सभी प्रांतों में भक्ति आंदोलन का सूत्रपात 'आलवार' एवं नायनार भक्तों ने किया। यमुनाचार्य, रामानुजाचार्य, माध्वाचार्य, निंबार्काचार्य आदि दक्षिण भारत के प्रसिद्ध आचार्यों ने संस्कृत में भाष्य लिखकर भक्ति आंदोलन को एक ठोस सैद्धांतिक आधार प्रदान किया। आलवारों ने सर्वप्रथम तमिल भाषा में अपनी भक्ति–रचना की और यमुनाचार्य ने उनकी भक्ति–रचनाओं को 'दिव्य–प्रबंधम' में संकलित कर वहाँ के लोगों के लिए सुलभ बनाया। किसी भी भारतीय भाषा के साहित्य पर दृष्टि डालें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि दसवीं शताब्दी से पूर्व कहीं भी भक्ति का उद्भव पूर्णतया नहीं मिलता। यह एकमात्र तमिल साहित्य है जहाँ भक्ति साहित्य की शुरुआत छठी शताब्दी से ही देखी जाती है।

भक्ति आंदोलन को दक्षिण भारत से उत्तर भारत की ओर लाने का श्रेय रामानुज के शिष्य 'रामानंद' को जाता है। उनका जन्म प्रयाग में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। वे एक महान धर्म सुधारक थे। उन्होंने अल्पायु में ही संन्यास ग्रहण कर लिया था, वे राम के भक्त थे, उन्होंने वैष्णव धर्म का द्वार सभी के लिए खोल दिया था। उन्होंने प्रेम व भक्ति पर जोर दिए। रामानंद ने चारों वर्णों को भक्ति का उपदेश दिया। रामानंद के 12 शिष्य थे जिन्होंने उत्तर भारत में भक्ति आंदोलन को प्रबल करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। रामानंद के शिष्यों में कबीर एक महान संत थे। इनका जन्म सन् 1398 में काशी में हुआ था। इन्होंने भी प्रेम व भक्ति पर बल दिया। इन्होंने अंधविश्वास, कर्मकांड, दकियानूसी विचार, तीर्थ आदि पर खूब व्यंग्य किया है। इन्होंने पहली बार धर्म को अकर्मण्यता की भूमि से हटाकर कर्मयोगी की भूमि पर लाकर खड़ा कर दिया। कबीर हिंदू–मुसलमान, संप्रदायों की एकता के महान अग्रदूत थे। कबीर

ने हिंदुओं की मूर्तिपूजा की आलोचना करते हुए लिखा है कि 'पाहन पूजे हरि मिले, तो मैं पूजूँ पहार, ताते यह चाकी भली, पीस खाए संसार।' इस प्रकार कबीर उच्च कोटि के निर्गुण भक्त ही नहीं बल्कि वे समाज सुधारक, उपदेशक, प्रगतिशील विचारक भी थे। रैदास रामानंद के अति प्रसिद्ध शिष्यों में से एक थे। जन्म से वे चमार थे लेकिन इनका धार्मिक जीवन जितना गूढ़ था, उतना ही उन्नत और पवित्र था। सिक्खों के 'गुरु ग्रंथ साहिब' में संगृहीत रैदास के तीस से अधिक भजन हैं। रैदास के अनुसार मानव सेवा ही जीवन में धर्म की सर्वोत्कृष्ट अभिव्यक्ति का माध्यम है। कबीर तथा नानक के साथ निर्गुण भक्ति की परंपरा में दादू का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। इनका जन्म अहमदाबाद में एक जुलाहा के यहाँ हुआ था, इनकी मृत्यु 1603 ई. में राजस्थान के नराना या नारायण गाँव में हुई, जहाँ इनके अनुयायियों (दादू–पंथियों) का मुख्य केंद्र है। इसी प्रकार उत्तर भारत में भक्ति का प्रचार–प्रसार करने में गुरुनानक, चैतन्य, वल्लभाचार्य, मीराबाई, सूरदास, कबीरदास, जायसी, माधवाचार्य, नामदेव, निंबार्क आदि संतों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

चौदहवीं–पंद्रहवीं शताब्दी में उत्तर भारत की तरह पूर्वोत्तर भारत में भी राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक वातावरण में काफी असंतोष फैला हुआ था। इसी असंतोष की वजह से आम जनता चिंतित थी। भक्ति को लेकर आम आदमी में निराशाजनक स्थिति थी। ऐसे वक्त में श्रीमंत शंकरदेव ने यहीं से भक्ति आंदोलन के तहत जन जागरण का अभियान शुरू किया था। असम में उनके द्वारा चलाए गए धार्मिक आंदोलन को 'नव वैष्णव धर्म' की संज्ञा दी गई है। उन्होंने हिंदी जगत के संत कवि कबीरदास की भाँति भगवान के निर्गुण रूप को अपनाकर उपासना की। उन्होंने अपने धर्म–प्रचार में जाति एवं समुदायों में बिना कोई विभाजन किए इसे बराबर रूप में विकसित किया। भक्ति को एक वर्ग विशेष के चंगुल से निकालकर सर्वव्याप्त किया। महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव ने 32 वर्ष की उम्र से ही तीर्थ यात्रा करना प्रारंभ किया। उन्होंने भारत के समस्त तीर्थो का दर्शन किया। पुरी, वृंदावन, मथुरा, काशी, प्रयाग, बद्रिकाश्रम, अयोध्या, रामेश्वरम आदि तीर्थ स्थान इसमें शामिल हैं। उनके द्वारा किए गए इस प्रकार के लगभग 12 वर्ष की तीर्थ यात्रा से वे भारतीय जनमानस और संस्कृति को जानने में सक्षम हुए थे। यात्रा के दौरान रूप गोस्वामी और सनातन गोस्वामी से भी उनका साक्षात्कार हुआ था। तीर्थ यात्रा के दौरान उन्हें जीवन के अनेक अनुभवों को अपने धार्मिक साहित्य में स्थान दिया। श्रीमंत शंकरदेव ने बरगीत, अंकिया नाट, भाओना आदि की रचना की। उन्होंने गाँवों में नामघर स्थापित कर पूर्वोत्तर क्षेत्र के निवासियों को भाईचारे, सामाजिक सद्भाव और एकता का संदेश दिया। उन्होंने असमिया जातीय जीवन को अपनी विशाल प्रतिभा और साधना के द्वारा समृद्ध किया। तत्कालीन असमिया समाज के विभिन्न जाति एवं समुदायों में अपने अपने धर्म–विश्वास, आचार–व्यवहार, रीति–नीति आदि में समानताएँ एवं

असमानताएँ विद्यमान थीं। इन सभी विविधताओं को जड़ से खत्म करने के लिए श्रीमंत शंकरदेव ने 'नव वैष्णव भक्ति' को संपूर्ण पूर्वोत्तर प्रदेश में स्थापित करने का प्रयास किया। श्रीमंत शंकरदेव भारतीय मध्ययुगीन आंदोलन की महान विभूतियों में से एक हैं। उनकी साधना से समूचा असम एक नई सांस्कृतिक, धार्मिक और वैचारिक चेतना के प्रकाश से आलोकित हो उठा। उनकी विचारधाराओं ने न केवल समकालीन समाज में नई चेतना जगाई बल्कि असम के करोड़ों लोगों को भक्ति का एक नया मार्ग भी दिखाया। उनका जन्म असम के नगाँव जिले के आलिपुखुरी (बरदोआ) नामक गाँव में हुआ था। बचपन में ही इनके सिर से माता–पिता का साया हट गया था, इसके बाद इनका पालन–पोषण इनकी दादी ने किया। बारह वर्ष की आयु में, उन्होंने महेंद्र कंदलि की पाठशाला में अपनी प्राथमिक शिक्षा शुरू की और आठ साल की उम्र में लगभग सभी शास्त्रों का अध्ययन पूरा कर लिया था। वे भक्त, विचारक और कवि थे। असमिया, संस्कृत और ब्रजवाली भाषाओं पर उनका समान अधिकार था। श्रीमंत शंकरदेव ने विभिन्न भक्ति रचनाओं की रचना करके आम जनता को भक्ति और शांति का संदेश देने का प्रयास किया। उन्होंने विभिन्न विधाओं में काव्य, गीत, नाटक, भटिमा आदि की रचना की। शंकरदेव की कृतियों को असमिया साहित्य के प्रसिद्ध आलोचक डॉ. सतेंद्रनाथ शर्मा ने निम्नलिखित रूप से प्रस्तुत किया है–

क. काव्य–i. हरिश्चंद्र उपाख्यान ii. रुक्मिणी हरण काव्य iii. बलिचलन iv. अमृत मंथन v. अजामिल उपाख्यान vi. कुरुक्षेत्र

ख. भक्तितत्व प्रकाशक संग्रह– i. भक्ति प्रदीप ii. भक्ति रत्नाकर (संस्कृत) iii. निमि नवसिद्धि संवाद iv. अनादि पतन

ग. अनुवाद–i. भागवत प्रथम, द्वितीय, षष्ट, (केवल अजामिल उपाख्यान) अस्टम (बलिचलन अमृत मंथन) दशम, एकादश, द्वादश स्कंध ii. उत्तरकांड रामायण

घ. अंकिया नाट–i. पत्नी प्रसाद ii. कालियदमन iii. केलिगोपाल iv. रुक्मिणीहरण v. पारिजात हरण vi. रामविजय

ङ. गीत–i. बरगीत ii. भटिमा iii. टूटय और छपय्य

च. नाम प्रसंग–i. कीर्तन ii. गुणमाला

श्रीमंत शंकरदेव द्वारा रचित इन उपर्युक्त सभी ग्रंथों में अखिल भारतीय भक्ति आंदोलन की सभी विशेषताएँ उपलब्ध हैं। उनके बरगीतों में कृष्ण–वंदना, कृष्ण के रूप–सौंदर्य का वर्णन, नाम की महिमा, गोपियों का विरह वर्णन तथा कहीं–कहीं हमें राम का वर्णन भी देखने को मिल जाता है। असमिया साहित्य के प्रसिद्ध आलोचक डॉ. वाणीकांत काकति का मानना है कि ''शंकरदेव के बरगीत उच्च नैतिक और आध्यात्मिक भावों पर प्रतिस्थित है। इसीलिए इन गीतों को बरगीत (श्रेष्ठ गीत) कहा जाता है।''[6] डॉ. कृष्णनारायण प्रसाद मागध लिखते हैं कि ''मेरी दृष्टि में ये मन के लिए वशीकरण मंत्र अथवा मनोविजय की साधना के गीत हैं, जिनमें भावों की दृष्टि

बहिर्जगत से त्रास और आत्मोद्धार की करुणा का वातावरण है।''[7] 'बरगीत' शंकरदेव की सभी रचनाओं में उत्कृष्ट हैं, इससे उन्होंने असम के लोगों को भक्ति के एक नए रूप से जोड़ने का प्रयास किया। तीर्थ से घर लौटने के बाद मिथिला के एक पंडित जगदीश मिश्र ने शंकरदेव को श्रीमद्भागवत की एक प्रति प्रदान की। श्रीमंत शंकरदेव ने भी श्रीमद्भागवत को ही भक्ति–साधना के आधार स्तंभ के रूप में स्वीकार किया। इस ग्रंथ से प्रभावित और प्रेरित होकर उन्होंने असम में पूर्व से चली आ रही मूर्ति पूजा एवं बलि–विधान का खंडन करते हुए समाज को एक ईश्वर (एकशरण–नामधर्म) की पूजा करने का आह्वान किया। हिंदी की ज्ञानमार्गी शाखा के कवियों ने भी अपनी रचनाओं में मूर्तिपूजा का खंडन करते हुए निराकार भगवान की उपासना की बात कही है। इस संदर्भ में शंकरदेव की निम्नलिखित पंक्तियाँ उदाहरण के लिए द्रष्टव्य हैं–

''अन्य देवी–देव न करीबा हेव, न साईबा प्रहाद तार।
मूर्ति को न साईबा गृहो नपसिबा, भक्ति होबे व्यभिचार।
एक कृष्णदेव कोरिया हेव, धारियो ताहान नाम।
कृष्ण दाह हुया प्रहाद भुजिबा, हस्ते करा तान काम।''[8]

श्रीमंत शंकरदेव के विचारों ने तत्कालीन पूरे असम और भारत के उत्तर–पूर्वी प्रांत में सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में प्रभाव डालना शुरू कर दिया था। उस समय आम जनता में धर्म को लेकर अस्थिरता का भाव था। इसी अस्थिरता और जनता को एकता के सूत्र में बाँधने के लिए शंकरदेव ने अंकिया नाट की रचना की। उनके द्वारा छह अंकिया नाट की रचना की गई। शंकरदेव द्वारा रचित अंकिया नाट असम का प्रसिद्ध लोकनाट्य है। उन्होंने एक विशेष उद्देश्य को सामने रखते हुए अंकिया नाटकों की रचना की थी। तत्कालीन असमिया समाज में व्याप्त तंत्र–मंत्र, जादू–टोना, अंधविश्वास, आडंबर, धर्म के नाम पर चल रहे व्यवसाय को समाप्त करने के उद्देश्य से उन्होंने अंकिया नाट की रचना की थी। वैष्णव भक्ति के माध्यम से समस्त असम की जनता को एक सूत्र में बाँधना चाहते थे। धर्म के नाम पर समाज में जो पाखंड फैल रहा था, उससे जनता को बचाकर सबको एक ईश्वर की भक्ति में लीन करना चाहते थे। भारतीय मध्ययुगीन वैष्णव भक्ति आंदोलन से प्रभावित होकर, उन्होंने जनता को बोधगम्य बनाने के लिए नाट्य रूपों का सहारा लिया। उन्होंने समाज में उच्च नैतिक आदर्शों को लोकमंच के द्वारा प्रस्तुत किया। आज भी असम के ग्रामीण अंचलों में अंकिया–नाट श्रद्धा और भक्ति–भाव के साथ खेले जाते हैं। उन्होंने संस्कृत नाट्य परंपराओं से पूर्व राग, नांदी, सूत्रधार तथा आंगिक एवं वाचिक अभिनय की विशेषताओं को लिया एवं 'मध्ययुग के प्रथम चरण में प्रचलित संगीत पद्धति को भी ग्रहण किया। 'गीत गोविंद' की नृत्यनाट्य परंपरा से लय और माधुर्य को अपनाया। 12 वर्ष की अपनी तीर्थयात्रा में प्रसिद्ध वैष्णव स्थलों, ब्रज, मथुरा, वृंदावन, मिथिला, जगन्नाथपुरी में रामलीला, कृष्ण लीला, रासलीला तथा अन्य उत्सवों से भागवत धर्म और कथाओं की प्रेरणा लेकर इसे

'अंकिया नाट' में समाहित किया। साथ ही इसमें असम तथा पड़ोसी प्रांतों के लोक जीवन को अनुप्राणित करने वाली मनोरंजन पद्धतियों और कलाओं की विशेषताओं को भी ग्रहण किया। महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव ने स्थानीय तथा बाहरी परंपराओं के सूक्ष्म अध्ययन एवं निरीक्षण के पश्चात अपनी आवश्यकताओं के अनुसार इसे प्रदर्शित करने के लिए साधन एकत्रित किए।

श्रीमंत शंकरदेव की तरह उनके शिष्य माधवदेव ने भी मध्यकालीन भक्ति आंदोलन के समय अपनी महत्पवूर्ण कृतियों से संपूर्ण असमवासियों को भक्ति आंदोलन से जोड़ने का प्रयास किया। माधवदेव का जन्म सन 1489 में असम के उत्तर लखीमपुर जिले के नारायणपुर के निकट लेतेकुपुखुरी गाँव में हुआ था। श्रीमंत शंकरदेव से मिलने के पूर्व माधवदेव शाक्त धर्म के अनुयायी थे। परंतु 1522 ई. में उनकी मुलाकात श्रीमंत शंकरदेव से होती है और यहीं से वे वैष्णव धर्म में अनुप्राणित हुए। उन्होंने श्रीमंत शंकरदेव को अपने परम आदरणीय गुरु के रूप में स्वीकार किया। माधवदेव ने श्रीमंत शंकरदेव के साथ असम में वैष्णव भक्ति आंदोलन को व्यापक बनाने में बहुत योगदान दिया है। शंकरदेव द्वारा स्थापित भागवत पुराण के आधार पर विष्णु या कृष्ण केंद्रित 'एकारण धर्म' को माधवदेव और उनके 12 शिष्यों ने सांगठनिक विस्तार दिया। माधवदेव के इन 12 शिष्यों के बारे में असमिया के प्रसिद्ध आलोचक डॉ. सत्येंद्रनाथ शर्मा का कहना है ''माधवदेव द्वारा नियुक्त इन 12 दूतों ने वैष्णव आस्था व अभियान की ज्योति असम के विभिन्न भागों में पहुँचाई। उन्होंने वैष्णव मठों से मिलते–जुलते प्रतिष्ठानों, सत्रों की नींव डाली और जातिगत सामाजिक विभेद किए बिना जन समुदाय के सभी तबकों में अपने पंथ की शिक्षाओं– आदर्शों का प्रचार किया।''[9] गुरु की अनुप्रेरणा से एवं असम में नव वैष्णव धर्म की प्रतिष्ठा के लिए उन्होंने विविध ग्रंथों की रचना एवं अनुवाद किया। उनके द्वारा रचित ग्रंथों की सूची निम्नलिखित है–

काव्यग्रंथ– राजसूय काव्य,

भक्ति तत्वमूलक रचनाएँ– जन्म रहस्य, भंजन, दधिमंथन, चोर–धरा, पिंपरा–गुचोवा, भूमि–लेटोवा, भोजन विहार

अनूदित रचना– जन्म रहस्य, भक्ति रत्नावली, नाम मालिका, अग्निकांड रामायण

प्रसिद्ध भक्तिमूलक कृति– नामघोषा

गीत– बरगीत

'नामघोषा' और 'भक्ति रत्नावली' माधव देव की सर्वोत्कृष्ट रचनाएँ हैं। 'नामघोषा' ग्रंथ में एक हजार पद संगृहीत हैं। यह ग्रंथ इनकी परिपक्व अवस्था की रचना है। इसमें गीता और उपनिषदों का दार्शनिक भाव पूर्णरूपेण समाहित हुआ है। यह रचना संगीतमय है। यह ग्रंथ इनके आदर्श व्यक्तित्व की निशानी है। असमिया साहित्य एवं

संस्कृति के विकास में 'नामघोषा' ग्रंथ का अवदान सर्वश्रेष्ठ है। असमिया भाषा के प्रकांड पंडित डॉ. वाणीकांत काकति ने इस ग्रंथ के तीन वैशिष्ट्य को इस प्रकार निर्धारित किया है– 1. गुरु की महिमा, 2. माधवदेव का ईश्वर के प्रति दास्य भावना और 3. कृष्ण भक्ति का माहात्म्य। 'भक्ति रत्नावली' 12 अध्यायों में समाया हुआ गूढ़ तत्वों से भरपूर मर्मस्पर्शी ग्रंथ है। 'बरगीत' भी भक्ति–रस से सराबोर भक्त–हृदय का विहंगम अस्तित्व है। उन्होंने अपने बरगीतों में तीन तरह के विषयों का समायोजन किया है। जैसे– 1. प्रार्थना प्रधान विषयक बरगीत 2. उपदेश प्रधान विषयक बरगीत और 3. लीला विषयक बरगीत। वैसे तो बरगीत के प्रणेता श्रीमंत शंकरदेव हैं परंतु उनके शिष्य माधवदेव ने बरगीतों की रचना करके अपने गुरु की विरासत को आगे बढ़ाया। माधवदेव ने तीनों स्तरों के बरगीतों में प्रभु की भक्ति, उनकी विविध लीलाएँ तथा समाज के सभी व्यक्तियों को आदर्श का उपदेश देते हुए संपूर्ण असमिया समाज को वैष्णव भक्ति से अनुरक्त करने का प्रयास किया। साधारण आम जनता को भक्ति मार्ग से जोड़ने के लिए इससे अच्छा उपाय तत्कालीन समाज में दूसरा नहीं था। हिंदी जगत में कबीर ने जिस प्रकार सभी वर्णों की जातियों को निर्गुण भक्ति के अथाह सागर में डुबोने का प्रयास किया था ठीक इसी तरह माधवदेव ने भी असम के विविध जाति–जनजाति एवं सभी समुदायों को पहले से चली आ रही भक्ति के कठोर विधि–विधानों से छुटकारा दिलवाकर उनके गुरु श्रीमंत शंकरदेव द्वारा स्थापित 'नव वैष्णव भक्ति' से जोड़ने का प्रयास किया था। कृष्ण–भक्त माधवदेव का मानना है कि इस लोक में सिर्फ एक ही परम ब्रह्म है, जो हमें सभी माया–मोह से मुक्ति दिलवा सकते हैं। उन्होंने अपने बरगीतों के माध्यम से समाज को एक सूत्र में पिरोने की कोशिश की है। उनके द्वारा रचित उपदेशमूलक बरगीत का एक उदाहरण निम्नलिखित है–

ध्रुव–रे मन सेहहु हरिकहू चरणा
निकट देखहु निज मरणा।
देखत हरिकहु चरण शरण बिने
नाहि नाहि भवभय तरणा।।
पदः– चारि बेद पुराण यत भारत
गीता भागवत चाई।
ऊहि सार बिचार कय भाषत
हरिर बिने तारक नाई।।
सनक सनातन मुनि शुक नारद
चतुरबयन शूलपानि
सहस्त्रबयन आदि गावत हरिगुण
सकल निगम तत्व जानी।
कृष्ण नाम यश परम अमिया रस

गावत मुकुट निशेष
परम मुरुखमति कहय माधव दीन
शंकर गुरु उपदेश।।[10]

महापुरुष माधवदेव इन पंक्तियों के माध्यम से हमें यह उपदेश देते हैं कि– हे मन, देखो अपनी मृत्यु काफी नजदीक है। भगवान के चरणों के आश्रय से ही हमें मुक्ति मिल सकती है। चारों वेद, पुराण, महाभारत, गीता, भागवत आदि सभी धर्म ग्रंथों में भी यही कहा गया है कि इस संसार में हरि के अलावा कोई दूसरा उद्धारकर्ता नहीं है। सभी देवी–देवता, नारदमुनि, ब्रह्मा, शिव आदि सभी हरि का ही गुणगान करते हुए उनके कीर्तन करते हैं। अतः हमें भी अपने ऐतिहासिक ग्रंथों से यह सीखकर सिर्फ एक ही हरि का भजन–कीर्तन करना चाहिए।

इस प्रकार माधवदेव द्वारा ऐसे उपदेशमूलक गीतों की रचना के पीछे उनका उद्देश्य तत्कालीन समाज को एक सूत्र में बाँधने का था। महापुरुष शंकरदेव द्वारा समाज के हित के लिए चलाए जा रहे सभी अभियानों का उनके शिष्य माधवदेव ने बखूबी अनुपालन किया। महापुरुष शंकरदेव के समय असम में विभिन्न धर्म, विभिन्न रीति–नीतियाँ अनेक प्रकार के आचार–विचार आदि समाज में विद्यमान थे। नैतिक आदर्श, आध्यात्मिकता, सत्यधर्म एवं आचरण के अभाव में समाज व्यवस्था अनेक प्रकार से विशृंखलित थी। जन साधारण के सामने एक नैतिक आदर्श के अभाव के चलते वे अपनी रुचि के अनुसार समाज में जीने के लिए सही पथ नहीं चुन पा रहे थे। इसके अलावा भी असम की विभिन्न जगहों पर वामचारी तांत्रिकों का आधिपत्य था। इन वामचारी तांत्रिकों के विविध मतों से बलि–विधान, विविध देव–देवी की उपासना समाज में प्रचलित थी। महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव और उनके शिष्य माधवदेव ने पुराने सनातन धर्म को नए रूप में अपनी बहुमूल्य कृतियों द्वारा समाज के सामने प्रस्तुत किया।

महापुरुष माधवदेव ने भी छह अंकिया नाटकों की रचना की थी। भक्ति–आंदोलन से प्रेरित होकर उन्होंने श्रीकृष्ण की बाल लीलाओं का चित्रण अपने अंकिया नाटकों में किया है। उनके नाटकों में श्रीकृष्ण के बालपन के सभी पहलुओं को साक्षात देखा जा सकता है। कृष्ण का मक्खन चुराकर खाना, वृंदावन में अपने समकालीन बंधुओं के साथ विविध प्रकार के खेल खेलना, माँ यशोदा को खेल–खेल में सताना आदि विशेषताएँ माधवदेव के नाटकों का मूल विषय हैं। महापुरुष माधवदेव अपने गुरु के पद–चिह्नों का अनुसरण करते हुए स्वयं हरिकीर्तन में लीन हो गए। माधवदेव ने अपने शिष्यों के माध्यम से श्रीमंत शंकरदेव के भक्ति–संदेश को असम के दूर–दूर के क्षेत्रों तक पहुँचाया। अपने गुरु की तरह इन्होंने भी असम की सभी जाति एवं जनजातीय समाज को भारतीय धर्म परिधि में बाँधने का भरपूर प्रयास किया था। उन्होंने साधारण जनमानस को भारतीय साहित्य एवं चिंतन से परिचित करवाने के लिए संस्कृत में रचित प्राचीन भारतीय धर्म–ग्रंथों को सरल असमिया भाषा में अनूदित

किया था। असम में नव वैष्णव धर्म के प्रचार–प्रसार के लिए माधवदेव ने भी अपने गुरु की तरह नामघर के साथ–साथ असम के विविध जिलों में सत्र की स्थापना की।

इस तरह मध्यकालीन भक्ति आंदोलन के विकास में असम के महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव और माधवदेव का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। भक्ति के द्वारा श्रीमंत शंकरदेव अपने लक्ष्य को साकार करना चाहते थे, उसे संपूर्ण करने के लिए धर्म, समाज, साहित्य, कला आदि सभी क्षेत्रों में उन्होंने एक नए दिगंत का अन्वेषण किया। उन्होंने अपने शिष्य माधवदेव के सहयोग से एक विशाल धर्म साहित्य का प्रवर्तन किया। अपनी रचनाओं के माध्यम से उन्होंने भक्ति को बड़े ही सहज–सरल ढंग से जनमानस तक पहुँचाया। काव्य, नाट्य, भक्ति प्रधान रचना, धार्मिक पुस्तकों के अनुवाद, गीत, सत्रों की स्थापना आदि के जरिए महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव और माधवदेव ने असम में एक विशाल नव वैष्णव भक्ति का द्वार खोल दिया था। असम में श्रीमंत शंकरदेव और माधवदेव द्वारा चलाए गए नव वैष्णव भक्ति आंदोलन ने तत्कालीन समय की विविधता को दूर किया और राष्ट्रीय एकता को स्थापित करने में दोनों महापुरुष सफल रहे। इन दोनों संतों द्वारा रचित विविध ग्रंथों एवं उनके उपदेशों का आज भी असमिया समाज बखूबी से अनुपालन कर रहा है। असम के सभी नामघरों में इनके द्वारा रचित बरगीतों का गायन किया जाता है तथा इनके द्वारा दिखाए गए सभी आध्यात्मिक मार्गों का आज समस्त असमिया समाज अनुसरण कर रहा है।

संदर्भ ग्रंथ

1. हजारीप्रसाद द्विवेदी–हिंदी साहित्य की भूमिका– पृ.38
2. डॉ. यूसुफ हुसैन, मध्ययुगीन भारतीय संस्कृति पृ.4
3. डॉ. यूसुफ हुसैन, मध्ययुगीन भारतीय संस्कृति पृ.5
4. पद्मपुराण, उत्तराखंड, पृ.50–51
5. रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, पृ. 72
6. डॉ. वाणीकांत काकति, बरगीत शीर्षक प्रबंध, पुरनी असमिया साहित्य, पृ.5
7. डॉ. कृष्णनारायण प्रसाद मागध, महाकवि शंकरदेव, पृ.71
8. हरिकृष्ण देवसरे, शंकरदेव, पृ.29
9. प्रो. सूर्यकांत त्रिपाठी, भारतीय भक्ति आंदोलन और श्रीमंत शंकरदेव, भूमिका, पृ.20
10. सं. बापचंद्र महंत, प्रबंध गानर परंपरागत बरगीत (माधवदेव के बरगीत खंड से), पृ.133

❑❑❑

काव्यशास्त्र में वर्णित शांत रस का दार्शनिक परिशीलन

मृगांक मलासी

भारतीय काव्यशास्त्र में विशेष रुचि। विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं और पुस्तकों में शोध आलेख प्रकाशित। कैंब्रिज स्कूल ऑफ डिस्टेन्स एजुकेशन द्वारा सम्मानित। संप्रति–सहायक प्राध्यापक,संस्कृत विभाग, डॉ. शिवानंद नौटियाल राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,उत्तराखंड।

'रस' शब्द का प्रयोग वैदिक काल से प्रचलित रहा है। रस शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है आस्वाद; किंतु इसके अतिरिक्त इसका एक अन्य अर्थ भी होता है जिसे द्रव्यत्व या तरल पदार्थ कहते हैं। इस प्रकार की व्युत्पत्ति दो प्रकार से संभव है– रस्यते आस्वाद्यते इति रसः और सरते इति रसः। प्राचीन भारतीय वाङ्मय में रस के चार अर्थों में प्रयोग दृष्टिगोचार होते हैं–

- पदार्थों का रस या षडरस के रूप में यथा– अम्ल, तिक्त, कषाय आदि।
- आयुर्वेद में रस का प्रयोग हुआ है। इसका अर्थ रसायन अथवा रसौषधि से है।
- साहित्य के नवरस
- भक्ति रस या मोक्ष[1]

काव्यशास्त्र के क्षेत्र में 'रस' पद के प्रयोग पर बात करें तो तैत्तिरीय उपनिषद में वर्णित रस की भाँति काव्य के रस का संबंध भी आनंद से है। साहित्यिक विवेचना में रसगंगाधरकार द्वारा समादृत रस के स्वरूप का आधार भी तैत्तिरीय उपनिषद् ही है। उपनिषदों की भाँति काव्य में भी रस को सारभूत तत्व के रूप में माना गया है।[2] जिस प्रकार दर्शन में रसप्राप्ति अथवा बह्मप्राप्ति को दृष्टि में रखकर दर्शन के सभी प्रमुख तत्वों का प्रतिपादन हुआ है उसी प्रकार काव्यशास्त्र के क्षेत्र में भी यह कहा गया है कि नाटक के सभी तत्वों का निरूपण काव्यरस की प्राप्ति हेतु ही हुआ है। दर्शन के आस्वाद्य अर्थ में रस के प्रयोग भी काव्यशास्त्र में उपलब्ध होते हैं।[3]

साहित्यशास्त्र में रस का विवेचन उसकी परिभाषा अथवा स्वरूप से प्रारंभ न होकर निष्पत्ति से प्रारंभ होता है। आचार्य भरत का सूत्र **विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगात् रसनिष्पत्तिः**[4] इसका प्रमाण है। अर्थात विभाव, अनुभाव और संचारी भावों के संयोग से रस की निष्पक्ति से मन में जो और जिस प्रकार का अनुभव होता है, वही रस है। रसानुभूति वस्तुतः एक मानस व्यापार है जिसमें आस्वाद्य एवं सहृदय के हृदय का

संवाद अपेक्षित होता है। इस प्रक्रिया में सहृदय के हृदय पटल पर काव्य के भावों की प्रतिच्छवि परिव्याप्त हो जाती है एवं सामाजिक की वासना समुचित विषय में नियंत्रित होकर उसे काव्यात्मक शब्द से भी अधिक व्यंग्यात्मक अर्थ की प्रतीति कराती है। स्थायी भाव के रूप में वासनाएँ मनुष्य के हृदय में संस्कार रूप में रहती ही हैं तथा विभावादि की सम्यक योजना से परिपुष्ट होकर वे चमत्कार उत्पन्न करती हैं। काव्यशास्त्र में भरत से लेकर अद्यावधि रस एवं उसके भेदों[5] का विशद विवेचन हुआ है। संप्रति शांत रस का विवेचन किया जा रहा है।

शांत रस पर दृष्टिपात करने से द्योतित होता है कि शांत रस के स्थायीभाव आदि तत्वों के निर्धारण हेतु काव्यशास्त्रज्ञों ने सांख्य, योग तथा न्यायादि दर्शनों की पर्याप्त सहायता ली है। नाट्यशास्त्र में शांत रस का निरूपण योगप्रभाव से अनुप्रेरित प्रतीत होता है। इसमें प्रयुक्त यम, नियम और धारणा योगसूत्र में उपलब्ध पारिभाषिक शब्दों की ओर संकेत करते हैं। लिंगग्रहण से अभिप्राय यहाँ अष्टांग से लिया जा सकता है। भरतमुनि ने शांत रस को प्रकृति रूप मानते हुए रत्यादि भावों को विकार माना है। विकार प्रकृति से उत्पन्न होते हैं और उसी में लीन हो जाते हैं।[6] अभिनवगुप्त का कथन है कि शांतरस को रस रूप में स्वीकार करना अन्य शास्त्रकारों को भी अभिमत था जिन्होंने प्रत्यभिज्ञा दर्शन में नव रसों का सिद्धांत स्वीकार किया है।[7] शांत रस के संबंध में जे.एल. मैसन और एम.वी. पटवर्धन का कथन[8] है कि अभिनव और योगवासिष्ठ दोनों परस्पर प्रभावित होते हैं, दोनों का दृढ़ संबंध है। शम शब्द की व्युत्पत्ति योगवासिष्ठ के प्रायः सभी पृष्ठों पर मिलती है।[9] योग के अनुसार चित्त की सभी वृत्तियों को असंप्रज्ञात समाधि कहते हैं जिससे आत्मनिष्ठ (साधक) को मोक्ष प्राप्ति होती है। यही बात शांत रस के विषय में भी घटित होती है जो समस्त प्राणियों के लिए सुखकर एवं हितकर है।[10]

इस संबंध में बात की जाए कि शांत रस भारतीय दर्शन से किस प्रकार प्रभावित है तो शांत रस पर साक्षात् दार्शनिक प्रभाव स्थायी भाव निर्धारण के प्रसंग में प्रदर्शित होता है। शांत रस के स्थायी भाव के विषय में आचार्यों में मतवैभिन्न्य है। रुद्रट सम्यक–ज्ञान अथवा तत्वज्ञान को[11] आनंदवर्धन 'तृष्णाक्षयसुख' को[12] मम्मट निर्वेद को[13] तथा धनंजय शम[14] को शांत रस का स्थायी भाव स्वीकार करते हैं। शांत रस के स्थायी भाव के विषय में सर्वाधिक प्रबल मत है तत्वज्ञान से उत्पन्न 'निर्वेद' को स्थायी मानना जिसका खंडन करते हुए आचार्य अभिनवगुप्त ने कहा है कि तत्वज्ञान से मोक्ष होता है न कि तत्वज्ञान को जानकर निर्वेद प्राप्त होता है और निर्वेद से मोक्ष होता है। सांख्य–योग आदि दर्शनों में जहाँ मोक्ष का वर्णन आया है उसके साथ वैदेह्य तथा प्रकृतिलय की दो अन्य दशाओं का भी उल्लेख मिलता है। जिस साधक को सद्गुरु के उपदेश से तत्वज्ञान अथवा आत्मसाक्षात्कार हो जाता है वह अपनी इस साधना के फलरूप में मोक्ष प्राप्त करता है, लेकिन जो अज्ञानवश आत्मा के अतिरिक्त मूल प्रकृति

को अथवा अहंकार, पंचतन्मात्रा, पंचभूत अथवा इंद्रिय आदि विकारों को आत्मा मानकर चलता है वह मृत्योपरांत 'विदेह' नाम से कहा जाता है। इसलिए सांख्यादि में तत्वज्ञान से रहित वैराग्य को 'प्रकृतिलय' का कारण बताया गया है किंतु तत्वज्ञानजन्य 'निर्वेद' को ही शांत का स्थायी भाव मानने वालों का कथन[15] है कि तत्वज्ञानी को सर्वत्र ही दृढ़तर वैराग्य होता देखा जाता है। इसीलिए पतंजलि मुनि ने योगदर्शन में कहा है कि आत्मा का ज्ञान हो जाने पर गुणों के प्रति जो तृष्णा का अभाव होता है वह 'पर वैराग्य' कहलाता है। पी.एल. मैसन तथा पटवर्धन ने इसे और भी स्पष्ट किया है।[16] इसके प्रत्युत्तर में अभिनवगुप्त ने योगदर्शन का ही एक सूत्र[17] उद्धृत करते हुए कहा है कि इस प्रकार का वैराग्य तो ज्ञान की पराकाष्ठा का नाम है। इसलिए तत्वज्ञान से उत्पन्न निर्वेद नहीं अपितु स्वयं तत्वज्ञान ही मोक्ष के प्रति कारण है। इस कथन का विरोध करते हुए पूर्वपक्षी अक्षपाद के दुःखजन्यप्रवृत्ति[18] सूत्र को उद्धृत करते हैं। जिसमें मिथ्याज्ञान के विनाशक तत्वज्ञान को दोषाभाव रूप वैराग्य का कारण कहा है। इसलिए तत्वज्ञान जन्य निर्वेद या वैराग्य को मोक्ष का कारण एवं शांत रस को स्थायी मानने में किसी प्रकार का दोष नहीं है परंतु अभिनवगुप्त वैराग्य एवं निर्वेद में अंतर मानते हैं। अभिनव का कथन है कि यदि वैराग्य को मान भी लिया जाए तो भी अपने कारण से उत्पन्न उसके मध्य में होने वाले उस वैराग्य को मोक्ष रूप फल की सिद्धि में साक्षात्कार नहीं माना जा सकता।

शांत रस के स्थायी भाव के विषय में चर्चा करें तो तत्वज्ञान से निर्वेद की उत्पत्ति होती है[19] ऐसा कहने से शम का अपर नाम निर्वेद हो जाता है। रत्यादि के स्थायीभाव भी शांतरस के स्थायी भाव हो सकते हैं। रत्यादिरूप आठ प्रकार की चित्तवृत्तियाँ श्रुतादिरूप अलौकिक विभाव विशेष के सहारे भिन्न प्रकार के होते हैं अध्यात्म चर्चा आदि विभावों से परिपोषित होकर वही रति शांति की जनक होती है। इसलिए अखंडानंदरूप आत्मविषयक रति ही मोक्ष का साधन होती है। अतः वही शांत रस के संबंध में स्थायी रूप है।[20] इस संदर्भ में अभिनवगुप्त गीता के श्लोक को उद्धृत करते हैं।[21] अभिनवगुप्त के अनुसार तत्वज्ञान ही मोक्ष का साधन है इसलिए उसी को स्थायीभाव मानना उचित है। तत्वज्ञान आत्मज्ञान का ही नाम है और इंद्रयादि से भिन्न आत्मा का ज्ञान ही आत्मज्ञान कहलाता है। इस रूप में आत्मा अनात्मा से भिन्न होता है। इसका विस्तृत निरूपण अभिनवगुप्त ने अन्यत्र (भगवद्गीता की व्याख्या) किया है। इसलिए ज्ञान आनंदादि विशुद्ध धर्मों से युक्त और परिकल्पित विषयोपभोग से रहित आत्मा ही यहाँ स्थायी है।[22]

उक्त स्थल पर एक शंका हो सकती है कि आत्मा तो सभी रसों में स्थायी हो सकता है फिर अन्य स्थायी मानने की आवश्यकता नहीं है। इसके समाधान में कहा जा सकता है कि रति आदि को स्थायी भाव मानना ही चाहिए क्योंकि अन्य रसों की स्थिति में उस प्रकार का आत्मसाक्षात्कारात्मक ज्ञान नहीं होता है जैसाकि शांत रस की

स्थिति में होता है। अभिनवगुप्त ने भी इसी प्रकार से इसका समाधान किया है।[23] योगदर्शन में बताया गया है कि असंप्रज्ञात समाधि की स्थिति में आत्मा का अपने स्वरूप में अवस्थान होता है।[24] उसी समय आत्मा के स्वरूप का साक्षात्कार होता है। समाधि की स्थिति को छोड़कर व्युत्थान काल में 'वृत्तिसारुप्यमितरत्र'[25] अर्थात वृत्तियों के समान रूप में वृत्तिकलुषित रूप में आत्मा का ज्ञान होता है अर्थात रत्यादि के अनुभव काल में आत्मा के विशुद्ध स्वरूप का भान नहीं होता। इसीलिए वहाँ आत्मा का स्थायित्व नहीं माना जा सकता। यदि वहाँ आत्मा का साक्षात्कार मान लिया जाए तो वह रत्यादि का पोषक न होकर विरोधी हो जाएगा। अतः केवल शांत रस में ही इसे स्थायी माना जा सकता है।

'ध्वन्यालोक' की टीका 'ध्वन्यालोक लोचन' में अभिनवगुप्त ने शांत रस का निरूपण सांख्यदर्शन की सहायता से किया है। शांत रस का पृथक रस के रूप में गणना के प्रसंग में अभिनव का कथन[26] योगदर्शन के प्रथम पाद के प्रथम तीन सूत्रों[27] से प्रभावित प्रतीत होता है। जिसका आशय है कि चित्तवृत्तियों के निरोध का नाम योग है। उस समाधि के समय में अन्य किसी प्रकार की वृत्ति न होने से द्रष्टा अर्थात आत्मा की अपने स्वरूप में स्थिति होती है और उस समाधि से भिन्न काल में सुख–दुःखादि रूप जिस प्रकार की चित्तवृत्ति होती है, उसी प्रकार का आत्मा का स्वरूप भासता है। लौकिक अनुभवों के काल में चित्तवृत्तियों का सारूप्य होने से विशुद्ध आत्म–स्वरूप की प्रतीति न होकर निर्विकल्पक समाधि काल में ही विशुद्ध आत्मस्वरूप की अनुभूति होती है परंतु व्युत्थान काल में चित्तवृत्तियों से कलुषित रूप में ही आत्मा की प्रतीति होती है। इसलिए शांत रस के स्थायीभाव 'आत्मा' की गणना अलग से नहीं की गई। किंतु शांत रस का पृथक आस्वाद होता है अतः शांत रस भिन्न माना गया है। अभिनव के अनुसार निर्वेद या शम आत्मा के स्वरूप नहीं अपितु चित्तवृत्ति रूप हैं। अतएव वे शांत के स्थायी नहीं अपितु आत्मा ही शांत रस में स्थायी भाव है। इन भावों को व्यक्त करते हुए उन्होंने योगसूत्र को भी पुष्टि रूप में प्रस्तुत किया है।[28] ये सारा लौकिक या अलौकिक चित्तवृत्तियों का समुदाय तत्वज्ञानरूप स्थायीभावरूप हो जाता है। उसके अनुभव ही यम, नियमादि के द्वारा उपकृत होकर शांत रस के अनुभाव होते हैं।[29]

ज्ञानमार्ग के समर्थक वेदांतियों का यह सिद्धांत है कि मोक्ष की प्राप्ति केवल तत्वज्ञान से ही हो सकती है और तत्वज्ञान के अधिकारी केवल संन्यासी हो सकते हैं परंतु अभिनव इस तर्क से सहमत नहीं हैं।[30] तत्वज्ञान होने के पश्चात यदि साधक निष्काम कार्य करता है तो वह सदा के लिए मुक्त हो जाता है किंतु उसके पश्चात भी यदि सकाम कार्य करता है तो इस प्रकार के साधकों को जिनको कि बौद्ध धर्म में 'बोधिसत्व' कहा जाता है फिर से जन्म धारण करना होता है। सांख्य में ऐसे लोगों को 'विदेह' या 'प्रकृतिलय' कहा जाता है। व्यापार शून्य होने के कारण शांत रस के अनुभावों का अभाव होता है। इसका खंडन योगसूत्र के आधार पर काव्यशास्त्र में किया

गया है। योगदर्शन में कहा गया है कि उस समाधि के छिद्रों में (अर्थात समाधि की खुलने के बीच–बीच में) संस्कारों के कारण अन्य ज्ञान भी होते रहते हैं।[31]

शांत रस का विशद विवेचन काव्यशास्त्र में हुआ है जो विभिन्न दर्शन ग्रंथों में वर्णित सामग्री से पर्याप्त साम्य रखता है। अभिनवगुप्त शांत रस में निहित दार्शनिक विचारधारा प्रस्तुत करते हैं जो अद्‌वैत दर्शन से साम्य रखती प्रतीत होती है। इसमें कश्मीर शैवदर्शन का अत्यल्प प्रभाव है।[32] वस्तुतः सर्वप्रथम तो रस को ही परिभाषा के बंधन में बाँधना उतना ही दुष्कर है जितना कि ब्रह्मत्व को, और यह कठिन इसलिए भी है कि रस को ब्रह्मानंद सहोदर कहा गया है। अतः इसके स्वरूप का ज्ञान भी हमें 'नेति–नेति' प्रक्रिया द्‌वारा ही हो सकता है। तथापि रस को परिभाषित करना ही हो तो कहा जा सकता है कि भावों की सम्यक संयोजना से व्यंजित स्वसंवेदन गोचर काव्यार्थ का आस्वादनात्मक अनुभव ही रस है। शांत रस जो कि साक्षात ही परब्रह्म से संयोजित करता है उसमें दर्शन का सर्वाधिक प्रभाव होना उचित ही है। वस्तुतः जब काव्यशास्त्रियों ने रस को ही 'ब्रह्मानंद सहोदर' कहकर अलौकिक कर लिया है तब उसके भेदों उपभेदों में दर्शन की भावना से अनुप्राणित होने में किसी भी प्रकार की शंका नहीं रह जाती। सार रूप में कहें तो मोक्ष की ओर ले जाने वाले शमस्थायिभावात्मक रस ही शांत रस है जिसमें पर्याप्त दार्शनिक सामग्री का प्रभाव देखा जाता है। यह भी सत्य है कि आचार्य भरत के समय में जो तत्व अभावात्मक थे कालांतर में अन्य आचार्यों ने उन्हें भावात्मकता प्रदान की और स्वतंत्र रूप से उनकी सत्ता का निर्धारण किया। भरत द्‌वारा प्रदत्त रससूत्र पर ही विवेचना करते–करते विद्‌वानों ने उसको स्वबुद्‌धि प्रतिभा से विवेचित किया है। काव्यशास्त्र के संदर्भ में हम निस्संदेह रूप से कह सकते हैं कि भारतीय काव्यशास्त्र ने अन्य शास्त्रों के साथ विशेषकर दर्शनशास्त्र का भी अवलंबन लिया है। यहाँ यह कहना भी तर्कसंगत है कि न केवल भारतीय काव्यशास्त्र ने दर्शन का अवलंबन लिया अपितु भारतीय काव्यशास्त्र के प्रायः सभी सिद्‌धांत दर्शन की भावना से अनुप्राणित हैं।

❑❑❑

हिंदी और दक्षिण भारतीय भाषाओं का अंतरसंबंध

अजीत प्रियदर्शी

कविता और लोक साहित्य में विशेष रुचि। 'कवि त्रिलोचन', 'आधुनिक काव्य परिदृश्य', 'आस्वाद के रंग', 'ताप के ताए त्रिलोचन' आदि कई पुस्तकें प्रकाशित। संप्रति– डी ए वी महाविद्यालय के हिंदी विभाग में एसोसिएट प्रोफेसर।

'विविधता में एकता' भारत की सामासिक संस्कृति की केंद्रीय विशेषता है। भारत की भाषाई, साहित्यिक और सांस्कृतिक विविधता में एकता के अनेक सूत्र हैं। विविधता में एकता के उन सूत्रों की तलाश करना इस शोध आलेख का उद्देश्य है। भारत में चार भाषा परिवार हैं– भारोपीय भाषा परिवार, द्रविड़ भाषा परिवार, आस्ट्रिक भाषा परिवार, चीनी–तिब्बती भाषा परिवार। भिन्न भाषा परिवार व्याकरणिक संरचना और शब्दावली आदि के संदर्भ में भिन्नता प्रदर्शित करते हैं। भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल बाईस भाषाएँ कई भाषा परिवार की भाषाएँ हैं। इसके बावजूद इनमें कई समानताएँ दिखाई देती हैं। संविधान की आठवीं अनुसूची की बाईस भाषाओं में से ये चार भाषाएँ दक्षिण भारत में प्रचलित हैं– तमिल, तेलुगु, कन्नड और मलयालम। ये चारों भाषाएँ द्रविड़ भाषा परिवार की भाषाएँ हैं। इन चार द्रविड़ भाषाओं और हिंदी के बीच अंतरसंबंध के बिंदुओं का अध्ययन करना हमारा उद्देश्य है। इस सिलसिले में हम इन द्रविड़ भाषाओं की लिपि और नागरी लिपि की समानताओं का अध्ययन प्रस्तुत करेंगे। साथ ही हम इन द्रविड़ भाषाओं और हिंदी की समान शब्दावली का विवरण प्रस्तुत करेंगे। द्रविड़ भाषाओं की वाक्य–संरचना के सामान्य तत्वों की पहचान करने के साथ ही हम हिंदी से भेद और अंतरसंबंध की पड़ताल करेंगे। साथ ही साथ हम भारतीय भाषाओं की मूलभूत एकता की तलाश करने के क्रम में द्रविड़ भाषाओं के साहित्य और हिंदी साहित्य के पारस्परिक आदान–प्रदान एवं एकता के कारणों तथा एकता के सूत्रों की पहचान करेंगे।

प्रस्तावना

हिंदी भारोपीय भाषा परिवार की भाषा है और दक्षिण भारत की भाषाएँ द्रविड़ भाषा

परिवार की हैं। संस्कृत को आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं की जननी कहा जाता है, लेकिन भारत की द्रविड़ भाषाएँ संस्कृत से विकसित नहीं हैं। फिर भी भारत की आर्य एवं द्रविड़ सभी भाषाओं में संस्कृत के मूल शब्द (तत्सम) एवं उनसे विकसित (तद्भव) शब्द पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। इस तथ्य को देखते हुए, प्रसिद्ध भाषाविद् डॉ. सुनीति कुमार चाटुर्ज्या स्पष्ट कहते हैं कि, "भारत की आर्य एवं द्रविड़ सभी भाषाओं में विद्यमान ये संस्कृत शब्द भारत की मूलभूत एकता एवं अविभाज्यता के ज्वलंत प्रतीक रूप हैं।"[1] मुख्यतः संस्कृत भाषा में धार्मिक एवं सांस्कृतिक आदान–प्रदान के कारण भी भारत की मूलभूत एकता एवं भाषिक अंतरसंबंध को बल मिला।

एम.बी. एमेन्यू नामक भाषा वैज्ञानिक ने 'भारत : एक भाषिक क्षेत्र' नामक लेख में इस बात पर प्रकाश डाला है कि भारतीय भाषाओं में परिवार की भिन्नता के बावजूद कई समान तत्व हैं। इस समानता का कारण यही है कि भारत में आदिकाल से सांस्कृतिक एकता रही है। धर्म, दर्शन, साहित्य सृजन, ज्ञान–विज्ञान का विकास, रीति–रिवाज आदि कई क्षेत्रों में देश का स्वरूप एक रहा है। इस कारण देश की जनता का सोच–विचार, चिंतन–मनन एक रहा है और देश की भाषाओं में विचारों का आदान–प्रदान रहा है। इस कारण भाषिक भिन्नता के बावजूद सभी प्रमुख भाषाओं में ध्वनि, लिपि, उच्चारण, वाक्य–संरचना सभी स्तरों पर समानता देखी जा सकती है। इस हद तक कि मलयालम या तेलुगु भाषा हिंदी की अपेक्षा अधिक संस्कृतनिष्ठ लगती हैं।[2] अब हम हिंदी और दक्षिण भारतीय भाषाओं की मूलभूत एकता के बिंदुओं का अध्ययन करेंगे और यह देखेंगे कि भारत के भाषाई क्षेत्र विषयक 'विविधता में एकता' की एमेन्यू की संकल्पना कहाँ तक वास्तविक और प्रासंगिक है।

चार अलग–अलग भाषा परिवारों में बँटी भारतीय भाषाओं में ऐसी कई सामान्य विशेषताएँ मौजूद हैं कि ये भाषाएँ परस्पर बोध की सीमा में आ जाती हैं। भारोपीय भाषा परिवार की आर्य भाषाओं में हिंदी, पंजाबी, गुजराती, मराठी, बांगला, असमिया, ओडिया आदि भाषाएँ आती हैं। दक्षिण भारत की भाषाएँ द्रविड़ भाषा परिवार की हैं। द्रविड़ भाषा परिवार में तमिल, तेलुगु, मलयालम, कन्नड़ आदि भाषाएँ हैं। भारतीय आर्य भाषाएँ एक परिवार की भाषाएँ होने के कारण उनमें समान तत्वों का मिलना स्वाभाविक है। भारतीय आर्य भाषाओं की जननी संस्कृत को माना जाता है, इसलिए आर्य भाषाओं में संस्कृत के शब्दों का बहुतायत में प्रयोग होता है। आर्य भाषाओं पर केवल शब्दावली के रूप में ही संस्कृत का प्रभाव नहीं है, अपितु वाक्य संरचना, ध्वनि एवं उच्चारण के स्तर पर भी उसका पर्याप्त प्रभाव है।

हिंदी और दक्षिण भारतीय भाषाओं को अलग–अलग परिवारों की भाषाएँ होने से हम उनमें इतने अधिक अंतर का अनुमान कर सकते हैं कि एक दक्षिण भारतीय भाषा–भाषी व्यक्ति हिंदी या कोई अन्य भारतीय भाषा बोलने वालों को बिलकुल समझ न सके। लेकिन वास्तव में दक्षिण भारतीय भाषाओं और हिंदी भाषा के बीच दुर्बोधता

की बजाय बोधगम्यता अधिक है। जब कोई मलयालम भाषी व्यक्ति मंच से किसी विषय पर व्याख्यान देता है तो हिंदी भाषी व्यक्ति इतना तो अनुमान कर ही लेता है कि किस विषय पर चर्चा की जा रही है। इसका एक महत्वपूर्ण कारण यह है कि मलयालम में हजारों संस्कृत के शब्द हैं, जिसके कारण व्याख्यान का विषय बोध की परिधि में आ जाता है।

जब हम आर्य और द्रविड़ परिवार की भाषाओं के बोलने वालों की आबादी को देखते हैं तो यह जान पाते हैं कि भारत की आबादी के लगभग नब्बे प्रतिशत लोग आर्य और द्रविड़ भाषा परिवार की भाषाएँ बोलते हैं। अलग–अलग भाषा परिवारों की भाषाएँ होने के बावजूद, एक ही सांस्कृतिक परिवेश की भाषाएँ होने के नाते आर्य भाषाओं और द्रविड़ भाषाओं ने एक–दूसरे को प्रभावित किया। अब हम हिंदी और दक्षिण भारतीय भाषाओं के बीच एकता के सूत्रों एवं लक्षणों का अवलोकन करेंगे।

भारतीय भाषाओं की योजक कड़ी संस्कृत

हिंदी और दक्षिण भारतीय भाषाओं के बीच अंतरसंबंध की अहम कड़ी संस्कृत भाषा और संस्कृत साहित्य है। दक्षिण भारत की चारों प्रमुख भाषाओं– तमिल, तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम– की शब्दावली और साहित्य का अध्ययन करने पर यह स्पष्ट होता है कि संस्कृत भाषा और साहित्य का इन चारों भाषाओं पर पर्याप्त प्रभाव है। हालाँकि तमिल भाषा का जन्म संस्कृत से नहीं हुआ है, परंतु तमिल पर संस्कृत का प्रभाव जरूर पड़ा है। तमिल भाषा के विद्वान श्री वी. कृष्णस्वामी आयंगर का कहना है कि, "संस्कृत भाषा का जब भारत में सर्वाधिक प्रचार हुआ तब उसके संपर्क में आने के कारण तमिल में संस्कृत की शब्दावली का प्रयोग होने लगा। जिस प्रकार संस्कृत की शब्दावली को तमिल ने ग्रहण किया, उसी प्रकार संस्कृत ने भी तमिल के शब्दों को ग्रहण किया है। डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी ने सिद्ध किया है कि लगभग चार सौ तमिल के शब्द संस्कृत में गृहीत और प्रयुक्त हैं।"[3] यह सर्वमान्य तथ्य है कि संस्कृत समस्त भारतीय भाषाओं की उपजीव्य भाषा रही है। प्रारंभ से ही यह उपजीव्यता दो स्तरों पर देखी जाती रही है– पहला, शब्द–संपत्ति की दृष्टि से, तथा दूसरा, वर्ण्य–विषय की दृष्टि से।

वैदिक साहित्य, रामायण, महाभारत, पुराण तथा संस्कृत में लिखित अन्य महाकाव्य, नाटक, छंदशास्त्र आदि समस्त भारतीय भाषाओं में संस्कृत से उतरे हैं। संस्कृत के इस ज्ञान एवं साहित्य ने भारतीय भाषाओं को समृद्ध किया है। संस्कृत भाषा एवं साहित्य ने हमेशा भारतीय भाषाओं के बीच संवाद–सेतु का काम किया है। आज भी दक्षिण भारतीय भाषाओं के जानने–बोलने वाले लोग संस्कृतनिष्ठ हिंदी को सुगमता से समझ लेते हैं।

यह सर्वविदित है कि भारतीय आर्य भाषाओं के मूल में संस्कृत भाषा है। द्रविड़ भाषा परिवार की शब्दावली पर भी संस्कृत का गहरा असर है। तमिल भाषा में संस्कृत

की शब्दावली अपेक्षाकृत कम है, लेकिन तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम भाषाओं में संस्कृत की शब्दावली या संस्कृत से विकसित शब्दावली (तद्भव) पर्याप्त है। तेलुगु भाषा, जो आंध्रप्रदेश की राजभाषा है, में संस्कृतनिष्ठ शब्दावली और स्वर–माधुर्य के कारण तेलुगु भक्ति साहित्य में गीत, संगीत केंद्रीय तत्व बने। मध्यकालीन तमिल भाषा के धार्मिक ग्रंथों में 'मणिप्रवालम' साहित्यिक शैली का प्रयोग होता था, जिसमें तमिल और संस्कृत शब्दों का मिश्रण होता था। बाद में संस्कृत शब्दों का तमिलीकरण या सरलीकरण किया जाने लगा। लेकिन तमिल के प्रभाववश मलयालम में संस्कृत–मलयालम की मिश्रित शैली 'मणिप्रवालम' का विकास हुआ। कन्नड़ भाषा एवं साहित्य पर भी संस्कृत भाषा तथा साहित्य का पर्याप्त प्रभाव पड़ा। कन्नड़ भाषा में संस्कृत के पर्याप्त शब्द प्रयोग किए जाने लगे और कन्नड़ साहित्य में प्रचुर संस्कृत पूर्ण शैली का विकास हुआ।

संस्कृत भाषा मात्र देने वाली भाषा नहीं रही। वह शब्द–व्यवहार के क्षेत्र में लेने वाली भाषा भी रही है। संस्कृत शब्द 'घोट' का उदाहरण देते हुए, प्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक डॉ. सुनीति कुमार चाटुर्ज्या ने संभावना व्यक्त की है कि, ''संस्कृत शब्द 'घोट' और अन्य भारतीय आर्य 'घोड़ा', तमिल 'कुतिरै', कन्नड़ 'कुदुरे', तेलुगु 'गुर्रमु' आदि शब्दों का मूल रूप 'घुत्र (या घोत्र)' शब्द संभवतः भारत की प्राचीनतम द्राविड़ भाषा से आया हुआ है।''[4] द्रविड़ भाषाओं पर संस्कृत का प्रभाव के संबंध में, आगे वे कहते हैं– ''और जहाँ तक विद्वज्जन–व्यवहृत संस्कृत शब्दों का प्रश्न है, तेलुगु, कन्नड़ तथा मलयालम भाषाएँ, इनके 'तत्सम' रूपों से, जिनके वर्ण–विन्यास भी ज्यों–के–त्यों हैं, बिलकुल लबालब भर गईं। तमिल भी इस क्रिया से बच न सकी; हाँ, उसने आर्य–शब्दों के वर्ण–विन्यास का आवश्यक रूप से सरलीकरण या तमिलीकरण अवश्य कर दिया। इस प्रकार संस्कृत का हिंदू–जीवन में वही स्थान दक्षिण में भी हो गया, जो उत्तर में था। संस्कृत अखिल भारतीय हिंदू–राष्ट्र की एक समान आधारशिला बन गई।''[5] कुल मिलाकर, कहा जा सकता है कि दक्षिण भारत की वे भाषाएँ, जो संस्कृत से नहीं निकली हैं, संस्कृत के शब्दों से भरी पड़ी हैं। इसलिए संस्कृत की उत्तराधिकारी हिंदी भाषा को दक्षिण भारतीय भाषाओं के बीच सामंजस्य–सूत्र बनना है तो संस्कृतनिष्ठता ही उसे शक्ति देगी।

शब्द स्तर पर हिंदी और द्रविड़ भाषाओं में अंतरसंबंध

संस्कृत भाषा से सीधे हिंदी तथा द्रविड़ भाषाओं में आए शब्दों को हम 'तत्सम' शब्द कहेंगे। संस्कृत से सीधे आए शब्द (तत्सम शब्द) हिंदी और द्रविड़ भाषाओं– तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम– में काफी संख्या में हैं। ये तत्सम शब्द हिंदी और द्रविड़ भाषाओं के बीच अंतरसंबंध को प्रगाढ़ करते हैं। संस्कृत के कई सौ शब्द चारों प्रमुख द्रविड़ भाषाओं के साथ–साथ हिंदी में भी बहुतायत प्रयुक्त होते हैं। चारों द्रविड़ भाषाओं में मलयालम के बाद तेलुगु में सबसे अधिक संस्कृत शब्दों का प्रयोग होता है।

दक्षिण भारतीय भाषाओं में संस्कृत के अलावा अरबी–फारसी और उर्दू के हजारों शब्द हैं, जिनके कारण ये भाषाएँ आपस में निकटता स्थापित करने के साथ ही हिंदी तथा अन्य भारतीय आर्य भाषाओं के निकट आती हैं। अरबी–फारसी के हजारों शब्द प्रायः सभी भारतीय भाषाओं में एक ही अर्थ में व्यवहृत होते हैं, जिनके कारण सभी भारतीय भाषाओं में कुछ हद तक आपसी संवाद तथा बोधगम्यता संभव हो पाती है। मुस्लिम शासन काल में अरबी–फ़ारसी के हजारों शब्द भारतीय भाषाओं में घुले–मिले तथा उर्दू ज़बान पूरे देश में पहुँची। द्रविड़ भाषाओं के अनेक शब्द हिंदी तथा अन्य आर्य भाषाओं में आकर घुल–मिल गए। अगर, चंदन, मुख, कठिन, मीन, पनस (कटहल) आदि अनेक शब्द द्रविड़ भाषाओं से आए हैं और हिंदी में धड़ल्ले से प्रयोग किए जाते हैं। हिंदी भाषा संपर्क भाषा के रूप में सभी भारतीय भाषाओं से मेलजोल और कोड (= भाषा व्यवहार) मिश्रण करती है। दक्षिण भारतीय भाषाओं के बोलने वाले अपने–अपने प्रांतों में अपनी बोलचाल की भाषा में अनेक हिंदी शब्दों का धड़ल्ले से इस्तेमाल करते हैं। सांस्कृतिक एवं व्यापारिक केंद्रों में दक्षिण भारतीय भाषाएँ हिंदी के शब्दों के साथ बोली जाती हैं, जिसे हिंदी तथा अन्य आर्य भाषा–भाषी काफी हद तक समझ जाते हैं।

तुलु भाषा दक्षिण भारत की एक अल्पविकसित तथा कम प्रचलित भाषा है। अपनी अलग लिपि होते हुए भी तुलु भाषा का अपना साहित्य प्रायः मौखिक ही है। मातृभाषा के रूप में तुलु बोलने वाले दस–बारह लाख लोग दक्षिण भारत के कई प्रांतों में अलग–अलग प्रांतीय भाषाएँ सीखकर अपना काम चलाते हैं। तुलु या तुलू भारत के कर्नाटक राज्य के पश्चिमी किनारे में स्थित दक्षिण कन्नड़ और उडुपि जिलों में तथा उत्तरी केरल के कुछ भागों में प्रचलित भाषा है। यह भी द्रविड़ भाषा परिवार की भाषा है। तुलु और कन्नड़ भाषा के विद्वान रसिक पुत्तिगे के अनुसार– ''बोलचाल की तुलु भाषा में प्रयोग में आने वाले करीब 30 प्रतिशत शब्द अनजाने ही हिंदी से मिलते–जुलते शब्द हैं। जब कोई तुलुभाषी हिंदी या उर्दू सीखता है, तब उसे मालूम होता है कि ये शब्द हिंदी में भी हैं। ... मुगल शासन–काल में जितने भी अदालती–जमींदारी के शब्द आए, वे सब तुलु भाषा और कन्नड़ भाषा में लगातार हर रोज उसी अर्थ में व्यवहृत होते रहते हैं, जैसे हिंदी–उर्दू में होते हैं : लायक, लगाम, चडावु (चढ़ाव), बेजार, बेबर्सि (बेवारिस), पक्त (फकत), जोर, लड़ाई, वारिस, हक, रद्द, अकल, असल, पक्का, दगलबाजी, जब्ति (जब्त), फरारि (फ़रार), हिकमत, अंदाज, कुशल (खुशहाल), सामन (सम्मन), हुशारू (होशियार), अमीन, फिरियाद, अर्जी, (फाँसी), दरकास्त आदि।''[6] अरबी–फ़ारसी या उर्दू के ऐसे शब्द दक्षिण भारतीय भाषाओं में पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं, जो बोलचाल की हिंदी में प्रायः प्रयुक्त होते हैं। जिन स्रोतों–तत्सम, तद्भव, अरबी–फ़ारसी और विदेशी (यानी पुर्तगाली, फ्रांसीसी और अंग्रेजी) भाषाओं से हिंदी में शब्द आए हैं, उन स्रोतों से वे शब्द सारी भारतीय भाषाओं में आए हैं। इस दृष्टि से

वकील, साइकिल, नाश्ता, शब्द, पट्टा, देव, गियर, रूपया, पैसा वारिस, जाति आदि शब्द अखिल भारतीय शब्द हैं। ऐसे सैकड़ों शब्द लगभग सभी भारतीय भाषाओं में हैं।

हिंदी और दक्षिण भारतीय भाषाओं में शब्दावली से संबंधित समानता का एक और महत्वपूर्ण पहलू नए पारिभाषिक शब्दों से संबंधित है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विकास से जुड़े तथा राजभाषा हिंदी के कार्यसाधक ज्ञान के लिए नए पारिभाषिक शब्दों का हिंदी में निर्माण आवश्यक होता है। ऐसे नए पारिभाषिक शब्द हिंदी में संस्कृत की सहायता से बनाए जाते हैं या अंग्रेजी के पारिभाषिक शब्द ग्रहण कर लिए जाते हैं। हिंदी में संस्कृत की सहायता से बनाए गए नए शब्दों के उदाहरण हैं– परिप्रेक्ष्य (Perspective), सचिव (Secretary), पदोन्नति (Promotion), कीटनाशक (Pesticide), परिवीक्षा (Probation) आदि। इसी तरह अंग्रेजी तथा अन्य विदेशी भाषाओं से प्राप्त नए पारिभाषिक शब्द इस प्रकार हैं– स्टॉक एक्सचेंज, एन्ज़ाइम, कैप्सूल, वाशिंग मशीन, वीडियो आदि। संस्कृत की सहायता से बने पारिभाषिक शब्दों से और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर स्वीकृत शब्दों को हिंदी में ग्रहण किए जाने से भारतीय भाषाओं में शब्द स्तर पर समानता बढ़ती है।

1960 ई. में गठित 'केंद्रीय हिंदी निदेशालय' (नई दिल्ली) ने 1962 में एक 'पारिभाषिक शब्द–संग्रह' प्रकाशित किया, जिसमें विज्ञान और मानविकी के लगभग एक लाख शब्द थे। 1961 में गठित 'वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग' ने भारत के सभी भाषाई क्षेत्रों के प्रमुख विद्वानों, अध्यापकों और भाषाविदों के सुझावों को शामिल करके विभिन्न ज्ञान क्षेत्रों के वृहत् शब्द–संग्रहों के अनेक खंड क्रमशः प्रकाशित किए हैं। विभिन्न भारतीय भाषाओं को परस्पर निकट लाने की दृष्टि से 'वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग' त्रिभाषा कोशों (अंग्रेजी, हिंदी तथा एक अन्य भारतीय भाषा) का निर्माण कर चुका है। हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं में मौजूद पारिभाषिक शब्दावली एवं त्रिभाषा कोशों के माध्यम से एक विशाल डाटा–बेस आयोग की वेबसाइट पर मौजूद है। अनेक नव–विकसित तथा विशिष्ट ज्ञान क्षेत्रों से जुड़ी शब्दावली निर्माण के साथ–साथ फीड–बैक के आधार पर शब्दावली संशोधन और पुनरीक्षण का दायित्व भी 'वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग' वहन करता है। वैज्ञानिक, तकनीकी एवं मानविकी के विषयों से जुड़ी पारिभाषिक शब्दावली की एकरूपता तथा त्रिभाषा कोशों द्वारा बहुभाषिक–बहुसांस्कृतिक भारत में सांस्कृतिक और भाषिक आदान–प्रदान तथा अंतरसंबंध को प्रगाढ़ करने में सहायता मिलती है।

वाक्य संरचना के स्तर पर हिंदी और द्रविड़ भाषाओं में समानता

वाक्य संरचना के स्तर पर हिंदी और द्रविड़ भाषाओं में कई समानताएँ मौजूद हैं–

1. हिंदी और द्रविड़ भाषाओं में वाक्य संरचना में पदक्रम की समानता मिलती है। हिंदी और द्रविड़ भाषाओं के वाक्यों में समान रूप 'कर्ता–कर्म–क्रिया का क्रम' है।

2. सभी भारतीय भाषाएँ परसर्ग भाषाएँ हैं। हिंदी भाषा की तरह ही द्रविड़ भाषाओं में संज्ञा शब्दों के बाद कारक चिह्नों या विभक्ति प्रत्ययों को स्थान दिया जाता है। इसलिए इन प्रत्ययों को परसर्ग (बाद के रूप) कहते हैं। उदाहरण के लिए घर में, मकान को, घर की तरफ आदि।

3. सभी भारतीय भाषाओं में वाक्य–संरचना में 'विशेषण + संज्ञा का क्रम' मिलता है।

4. सभी आर्य भाषाओं और द्रविड़ भाषाओं के वाक्यों में मुख्य क्रिया शब्द पहले आता है और सहायक क्रियाएँ बाद में।

हिंदी और द्रविड़ भाषाओं के संदर्भ में वाक्य विन्यास का विस्तृत विश्लेषण हमारे लिए यहाँ संभव नहीं है। हिंदी तथा द्रविड़ भाषाओं में वाक्य संरचना संबंधी उपर्युक्त कुछ समानताओं के विपरीत कुछ असमान तत्व भी हैं, जिनकी चर्चा करना हमारा अभीष्ट नहीं है। हिंदी और द्रविड़ भाषाओं में वाक्य संरचना संबंधी असमानताओं के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि हिंदी और अंग्रेजी भाषा के संपर्क तथा प्रभाव के कारण द्रविड़ भाषाओं में वाक्य संरचनागत असमानताएँ कम हो रही हैं और ये भाषाएँ वाक्य संरचना के क्षेत्र में हिंदी भाषा से समानता की ओर बढ़ रही हैं।

ध्वनि और उच्चारण के स्तर पर हिंदी और द्रविड़ भाषाओं में समानता

आर्यभाषा समूह और द्रविड़ परिवार की भाषाओं में वर्णमाला का क्रम एक है– 'अ' से 'औ' तक के स्वर और 'क' से लेकर 'ह' तक के व्यंजन। तमिल भाषा में व्यंजनों की संख्या सीमित है, लेकिन उसकी वर्णमाला में व्यंजनों का क्रम हिंदी के अनुरूप है। तमिल वर्णमाला के अठारह व्यंजनों में से अंतिम चार व्यंजनों (ष, ल, र, न) को छोड़कर, जो तमिल के लिए विशिष्ट हैं, शेष सभी व्यंजनों का क्रम देवनागरी की वर्णमाला क्रम के अनुरूप है।

इस अध्ययन एवं विश्लेषण का मकसद हिंदी और द्रविड़ भाषाओं में एकता के मूल स्वर को पहचानना है। यहाँ हर भाषा की ध्वनि–व्यवस्था का विश्लेषण न तो संभव है, न साध्य है। हर द्रविड़ भाषा में उच्चारण और ध्वनि संबंधी कुछ निजी विशेषताएँ हैं। जैसे तेलुगु, तमिल, मलयालम आदि भाषाओं में दो 'र' ध्वनियाँ हैं। द्रविड़ भाषाओं में /ए/और /औ/ का उच्चारण संध्यक्षर के समान है, जबकि हिंदी में यह मूल स्वर के समान है। द्रविड़ भाषाओं में /ए/तथा /औ/का उच्चारण क्रमशः/अई/,/अउ/ जैसे दो स्वरों का उच्चारण सुनाई देता है। द्रविड़ भाषाओं में ऐतिहासिक तथा अन्य कारणों से ध्वनियों और उच्चारण संबंधी कुछ विशेषताओं को छोड़ दें तो, हमें भारतीय भाषाओं में ध्वनि व्यवस्था समान दिखाई पड़ती है। भारतीय भाषाओं में ध्वनि संबंधी सामान्य विशेषताएँ इस प्रकार हैं–

1. स्वरों की ह्रस्व, दीर्घ के क्रम में व्यवस्था है और व्यंजनों का क्रम भी वैज्ञानिक है।

2. /ट/तथा/ट/वर्ग की ध्वनियों का उच्चारण भारतीय भाषाओं की विशेषता

है। कुछ विद्वान मानते हैं कि /ट/वर्ग संस्कृत में (तथा बाद में अन्य आर्य भाषाओं में) द्रविड़ भाषाओं के प्रभाव से आया।

3. महाप्राण ध्वनियाँ भारतीय भाषाओं की विशेषता है। संस्कृत से यह उच्चारण हिंदी सहित सभी आर्यभाषाओं और द्रविड़ भाषाओं ने अपनाया। लेकिन तमिल भाषा में महाप्राण ध्वनियाँ नहीं हैं, इसलिए इसमें व्यंजनों की संख्या सिर्फ अठारह है।

लिपि के स्तर पर हिंदी और द्रविड़ भाषाओं के बीच अंतरसंबंध

हिंदी, संस्कृत, मराठी और नेपाली भाषाएँ देवनागरी लिपि में लिखी जाती हैं, जबकि दक्षिण भारत की चारों प्रमुख भाषाओं– तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम–की अपनी–अपनी लिपि है। देवनागरी लिपि और दक्षिण भारत की लिपियाँ ब्राह्मी लिपि से निकली हैं। इसलिए इन लिपियों में कई वर्ण समान हैं। इनमें लेखन की प्रवृत्ति एक जैसी है। ऐतिहासिक विकास की दृष्टि से देखें तो, देवनागरी लिपि का विकास ब्राह्मी लिपि की उत्तरी शैली से माना जाता है। जबकि ब्राह्मी लिपि की ही दक्षिणी शैली, जो दक्षिण भारत में प्रचलित थी, से ही तमिल लिपि, तेलुगु लिपि, कन्नड़ लिपि और मलयालम लिपि का विकास हुआ। विकास क्रम में देवनागरी लिपि और दक्षिण की उपर्युक्त चारों लिपियों में अंतर आते गए, फिर भी इनमें साम्य को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। देवनागरी लिपि और दक्षिण की चार प्रमुख भाषाओं की लिपियों में वर्ण–साम्य सिर्फ स्वर–व्यंजनों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि मात्राओं के लेखन में भी समानता देखी जा सकती है। भारतीय लिपियों की आक्षरिकता के कारण इनमें भारतीय भाषाओं की कुछ स्थानिक विशेषताओं को कुछ विशेष चिह्नों से दिखाने की प्रवृत्ति है।

मलयालम की वर्णमाला संस्कृत के समान ही है। दो–चार वर्ण अधिक भी मिलते हैं। मलयालम की अपनी अलग लिपि है, जो अत्यंत सुंदर और संपूर्ण है। यद्यपि देवनागरी लिपि में मलयालम की संपूर्ण ध्वनियाँ नहीं हैं, तो भी देवनागरी के सहारे मलयालम भाषा अच्छी तरह लिखी और पढ़ी जा सकती है। तेलुगु और कन्नड़ भाषा की लिपियों में काफी समानता है, सिर्फ कुछ वर्णों के आकारों में अंतर है और मात्रा लिखने की शैली भिन्न है। पिछले कुछ दशकों में इन दोनों भाषाओं की एक लिपि के निर्माण के प्रयत्न हुए हैं, लेकिन अभी तक इनमें लिपिगत एकीकरण संभव नहीं हो पाया है। भारत के संविधान में इस बात का कहीं भी उल्लेख नहीं किया गया है कि देवनागरी के विकास के प्रयत्न क्रम में भारत की अन्य भाषाओं को भी देवनागरी में लिखे जाने का प्रयास किया जाना चाहिए। यदि भारतीय संविधान में यह प्रावधान कर दिया जाता कि देश की सभी प्रमुख भाषाओं को देवनागरी में लिखा जाए, तो सारे देश में लेखन माध्यम की एकरूपता आ जाती और सभी भारतीय भाषाएँ परस्पर निकटता का अनुभव करतीं। केंद्रीय हिंदी निदेशालय का एक प्रमुख उद्देश्य देवनागरी लिपि को भारतीय भाषाओं के लिप्यंतरण का एक सशक्त माध्यम बनाना भी रहा है। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए निदेशालय ने परिवर्धित देवनागरी वर्णमाला का मानक

रूप स्वीकृत किया है, जिसके माध्यम से आठवीं अनुसूची की सभी 22 भाषाओं का देवनागरी लिपि में लिप्यंतरण सुगमता से किया जा सकता है। केंद्रीय हिंदी निदेशालय ने दक्षिण भारत की चारों प्रमुख द्रविड़ भाषाओं (तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम) के कुछ स्वरों और ध्वनियों के विशिष्ट उच्चारण को दर्शाने के लिए पहले से मौजूद वर्णों के साथ विशेषक चिह्नों को जोड़ने के साथ ही कुछ नए लिपि चिह्नों को देवनागरी लिपि में जोड़ने का सुझाव दिया है। इन सुझावों को स्वीकार करके देवनागरी को राष्ट्रीय लिपि और सर्वस्वीकृत लिपि बनने का मार्ग प्रशस्त किया जा सकता है।

सांस्कृतिक स्तर पर हिंदी और द्रविड़ भाषा–भाषी समुदाय के अंतरसंबंध

भाषा राजनैतिक विवाद का सार्वकालिक मुद्दा है तो किसी देश को एकता के सूत्र में बाँधने और उसके विकास का जरिया भी है। भाषा की इस जोड़ने–तोड़ने की अपार सामर्थ्य को जाँच–परखकर ही बोलिंगर (1980) ने इसे 'लोडेन वेपन' की संज्ञा दी थी।[7] भाषा को संस्कृति की संवाहिका मानने वाले प्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक सपीर मानते हैं कि भाषा और संस्कृति में इतना गहन संबंध है कि हम एक के ज्ञान के बिना दूसरे को जान–समझ नहीं सकते। भारत एक बहुभाषाभाषी और बहुसांस्कृतिक देश है, इस तथ्य को सभी स्वीकार करते हैं। भारत में बहुभाषिकता एक सहज स्थिति है। प्रो0 दिलीप सिंह मानते हैं कि, ''भारतीय बहुभाषिकता व्यक्तिपरक (इंडिविजुअल) नहीं, समुदायपरक (सोसाइटल) है।''[8] भारत में बहुभाषिकता की सहज स्थिति को भारत की अनूठी मिसाल मानते हुए, वे कहते हैं कि, ''एक ही भाषा–समुदाय में कोडों के फैले जाल और राष्ट्रीय स्तर पर 1090 मातृभाषाओं और 200 वर्गीकृत भाषाओं के संजाल को देखकर ही कई विदेशी भाषाविदों का दिमाग चकरा गया था और उन्होंने भारत को 'भाषाई' पागलखाना तक की संज्ञा दे डाली थी।''[9] ऐसे विदेशी विद्वान यह नहीं जान पाते कि भाषाई विविधता के बाद भी संस्कृति की एक ही पयस्विनी से पोषित समग्र भारतीय समाज सदैव से एक रहा है। बहुभाषी भारत के किसी भी भाषाभाषी समुदाय ने ऐसी विलगता का अनुभव कभी नहीं किया कि वह संघर्ष को उद्यत होकर पृथक्करण को अपना ले।

भारत में सांस्कृतिक और भाषिक आदान–प्रदान प्राचीन काल से होता रहा है। प्राचीन काल से ही दक्षिण को उत्तर भारत से जोड़ने वाले साधु–संतों ने इस आदान–प्रदान में अहम भूमिका निभाई। मध्यकालीन भक्ति आंदोलन के समय दक्षिण के वैष्णव आलवार और शैव नायनार भक्तों–संतों के उद्गारों को भक्ति के आचार्यों, निर्गुणवादी संतों और सगुणवादी भक्तों द्वारा पल्लवित–प्रसारित–प्रवाहित भक्ति की लहर दक्षिण से उत्तर की तरफ आई। जनता में प्रसिद्ध है :–

भक्ति द्राविड़ उपजी लाए रामानंद।
परगट कियो कबीर ने सप्तद्वीप नव खंड।।

भक्ति काव्य के रूप में भारतीय भाषाओं एवं बोलियों के जरिए भाषाई वैविध्य के

बीच सगुण–निर्गुण, शैव–वैष्णव, राम–कृष्ण की भक्ति में अभेद–दृष्टि और समन्वय की विराट चेष्टा व्यक्त हुई। मध्यकालीन भक्ति आंदोलन और भक्ति काव्य में भाषिक और सांस्कृतिक समन्वय संपर्क की सुंदर अभिव्यक्ति हुई। दक्षिण के, वर्तमान तमिलनाडु प्रांत के, आलवार और नायनार संतों–भक्तों के उद्‌गारों के प्रभाववश भक्ति आंदोलन का जो 'सोता' फूटा, वह वेगवती धारा बनकर भारत की चारों दिशाओं और सभी भारतीय भाषाओं में भक्ति साहित्य 'सागर' बनकर उमड़ पड़ा। उस भक्ति आंदोलन ने भारत के भाषाई एवं सांस्कृतिक वैविध्य को ओझल करके देश भर में एक भावात्मक तथा आध्यात्मिक एकता की चेतना का प्रसार किया।

उत्तर और दक्षिण के बीच सांस्कृतिक सेतु रामकथा–काव्य

रामकथा संबंधी बिखरी सामग्रियों को एकत्र कर सर्वप्रथम वाल्मीकि ने संस्कृत भाषा में आदिकाव्य 'रामायण' की रचना की। तत्पश्चात सभी भारतीय भाषाओं में रामकथा काव्य की रचना हुई। तमिल में कंबन कृत कंबन रामायण, तेलुगु में भाष्कर रामायण, मलयालम में एलुत्तचन द्‌वारा अनुवादित आध्यात्म रामायण, कन्नड़ में पंप रामायण आदि अपनी–अपनी भाषा के रामकथा संबंधी गौरव–ग्रंथ हैं। बारह आलवार भक्तों में से विशेष रूप से कुलशेखर, मधुर कवि और नम्मालवार को रामभक्ति में सदैव लीन रहने वाले कवि माना जाता है। नौवीं शताब्दी में नाथमुनि द्‌वारा इन बारह आलवारों की रचनाओं का संकलन 'नालियार दिव्य प्रबंधम' में किया गया। भक्ति की धारा को दक्षिण से उत्तर की ओर प्रवाहित करने वाले स्वामी रामानंद के शिष्यों ने सगुण और निर्गुण राम की भक्ति धारा को प्रवाहित किया। दक्षिण की चारों प्रमुख भाषाओं में तुलसीकृत 'रामचरितमानस' का काव्यानुवाद हुआ। चारों द्रविड़ भाषाओं में ये काव्यानुवाद काफी लोकप्रिय हैं।

हिंदी और दक्षिण भारतीय भाषाओं में कृष्ण काव्य

दक्षिण के आलवार भक्तों में गोदा या अंडाल नाम की प्रसिद्‌ध स्त्री भक्त ने विष्णु या वासुदेव या नारायण के दो अवतारों– राम और कृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम के भावोद्‌गार प्रकट किए। उन्होंने कृष्ण के बाल और किशोर लीलाओं, गोपियों संग प्रेम तथा आनंद क्रीड़ाओं का तन्मय वर्णन किया। भक्ति आंदोलन के दौरान तमिल, तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम भाषाओं में कृष्ण भक्ति की अलग–अलग छटाएँ दिखाई देने लगीं। तेलुगु के कृष्ण भक्त कवियों ने गेय पदों के साथ–साथ प्रबंध काव्यों की रचना भी की।

हिंदी में मध्यकालीन भक्ति आंदोलन के प्रभाववश विभिन्न कृष्ण भक्ति संप्रदायों (बल्लभ संप्रदाय, निंबार्क संप्रदाय, राधावल्लभ संप्रदाय, हरिदासी या सखी संप्रदाय) के साथ–साथ अन्यान्य कवियों ने सरस, मधुर, वत्सल भक्ति–भावपूर्ण कृष्ण–लीला के गेय पदों द्‌वारा हिंदी प्रदेश ही नहीं अपितु भारत भर को सराबोर कर दिया। राम और कृष्ण की भक्ति ने भारत की सभी भाषाओं और सभी क्षेत्रों के लोगों को जोड़ने का

महान कार्य किया।

व्यापार और तीर्थाटन द्वारा हिंदी तथा द्रविड़ भाषाओं का मेलजोल

दक्षिण भारत के तीर्थ स्थलों की यात्रा करने वाले उत्तर भारतीय, वे चाहे हिंदी प्रदेश के हों या गुजराती, महाराष्ट्री या बंगाली, अपने विचार हिंदी में ही व्यक्त करते हैं। दक्षिण के तीर्थ स्थलों के पंडित प्रायः दुभाषिए का काम करते रहे हैं। उनके द्वारा दक्षिण भारत के तीर्थ स्थलों में बोलचाल की भाषा में हिंदी तथा किसी दक्षिण भारतीय भाषा का मिश्रण होता है। आज दक्षिण भारत के सभी प्रांतों में हिंदी अध्ययन–अध्यापन की भाषा के साथ–साथ संपर्क भाषा का काम बखूबी कर रही है। हिंदी की चर्चित रचनाओं का अनुवाद दक्षिण भारतीय भाषाओं में तथा दक्षिण भारत की चारों प्रमुख भाषाओं की चर्चित कृतियों का हिंदी में अनुवाद किया जा रहा है। वे अनूदित कृतियाँ पाठकों के बीच लोकप्रिय साबित होती हैं। दक्षिण भारत में विभिन्न संस्थाओं द्वारा हिंदी प्रचार आंदोलन के फलस्वरूप दक्षिण भारत के विभिन्न प्रांतों में कई सुयोग्य हिंदी कवि, लेखक, लेखिकाएँ, समालोचक, विद्वान आदि हो चुके हैं। हिंदी और दक्षिण भारतीय भाषाओं का सांस्कृतिक शब्द भंडार एक है। तीर्थाटन, पर्यटन, सेवा, व्यापार और शिक्षा के कारण दक्षिण भारत में संपर्क भाषा, शिक्षा और शासन की भाषा के रूप में हिंदी का प्रचार–प्रसार पर्याप्त बढ़ा है।

संदर्भ ग्रंथ :

1. चाटुर्ज्या, डॉ. सुनीति कुमार (1989): भारतीय आर्यभाषा और हिंदी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ147

2. कथन उद्धृत, हिंदी भाषाः इतिहास और वर्तमान, IGNOU - EHD-06, संस्करणः 1997, पृष्ठ 53

3. केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नई दिल्ली, द्वारा संपादित पुस्तक 'भारतीय भाषा परिचय', द्वितीय संस्करणः 2010, पृष्ठ 225

4. चाटुर्ज्या, सुनीति कुमार, वही, पृष्ठ 61

5. चाटुर्ज्या, सुनीति कुमार, वही, पृष्ठ 81

6. वर्मा, लक्ष्मीकांत (संपादित): हिंदी आंदोलन, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, प्रथम संस्करणः 1964, पृष्ठ 129

7. कथन उद्धृत, प्रो. दिलीप सिंह, वही, पृष्ठ 174

8. वही, पृष्ठ 146

9. वही

❑❑❑

लोकसाहित्य में सामाजिक–सांस्कृतिक परिवेश (विशेष संदर्भः हिमाचली लोकसाहित्य)

गुरमीत सिंह

तुलनात्मक साहित्य,पत्रकारिता और अनुवाद में विशेष अभिरुचि। प्रकाशित पुस्तकें–'हिंदीः बदलता परिवेश', 'धर्मवीर भारती का साहित्य'। विविध पत्र–पत्रिकाओं और संपादित पुस्तकों में शोध आलेख प्रकाशित। बाबू गंगाशरण सिंह सम्मान (बिहार सरकार) समेत कई सम्मानों से सम्मानित। संप्रति–प्रोफेसर(हिंदी),पंजाब विश्वविद्यालय।

साहित्य और समाज का अटूट संबंध है। मनुष्य के प्रगतिशील जीवन का लक्षण साहित्य है। वही साहित्य श्रेष्ठ होता है जिससे जनमानस में भावों और विचारों को गति मिले। साहित्य का उद्देश्य मानव मूल्यों की स्थापना तथा संरक्षण होता है। साहित्य के माध्यम से ही समाज को समझा व परखा जा सकता है। सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन के वास्तविक रूप को समझने के लिए उस समाज के साहित्य का अध्ययन आवश्यक होता है परंतु उस समाज के मूलभूत रूप, वहाँ की संस्कृति, रीति–रिवाज, रहन–सहन, खान–पान, धारणाएँ, मान्यताएँ, प्रथाएँ, नियम–कानून, इतिहास आदि को गहराई से समझना हो तो उस समाज के लोकसाहित्य का अत्यधिक महत्व होता है। लोकसाहित्य में ही मानव जीवन और उसके सामुदायिक जीवन का समस्त लेखा–जोखा प्राप्त होता है।

लोकसाहित्य

लोकसाहित्य मानव संस्कृति का अभिन्न अंग है। लोक मानस की सहज और स्वाभाविक अभिव्यक्ति लोक साहित्य में मिलती है। यह साहित्य प्रायः अलिखित होता है और मौखिक रूप से पीढ़ी दर पीढ़ी पहुँचाया जाता है। इसमें गीत, कथाएँ, मुहावरे और कहावतें आदि सम्मिलित होते हैं। लोकसाहित्य जनता का साहित्य है। यह उनके हृदय में उद्भूत होता है, वहीं पल्लवित होता है और जनता की सरलता, सहजता एवं स्वच्छंदता से मंडित रहता है। लोकसाहित्य का क्षेत्र अत्यंत विस्तृत, विशाल एवं व्यापक है। जनसामान्य की समस्त सुखात्मक एवं दुखात्मक संवेदनाएँ, कार्यकलाप लोक–साहित्य के अंतर्गत आते हैं। लोक साहित्य को पूर्ण रूप से समझने से पहले लोक शब्द के अर्थ को समझ लेना आवश्यक है।

लोकसाहित्य दो शब्दों से मिलकर बना है– लोक और साहित्य। लोक शब्द दो अर्थों में प्रचलित है– एक तो विश्व अथवा समाज और दूसरा जनसामान्य अथवा जनसाधारण।

''साहित्य अथवा संस्कृति के एक विशिष्ट भेद की ओर इंगित करने वाले एक आधुनिक विशेषण के रूप में इस शब्द का अर्थ ग्राम्या या जनपदीय समझा जाता है। किंतु इस दृष्टि से केवल गाँव में ही नहीं वरन नगरों, जंगलों, पहाड़ों और टापुओं में बसा हुआ मानव समाज जो अपने परंपरा प्रथित रीति–रिवाजों और आदिम विश्वासों के प्रति आस्थाशील होने के कारण अशिक्षित एवं अल्पसभ्य कहा जाता है 'लोक' का प्रतिनिधित्व करता है।''[1]

अतः हर व्यक्ति, हर जाति, हर समाज के अपने कुछ रीति–रिवाज, मान्यताएँ, प्रथाएँ होती हैं। लोक शब्द मानव समाज के इन समस्त विश्वासों का प्रतिनिधित्व करता है।

हिंदी भाषा एवं साहित्यिक–विश्वकोश के अनुसार

'लोक' शब्द संस्कृत के 'लोकदर्शने' धातु से बना है। इसमें 'धञ' प्रत्यय लगने से ही 'लोक' शब्द निष्पन्न हुआ है। इस धातु का अर्थ है–देखना। इसका लट्लकार में अन्य पुरुष का रूप लोकते है। अतः 'लोक' शब्द का मूल अर्थ हुआ– 'देखने वाला'। वह समस्त जनसमुदाय, जो इस कार्य को करता है, 'लोक' कहलाता है।''[2]

लोक शब्द समस्त जनसमुदाय के लिए प्रयुक्त होता है जो समाज में रहते हुए हर सुख–दुःख, रीति–रिवाज, मूल्य, विश्वास आदि सभी का संरक्षण यह जनसामान्य करता है।

'लोक शब्द अँग्रेजी के *folk* से बना है। ऐंग्लो सेक्शन का विकसित रूप है। और प्रयोग की दृष्टि से असंस्कृत और मूढ़ समाज या जाति का द्योतक है। यों तो आदिम जाति में वे सभी सदस्य फोक होते हैं जिनसे वह जाति बनी होती है पर यदि शब्द का व्यापक अर्थ लिया जाए तो इसका प्रयोग सभ्य राष्ट्र की समग्र जनता के लिए भी किया जा सकता है''[3]

लोक शब्द उन सभी मानव समाजों का चाहे वह आदिम समाज हो, चाहे ग्रामीण समाज हो, चाहे नागरिक समाज इन सबमें रहने वाला कोई भी मानव समूह हो सकता है। यह मानव समूह अपने रीति–रिवाजों, प्रथाओं, मान्यताओं, विश्वासों के प्रति आस्थाशील रहता है।

<u>लोकसाहित्य</u>

जब लोक अपनी आशा–निराशाएँ, सुख–दुःख, जीवन–मरण, लाभ–हानि आदि को साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्ति देता है तो उसे लोकसाहित्य कहते हैं। लोकसाहित्य लोक का साहित्य है। लोक साहित्य उतना ही प्राचीन है जितना कि मानव। इस साहित्य में जनजीवन के समस्त क्रियाकलापों का समावेश होता है।

साधारण शब्दों में कहें तो यह साहित्य जनसाधारण से संबंधित साहित्य है। लोकसाहित्य को विद्वानों ने कुछ इस तरह से स्पष्ट किया है–

डॉ. श्रीराम शर्मा के अनुसार– ''लोकसाहित्य वह मौखिक अभिव्यक्ति है जो किसी एक व्यक्ति द्वारा नहीं रची जाती अपितु समस्त मानव समूह उसे अपना मानता है।''[4]

हिंदी भाषा एवं साहित्यिक–विश्वकोश के अनुसार ''वह साहित्य उतना ही स्वाभाविक था, जितना जंगल में खिलने वाला फूल, उतना ही स्वच्छंद था, जितनी आकाश में उड़ने वाली चिड़िया, उतना ही सरल तथा पवित्र था, जितना गंगा की निर्मल धारा, उस समय के साहित्य का जो अंश आज अवशिष्ट तथा सुरक्षित रह गया है, वही हमें लोक–साहित्य के रूप में उपलब्ध होता है।''[5]

लोकसाहित्य लोक संस्कृति का अंग है। यदि साहित्य समाज का प्रतिबिंब है तो लोकसाहित्य सामाजिक संस्कृति का प्रतिबिंब है।

डॉ. सुरेश गौतम के अनुसार ''लोकसाहित्य तो जीवन का रत्नाकर है। ऐसा रत्नाकर जहाँ जीवन के सौंदर्य की मणियाँ तैरती हुई दृष्टिगोचर होती हैं। लोकसाहित्य की विश्वास सृष्टि में लोकमानस की प्राक कल्पना, आनुष्ठानिक विचारणा, विश्वचेतना का सर्वात्मवादी दर्शन तथा पराप्राकृतिक शक्तियों के प्रति सहज आस्था अभिव्यंजित होती है।''[6]

लोकसाहित्य दो शब्दों का मेल है लोक एवं साहित्य। लोक का साहित्य लोकसाहित्य है। जहाँ लोक होगा वहाँ उसकी संस्कृति और साहित्य होगा। विश्व में ऐसा कोई स्थान नहीं है जहाँ लोक हो और वहाँ उसकी संस्कृति न हो। मानव मन के उद्गार तथा सूक्ष्म अनुभूतियाँ सभी लोकसाहित्य के अंतर्गत आती हैं। इस साहित्य में लोकजीवन का यथार्थ चित्रण मिलता है। लोकसाहित्य हमारी सभ्यता का संरक्षक है।

लोकसाहित्य की विशेषताएँ

1. लोकसाहित्य जनसाधारण की भाषा में होता है। लोकसाहित्य की भाषा स्वतंत्र एवं जीवित लोकभाषा होती है। 2. लोकसाहित्य किसी एक व्यक्ति की रचना नहीं होती अपितु इसमें संपूर्ण समाज का योगदान होता है। 3. लोकसाहित्य अधिकतर मौखिक अभिव्यक्ति के रूप में होता है। यह लोकमानस की प्रवृत्ति कहा जाता है। 4. लोकसाहित्य मानव मन से जुड़ा होता है। इसके माध्यम से लोक मानव हृदय को अभिव्यक्ति मिलती है। 5. यह सरल, सहज एवं स्वयं में पूर्ण होता है। 6. लोकसाहित्य हमारी सभ्यता एवं संस्कृति का संरक्षक है।

डॉ. श्रीराम शर्मा के अनुसार ''लोकसाहित्य किसी प्रकार के नियमों के बंधनों से मुक्त विस्तृत परिधि वाली स्वच्छंद गति से प्रवाहमान एक धारा है।''[7]

साहित्य का आधार लोकमंगल और लोकहित होता है। किसी भी युग का साहित्यकार इस सत्य से अनभिज्ञ नहीं रह सकता है।

लोकसाहित्य में जनस्वभाव के अंतर्गत आने वाली आदिकाल से लेकर अब तक की संपूर्ण प्रवृत्तियाँ समाई होती हैं। इस साहित्य में जनजीवन की समस्त भावनाएँ यथार्थ रूप में समाहित होती है। समूची संस्कृति के अध्ययन के लिए लोकसाहित्य का अध्ययन आवश्यक होता है। यह साहित्य मनुष्य एवं मनुष्यत्व का साक्षी होता है। इसमें जनजीवन का भूत, भविष्य, वर्तमान सभी कुछ संचित रहता है। किसी भी राष्ट्र की सांस्कृतिक मौलिकता का रसस्रोत लोकसाहित्य ही है। ''किसी राष्ट्र की अंतर्भावना सिद्धांतमूलक जीवन पद्धति का परिचय प्राप्त करना चाहते हैं तो हमें इस लोकसंस्कृति का ज्ञान करना होगा। यह ज्ञान हमें मुख्य रूप से लोकसाहित्य द्वारा प्राप्त होता है।''[8]

लोकसाहित्य के विविध रूप

लोकसाहित्य का क्षेत्र अधिक व्यापक माना गया है। इसमें व्यक्ति की विभिन्न अनुभूतियाँ, मान्यताएँ, परंपराएँ, लोक विश्वास सभी सम्मिलित होते हैं। इसके माध्यम से संस्कृति की प्राचीनता, समृद्धि और श्रेष्ठता का सफलतापूर्वक निरूपण किया जा सकता है। लोकसाहित्य में जनता के गीत, कथाएँ, मुहावरे और कहावतें शामिल हैं।

''चाहे लोकगीत हों या लोककथाएँ हो अथवा लोकनाट्य, लोकसाहित्य का कोई भी रूप हो, सभी रूप विधाओं में लोकजीवन के रंग अपने पूरे निखार पर हम से सीधे संवाद करते हैं।''[9]

इस प्रकार लोकसाहित्य के अंतर्गत निम्नलिखित बातें आती हैं–

1. लोकगाथा 2. लोकगीत 3. लोककथा 4. लोकनाट्य 5. प्रकीर्ण साहित्य

लोकगाथा : लोकसाहित्य में उपलब्ध गीत दो श्रेणियों में विभाजित हैं। यह है प्रगीति मुक्तक और प्रबंध काव्य। मुक्तक गीतों में कथानक का अभाव है और गीतात्मकता की प्रधानता रहती है। प्रबंधात्मक गीतों में कथावस्तु की प्रधानता होती है। प्रबंध काव्य को ही लोकगाथा कहा जाता है। लोकगाथा में रचयिता अज्ञात, मूल पाठ का अभाव, स्थानीयता का पुट, मौखिक परंपरा, उपेदशात्मक प्रवृत्ति, लंबे कथात्मक की भूमिका और अलंकृत शैली की विद्यमानता आदि विशेषताएँ होती हैं।

लोकगीत : इस संपूर्ण सृष्टि में ऐसा कोई कोना नहीं है जहाँ गीत किसी न किसी रूप में विद्यमान न हों। जहाँ मानव है वहाँ गीत–संगीत है। जीवन का ऐसा कोई भी आयोजन नहीं है जहाँ गीत न हों। ''गीत हमारे समूचे सांस्कृतिक जीवन की रीढ़ हैं।''[10] लोकगीत लोक में प्रचलित लोक द्वारा लोक के लिए लिखा जाता है। इनमें मानव हृद्य की प्रकृत भावनाओं को लयात्मक ढंग से प्रस्तुत किया जाता है। गीत में सामूहिक प्रवृत्ति अधिक विद्यमान है। इनमें मानव सभ्यता एवं संस्कृति के विभिन्न चित्र अंकित होते हैं। ये मनोरंजन, शिक्षा तथा ज्ञानवर्धन का सरल माध्यम होते हैं।

लोककथा : किसी भी देश के लोक सांस्कृतिक परिदृश्य को जानने–समझने के लिए लोक कथाएँ महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। जब समस्त मानव समुदाय अपनी अनुभूतियों को कहानियों के माध्यम से कहता है तब लोककथा बनती है। लेखन कला के विकास के पूर्व ही मनुष्य ने अपनी वैचित्र्यपूर्ण अनुभूतियों को कथा का रूप देना प्रारंभ कर दिया था और इन कहानियों के माध्यम से उसके जीवन की सर्वप्रथम अभिव्यक्ति हुई। लोककथाओं के बीज वेद, उपनिषद् और पुराणों में प्राप्त होने वाले आख्यानों में देखे जा सकते हैं।

''लोकजीवन की समस्त उपलब्धियाँ और त्रासदियाँ इन कथाओं की गोद में क्रीड़ा करती हैं। जीवन के संपूर्णत्व को समेटे इन कथाओं में जनमानस का हर्ष–विषाद, आस्था–नैराश्य, कर्म–आलस्य, पर्व–उत्सव, ईर्ष्या–द्वेष, वेदनागर्भित सत्य, आनंदमूलक क्षण–सभी कुछ बूँद–बूँद भरा समुद्र–कलश है।''[11]

लोकनाट्य : लोकनाटक बिना किसी शास्त्रीय बंधन के लोकमानस की सहज अभिव्यक्ति है जिसमें लोकपरंपराओं का प्रदर्शन लोकमंच पर होता है। यह लोकमंच लोकमानसिक होता है जो गली–गलियारों में विद्यमान रहता है। लोकनाटक सर्वसाधारण के जीवन से संबंधित है जो परंपरा से अपने–अपने क्षेत्र के जनसमुदाय के मनोरंजन का साधन रहा है। लोकविश्वास, लोकधारणाएँ, और लोकसंस्कृति की अखंडता को लोकनाट्यों के माध्यम से देखा जा सकता है।

''लोक नाटकों के मूल में धार्मिक अनुष्ठान–विश्वास, लोक में व्याप्त कथानक रूढ़ियाँ, सहजात कलात्मक नृत्य, पर्व–त्योहारों के प्रति गहन आस्था, लोक–खेल, लोक वाद्य, चिकित्सा, रसात्मक लोक गान, सांगीतिक अभिनय, व्यक्तिगत समस्याएँ आदि तत्व लोक नाटकों के पूर्णत्व का विकास सामने लाते हैं।''[12]

प्रकीर्ण साहित्य : लोकसाहित्य के इस वर्ग में स्फुट साहित्य आता है। इस साहित्य में लोकोक्तियाँ, मुहावरें, पहेलियाँ, पालने के गीत, खेत के गीत, लोरियाँ इत्यादि आते हैं। ये आकार में अत्यंत लघु होते हैं तथा लय की प्रधानता होती है। लोकोक्तियाँ लोक जीवन के अनुभव का सार हैं तो मुहावरे लोक की घटना या क्रिया–व्यापार के लक्षणों को ग्रहण करके बनते हैं। लोकोक्तियों को स्वनिर्मित नीतिशास्त्र कहा जाता है। कहावतों में भी लोकजीवन का सार है तथा इन्हें अनुभवशास्त्र भी कहा जाता है।

''ग्रामीण जनता अपने दैनिक व्यवहार में सैकड़ों मुहावरों, लोकोक्तियों, सूक्तियों और सुभाषितों का प्रयोग करती है। इन मुहावरों और कहावतों में चिर संचित अनुभूत ज्ञानराशि भरी पड़ी है।

इनमें जीवन के सत्य बड़ी खूबी से प्रकट होते हैं। इनके अध्ययन से हमारी सामाजिक प्रथाओं का चित्रण उपलब्ध होता है।''[13]

लोकसाहित्य के अंतर्गत इन सभी का समावेश होता है। इसमें गद्य साहित्य के नाम पर लोककथाएँ तथा लोकगाथाएँ हैं अथवा प्रकीर्ण साहित्य जिसमें मुहावरे, लोकोक्तियाँ सम्मिलित हैं और पद्य साहित्य के नाम पर लोकगीत हैं। ये सभी साधन जनमानस की नैतिक साधना के लिए अत्यंत उपयोगी हैं।

हिमाचली लोकसाहित्य

हिमाचल प्रदेश पश्चिम हिमालय में स्थित है। यह प्रदेश अपनी सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, धार्मिक धरोहर के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ की बर्फीली चोटियाँ, प्राचीन नदियाँ, लोकदेवता, लोकगीत, लोककथाएँ, लोकत्योहार, भुंडा, काहिका, महायज्ञ तथा अनेक धार्मिक मान्यताएँ यहाँ के प्राचीन सांस्कृतिक धरोहर एवं विरासत के जीवंत उदाहरण हैं। यह प्रदेश अपनी लोकसंस्कृति के लिए अधिक समृद्ध रहा है। यहाँ लोकसाहित्य एवं लोक संस्कृति ग्रामीण जीवन के अभिन्न अंग हैं। यहाँ के लोकजीवन में लोककथाओं का अथाह भंडार है। जिनका प्रयोग आज का जनसमुदाय सांस्कृतिक दृष्टि से कर रहा है। यहाँ के लोकसाहित्य में यहाँ की संस्कृति, इतिहास एवं सामाजिक जीवन को पूर्णतः समझा जा सकता है तथा अतीत के पन्नों में झाँका जा सकता है। इस प्रदेश की जलवायु, रहन–सहन, रीति–रिवाज, सामाजिक जीवन, प्रथाएँ, जातियाँ, जनजातियाँ वेश–भूषा, प्रमुख देवी–देवता, त्योहार एवं मेले आदि सभी का गहन अध्ययन यहाँ के लोकसाहित्य द्वारा ही किया जा सकता है।

''हिमाचली भाषा में लोकसाहित्य, लोकगीतों, गाथाओं, लोकनाट्यों, लोकविश्वासों, पहेलियों, लोकोक्तियों और मुहावरों का अभूतपूर्व कोष है।''[14]

अतः हिमाचल प्रदेश के सामाजिक–सांस्कृतिक जीवन की बहुरंगी झलकियाँ समग्र रूप में लोकसाहित्य में विद्यमान हैं।

प्रत्यूष गुलेरी के अनुसार– ''लोकसाहित्य असे हिमाचली लोके दें सामाजिक आस्था–विश्वासे, रीति–रिवाजा कनै संस्कृतियाँ जो दर्शांदा ऐ। मुख जवानी चली औणे कनै लोकगीता, लोककथा, झेहड़ेया लोकगाथा बगैरा च थोड़ा–थोड़ा फर्क तां सबनी भाषा दे लोकसाहित्य च जुग जुगा ते रैहंदा आया है।''[15]

अर्थात हिमाचली लोकसाहित्य में वहाँ की सामाजिक आस्था–विश्वास, रीति–रिवाज तथा संस्कृति के दर्शन होते हैं। युग–युग से मौखिक रूप से चले आ रहे लोकगीतों, लोककथाओं, लोकगाथाओं में सभी भाषाओं के लोकसाहित्य में थोड़ा बहुत अंतर रहता ही है।

हिमाचली लोकगाथाओं में सामाजिक–सांस्कृतिक परिवेश

परिवेश दो शब्दों के मेल से बना है– परि और वेश। परि का अर्थ है चारों ओर और वेश का अर्थ है घेरा, परिधि। इस प्रकार परिवेश का अर्थ है चारों ओर की घटनाएँ, वातावरण, रीति–रिवाज जो मनुष्य को प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से प्रभावित करते हैं।

''परिवेश कोई अमूर्त प्रत्यय नहीं है प्रत्युत उत्पादन के साधनों तथा उत्पादन से बने सामाजिक ढाँचे का नाम ही परिवेश है। इसके अंतर्गत किसी देश और काल की आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियाँ आ जाती हैं।''[16]

किसी भी साहित्य का आधार तभी सुदृढ़ होता है जब वह अपने परिवेश के साथ आत्मीय रूप से जुड़ा होता है। साहित्य और परिवेश का एक अटूट रिश्ता है। समाज और परिवेश के सहचरत्व के बिना किसी भी प्रकार का सृजन संभव नहीं और लोकसाहित्य तो है ही समाज और परिवेश का साहित्य।

सामाजिक–सांस्कृतिक परिवेश वह है जिसमें मनुष्य जन्म लेता है, आँखें खोलता है, होश सँभालता है। उसके चारों ओर जो विचारधाराएँ, विश्वास, नैतिक मूल्य, जीवन को देखने व समझने के दृष्टिकोण प्रचलित हैं कुछ उसे विरासत से मिलते हैं। संस्कृति समाज रूपी विश्व की जड़ है। इसमें मूल्य, मानवता, चेतना, विचार, भावना, रिवाज, भाषा, ज्ञान, कला धर्म, जादू–टोना आदि के वे सभी मूर्त–अमूर्त स्वरूप संस्कृति में शामिल हैं। लोकसाहित्य में सामाजिक–सांस्कृतिक जीवन के लगभग सभी पहलुओं को देखा व समझा जाता है।

हिमाचल प्रदेश के लोकसाहित्य में वहाँ के सामाजिक–सांस्कृतिक जीवन के हर रूप को देखा जा सकता है। लोकगाथाएँ, लोकगीत, लोकनाट्य एवं प्रकीर्ण साहित्य सभी में हिमाचली जनजीवन की विविध झलकियाँ देखने को मिलती हैं।

''पहाड़ी सभ्यता, राहुल जी की राय में, पृथकता और विशिष्टता तथा समानता और एकता का अद्भुत मिश्रण है। इस संस्कृति की विचित्रता तो इसी में है कि यह कई प्रकार के तत्वों, कई धाराओं और प्रभावों के मिश्रण से बनी है। इसलिए यह आंचलिक भी है और साथ ही बहुआंचलिक संस्कृति भी। इसकी जड़ें तो अँचल में हैं जिसने इसे विशिष्टता प्रदान की लेकिन शाखा–प्रशाखाएँ कई अँचलों से जुड़कर इसे बहुआंचलिक चरित्र भी प्रदान करती हैं।''[17]

हिमाचली लोकसाहित्य में वहाँ के समाज, संस्कृति और सभ्यता की गरिमा को समझा व जाना जा सकता है।

लोकगाथाओं का लोकसाहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है। इनसे देश अथवा प्रदेश के विलुप्त सांस्कृतिक, सामाजिक तथ्यों को प्रकाश में ला सकते हैं। हिमाचल में मूल मानव समाज की झलक यहाँ की लोकगाथाओं में देखने को मिलती है। हिमाचल में विशेष अवसर, त्योहार और सामाजिक मेल–मिलाप के मौकों पर लोकगाथाओं को गाने की विशेष परंपरा है, जिससे लोकगाथाएँ मानव जीवन से एकदम घुल–मिल जाती हैं। इनमें धार्मिक, पौराणिक, ऐतिहासिक, वीरात्मक तथा प्रेमात्मक लोकगाथाओं का महत्वपूर्ण स्थान है।

हिमाचल की देवगाथाओं में सहदेव की लोकगाथा, चिखडेश्वर की लोकगाथा, पंडरामायण, विरशी की लोकगाथा, सीता हरण लोकगाथा, महासू देवता की लोकगाथा, शिव की लोकगाथा आदि, वीरगाथाओं में वीर सूरत राम की लोकगाथा, भारत–चीन युद्ध की लोकगाथा, चौरणु वीर की लोकगाथा आदि, प्रेमात्मक लोकगाथाओं में रूपु और माई की लोकगाथा, सीलीदार की लोकगाथा, तानु की लोकगाथा, राजा भरथरी की लोकगाथा आदि तथा ऐतिहासिक लोकगाथाओं में राजा जुब्बल भगत सिंह की गाथा, भलकू जमींदार की लोकगाथा, छौतरी की लोकगाथा, ठाकुर रामलाल की गाथा आदि हिमाचल की प्रसिद्ध लोकगाथाएँ हैं।

ठोडा उत्सव में ब्रलाज की लोकगाथा प्रस्तुत की जाती है जिसमें सृष्टि की उत्पत्ति से लेकर विष्णु, ब्रह्मा, महादेव के जन्म की गाथा तथा अन्य पौराणिक उपाख्यों को आपस में गूँथ दिया गया है। सृष्टि के आरंभ का कुछ इस तरह से वर्णन है–

पहले नाओं नारायणों रा, जुणी धरती पुआणी।
जलथाली होई पिरथवी, देवी मनसा राखो जगड़ी।
माणु न होले कब न रीखी एकई नारायणो रा राजो होला
सिद्ध गुरू री झोड़ी फा, ढाई दारणा शेरों रा झैड़ा।[18]

अर्थात सबसे पहले नारायण का नाम है जिसने इस धरती को बनाया है। पहले सारी पृथ्वी जलमय थी और मनसा देवी को इसकी देखभाल के लिए रखा गया था। तब न तो कोई मनुष्य था न ही कोई ऋषि। केवल एक परमेश्वर का ही राज था। सिद्ध गुरू की झोली से ढाई दाने सरसों के गिरे, उन दानों को हमने घर के साथ के छोटे खेत में बो दिया।

इस प्रकार इस लोकगाथा में ईश्वर की महत्ता समाज में दर्शाई गई है।

राजा भरथरी की कथा में राजा भरथरी और उनकी रानी पिंगला के जीवन का वर्णन है साथ ही उस समय के सामाजिक जीवन और संस्कृति का चित्रण है। संसार की निस्सारता का वर्णन कुछ इस तरह से रानी पिंगला के माध्यम से किया गया है–

रानी पिंगला राजा को समझाते हुए कहती है–
काची बौणी काया कोठड़ी, झूठौ बौणो संसार
चौऊ दिने राजा जीउणों, छाढ़ी देणों घर बार
समझे शूणे राजा भरथरी।[19]

अर्थात यह संसार कच्ची कोठरी के समान है, संसार झूठा है। राजा यह संसार चार दिनों के लिए है। एक दिन यह घरबार छोड़कर जाना पड़ेगा।

राजा भरथरी की इस लोकगाथा में यह भी दर्शाया गया है, किस प्रकार यह संसार एक दूसरे के बिना अधूरा है। संतान के बिना माँ–बाप नहीं, धागे के बिना डोरी नहीं, दिन के बिना रात नहीं यह शरीर भी कागज की भाँति है।

❑❑❑

गोद नहीं मेरे बालिका, महले नहीं मेरा राज
समझे शूणे राजा भरथरी, धागे बिना नहीं बाणा,
पुत्र बिना नहीं नार, भाईयां बिना नहीं जोड़िया
रेणा बिना नहीं ध्याड़।[20]

देवकन्या भी इसी प्रकार की लोकगाथा है जिसमें देवकन्या और बसु के विवाह का वर्णन है। इस लोकगाथा को कुल्लु के लोग एक नृत्य रूप में प्रस्तुत करते हैं। तासगी नाग की बसु द्वारा रक्षा और फिर बसु का देवकन्या के साथ विवाह यह सब सामाजिक सरोकारों को सिद्ध करता है। इसमें राजा कंस का भी वर्णन मिलता है जिसे लोककथाकारों ने अपने अनुसार ढाला है। इसमें पति–पत्नी के आपसी विश्वास और हर हालत में साथ रहने की बात को बसु और देवकन्या के माध्यम से जनमानस के सम्मुख रखा है। बसु दुःखी होता है कि वह देवकन्या को किस प्रकार झोंपड़ी में रखेगा परंतु देवकन्या झोंपड़ी में भी उसके साथ प्रसन्न है–

शूणे शूणे बसु ओ ब्रामणा, काडी गई तेरे है मैली
आधे नाहुँ धीवरा का फिरी रे, शूणे शूणे बसु ओ ब्रामणा।[21]

इसी प्रकार एक विरशी लोकगाथा है जो वीरसती रैणी की है। रैणी अपने पति कायथ के साथ सती हो जाती है। उस समय सती प्रथा का होना और अँग्रेजों का सती प्रथा के खिलाफ होना यह सब इस लोकगाथा में है साथ–साथ यह भी दर्शाया गया है कि सती प्रथा का लड़की के मायके वालों पर क्या प्रभाव पड़ता था। दुनिया के लिए रैणी का अपने पति के साथ सती हो जाने वाला दिन विरशी त्योहार के रूप में मनाया जाने लगा परंतु रैणी के मायके वालों के लिए तो यह दिन शोक का दिन था। रैणी के भाई के विरोध का वर्णन कुछ इस प्रकार है–

भाई प्रताप भाए आशो प्रताप जुए तरारो
केजो हौलो खशियों से जीऊँदी जालौ।[22]

अर्थात भाई क्रोध से जल उठा जब उसने रैणी के सती होने की खबर सुनी। उसने अपनी तलवार निकालकर कहा कि ऐसा कौन सा राजपूत है जो उसकी बहन को जिंदा जलाना चाहता है।

रैमीमाईची वरेठु वरकलु रे सदा उजले छाडु।[23]

अर्थात अपने भाई की बातें सुनकर रैणी कहने लगी कि मुझे कोई जबरदस्ती नहीं जला रहा है, मैं तो अपने पति के साथ अपनी इच्छा से आत्मदाह करना चाहती हूँ ताकि अपने मायके वालों का नाम ऊँचा कर सकूँ।

महासती लोता की गाथा भी इसी प्रकार की है जिसमें लोता नामक एक सुंदर स्त्री का विवाह पटवारी भागचंद के साथ होता है। परंतु भरी जवानी में ही भागचंद की मृत्यु हो जाती है और लोता इस सदमे को सहन नहीं कर पाती और साथ में ही सती हो जाती है। यह कथा आज भी रोहडु और शिमला के क्षेत्रों में गाई जाती है। इस

लोककथा की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें दहेज प्रथा का विरोध किया गया है। जब भागचंद लोता के घर रिश्ते की बात करने जाता है तो लोता के पिता दहेज की बात करते हैं परंतु भागचंद कहता है–

पिता जीबीतैरे आए नेगटुआ खाए लु खाणौ
छियो देउ बदरी रे कन्यादाणौ
भागचंदकन्या तेरे निंदा पाई पापो रा पिंडा
बीशौ गाई चालशो आगले देंदा।[24]

अर्थात लोता के पिता ने भागचंद से कहा कि नेगियों के बेटे तू पहले खाना खा ले उसके बाद कन्यादान और लेनदेन की बात कर लेंगे। इस पर भागचंद कहता है कि मैं केवल आपकी लड़की चाहता हूँ यदि मैं दहेज लूँगा तो पाप का भागीदार बनूँगा। मैं तो बल्कि आपकी मदद करना चाहूँगा। अगर आप बीस रूपये लगाएँगे तो मैं आपको चालीस दूँगा क्योंकि आप अपने शरीर का टुकड़ा अपनी बेटी दे रहे हैं। इसके अलावा अगर मैं कुछ लूँगा तो मुझे पाप लगेगा।

इस प्रकार ये लोकगाथाएँ हिमाचल के जनमानस का आधार हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि इनमें ही इनके समाज और संस्कृति के सभी तत्व समाहित रहते हैं। देवगाथाओं पर तो हिमाचली मानव का अस्तित्व टिका हुआ है।

''पहाड़ी लोगों के मानस की सरलता से लोकगाथाएँ भरी पड़ी हैं। यहाँ की नदियाँ यहाँ के जीवन और यहाँ के श्वेत पर्वत लोगों के हृदय की पवित्रता की कहानी कहते हैं। धार्मिक सहिष्णुता, दया और एक–दूसरे का आदर यहाँ के लोगों के जीवन का अंग है।''[25]

हिमाचली लोककथाओं में सामाजिक–सांस्कृतिक परिवेश

कथाओं का जन्म मानव के साथ हुआ है। जब से मानव है तब से कहानी है। लोकमानस में कहानियों का बहुत महत्व होता है। वे विभिन्न प्रकार के ज्ञान को कहानियों के माध्यम से समझते हैं। कहानी में सरलता होती है जो जनमानस को भली–भाँति समझ में आ जाती है। पृथ्वी की आरंभिक अवस्था में ही आदि मानव ने कुछ लोककथाओं का निर्माण कर लिया था इन्हीं कथाओं के आधार पर संसार की अनेक कहानियाँ बनीं।

"भारतवर्ष में प्राचीन साहित्य में लोककथाओं के संकलन संसार भर में प्रचलित लोककथाओं का आधार माने जाते हैं।''[26]

हिमाचल प्रदेश में वहाँ के समाज और संस्कृति से जुड़ी लोककथाओं का अथाह भंडार है। धार्मिक कथाएँ, पौराणिक कथाएँ, पांडवों की कथाएँ, महाभारत की कथाएँ, रामायण की कथाएँ, कुछ पशु–पक्षियों से संबंधित कथाएँ, कुछ नीति से संबंधित कथाएँ, कुछ शकुन–अपशकुन की कथाएँ। हिमाचल की लोककथाएँ वहाँ के जनमानस का आभूषण हैं। सामाजिक न्याय, सच्चाई का इनाम, परंपराएँ, रहन–सहन, रीति–रिवाज

आदि सभी कुछ इन कथाओं का हिस्सा है। एक लोकगाथा में राजा विक्रमादित्य के चरित्र में न्यायप्रियता की भावना को दर्शाते हुए समाज में न्याय के महत्व को स्पष्ट किया गया है–

जेहड़ा राजा विक्रमदित्या साईं पुरूसार्थ करे
से ही राजा एस सिंहासना पर पैर धरे।[27]

अर्थात वही राजा इस सिंहासन पर बैठ सकता है जिसमें राजा विक्रमादित्य के समान पुरूषार्थ हो।

पारंपरिक लोककथाओं में बीरबल की कथाएँ बहुत प्रसिद्ध हैं।

स्थानीय लोकपरंपराओं, विश्वासों और मान्यताओं के आधार पर भी यहाँ अनेक लोककथाओं का विकास हुआ। इस प्रकार की कथाएँ सामान्यतः घरों में ही सुनी सुनाई जाती हैं।[28]

समाज में अनेक भाग्यवादी कथाएँ भी पाई जाती हैं। हिमाचल के लोग भाग्य पर बहुत अधिक विश्वास करते हैं।

भूजौ नही जमदौ, सूंचो नांई मोना रा होंदो
जौ लिओ कोरमे, सौ नहीं किरदी जांदो।[29]

अर्थात भुना हुआ बीज उगता नहीं और मन की अभिलाषा पूर्ण नहीं होती पर जो भाग्य में लिखा है वह तो कहीं नहीं जाता।

इनकी लोककथाओं में भाग्य पर विश्वास बहुत अधिक पाया जाता है। ये मानते हैं कि जब सूर्य और चंद्रमा पर ग्रहण लग सकता है तो मनुष्य क्या है। सब भाग्य का खेल है किसी का भी भाग्य पूर्ण नहीं होता।

शिव–पार्वती, रामायण, महाभारत के अनेक प्रसंगों के ऊपर भी लोककथाएँ भरी पड़ी हैं। इन कथाओं में लोकरूचि के अनुसार अनेक प्रयोग एवं परिवर्तन हुए हैं। पात्रों के नामों में विविधता, नए पात्र, घटना क्रमों में फेरबदल, स्थानों के वर्णन में आंचलिकता स्वतः ही परिलक्षित हो जाती है।

काँगड़ा क्षेत्र में भागवत पुराण के अनेक लोक–सुलभ संस्करण लोककथाओं में परंपरित हुए हैं। इन कथाओं में भी विषय–निर्वाह लोक–सुलभ आस्थाओं और मान्यताओं के आधार पर ही हुआ है।[30]

भूत–प्रेतों की कथाएँ भी जनमानस के सामाजिक जीवन का हिस्सा होती हैं। पहाड़ी लोग भी इस रुचि–शुचि से अलग नहीं हैं। भूत–प्रेत की कथाओं का यहाँ भरपूर प्रचलन है। पहाड़ी क्षेत्र में अनेक ऐसे स्थान हैं जो परंपरागत रूप से भूत–पिशाचों की कहानियों से जुड़े हुए हैं। इन कथाओं को और अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए इनके साथ आस–पड़ोस के किसी खंडहर, बीहड़ स्थल अथवा वृक्ष को जोड़ा जाता है।

इसके अतिरिक्त त्योहारों और उत्सवों को लेकर भी अनेक लोककथाओं का निर्माण किया गया है। त्योहार और मेले किसी भी समाज की चेतना के प्रतिबिंब होते

हैं। लोहड़ी, शिवरात्रि, होली, वैशाखी, रक्षाबंधन, कृष्ण जन्माष्टमी, दशहरा, दीपावली आदि के अतिरिक्त अनेक स्थानीय त्योहार और मेले जैसे– जागरा, साजो, लवी मेला, मिंजर मेला, नलवाड़ी मेला, रिवालसर मेला, शांद (बकरीद), भुंडा महायज्ञ, काहिका, रेणुका मेला, शूलिनी मेला आदि सभी त्योहारों और मेलों से संबंधित लोककथाएँ हिमाचल के लोकसाहित्य का आधार हैं। भुंड़ा त्योहार में तो बलि प्रथा की अनेक कथाएँ सुनी–सुनाई जाती हैं। "निरमंड, रामपुर तथा रोहडू के क्षेत्रों में भुंडा के अवसर पर विध्यात्मक नर बलि का प्रचलन भी संभवतः किन्हीं आदिम मान्यताओं से प्रभावित रहा है।"[31]

इन लोककथाओं में समाज के मानस को सबसे अधिक झकझोरने वाली कथाएँ हैं नारी–बलि से संबंधित कथाएँ। इस प्रथा के अंतर्गत बिलासपुर में रूपी राणी की बलि, चंबा में सूई राणी की बलि, कांदणी राणी की बलि आदि मार्मिक कथाएँ हैं। राणी रूकमणी की कथा में रूकमणी के ससुर ने अपने राज्य में पानी की कमी और सूखे की समस्या के निवारण हेतु रूकमणी को जिंदा चिनवा दिया था। जिससे पूरे राज्य में खून की नदियाँ बह चली थीं। चंबा की 'सुकरात' भी इसी प्रकार की प्रसिद्ध लोककथा है।

सामान्यतः पहाड़ी लोककथाओं में मुख्य पात्र राजा–रानी, साहुकार–साहुकारिन, राजकुमार–राजकुमारिन तथा ब्राह्मण आदि रहते हैं।

इसके अतिरिक्त संयुक्त परिवार से संबंधित अनेक लोककथाएँ हिमाचली लोकसाहित्य में देखने को मिलती हैं। संयुक्त परिवार भारतीय संस्कृति की महत्वपूर्ण विशेषता रही है। कुल्लुई लोकसाहित्य में तो बहुधा इसी प्रकार के परिवार का चित्रण हुआ है जहाँ दादा, माता–पिता, बेटा–बेटी, बहु आदि सभी हैं। इन लोककथाओं में सास–बहु के रिश्तों को लेकर बहुत लिखा गया है। बहु की करूण कहानी है तो सास के अत्याचारों का अनेक स्थलों पर वर्णन हुआ है। ऐसा कहा जाता है कि सास केवल बातों से ही प्रहार नहीं करती अपितु अगर वह उचित समझे तो बहू को विष खिलाकर मार तक डालती है। परंतु कई जगह सतयुग और कलयुग की तुलना करते हुए कुछ ऐसी कथाएँ भी मिलती हैं जहाँ वृद्ध होने पर सास बेचारी सारा घर का काम करती है और बहू सारा दिन बेकार बैठी रहती है–

सौती जुगा सौती जुगारी बारी
रीख पीशा थी फाफरो; ब्राग आणथौं बाकरी चारी।
कली जुगा कली जुगा री बारी
शाशू खाली खौटिया, बेशिया खा बुआरी[32]

अर्थात सतयुग में तो रीछ फाफरा पीस लाता था शेर बकरी चराने जाता था परंतु आज कलयुग में सास कमाकर खाती है और बहु बिना कमाए खाती है।

इसके अतिरिक्त ससुर, देवर, ननद आदि सभी रिश्तों से जुड़ी लोककथाएँ मिलती हैं।

इस प्रकार हमारे सामाजिक–सांस्कृतिक जीवन का सच्चा और स्वाभाविक चित्रण लोककथाओं में भली–भाँति देखा जा सकता है।

''पहाड़ी लोकजीवन में जिन वस्तुओं का अभाव रहा है, लोककथाओं के माध्यम से उन सभी अभिलाषित वस्तुओं की साकार और सजीव कल्पना उस अभाव को पूरा करने का प्रयास करती है। कल्पनाओं के इन तानों–बानों से ही पहाड़ी लोककथाओं का आकार विकसित हुआ है।''[33]

हिमाचली लोकगीतों में सामाजिक–सांस्कृतिक परिवेश

हिमाचल में सबसे प्रसिद्ध हैं लोकगीत। लोकगीत लोकजीवन की बहुरंगी झलकियाँ पूर्ण समग्रता के साथ प्रस्तुत करते हैं। घर आँगन से लेकर खेत–खलिहानों तक और जन्म से लेकर मरण तक के सभी कार्य इन लोकगीतों के माध्यम से प्रस्तुत किए जा सकते हैं। लोकगीत श्रमसाध्य पहाड़ी जीवन को सरल व रोमांचकारी बनाने में सहायक होते हैं। इस विधा ने उनके जीवन के हर पहलू को छुआ है। यहाँ की कठिन जीवन परिस्थितियों में जितनी आवश्यकता भोजन और पानी की है उतना ही महत्व और आवश्यकता लोकगीतों का है। यहाँ के लोगों में आपसी सहयोग की भावना को प्रस्तुत करता ये लोकगीत कुछ इस प्रकार है–

चानणी ओची री हुण धारा
ओ दाणे री खारी लगीरी दारा
मिली के पैन्हणा होर खाणा
ओ केसी जो पता नी केभे जाणा[34]

अर्थात चोटी पर प्रकाश या चाँदनी उभर आई है, अन्न के ढेर द्वार पर लग गए हैं, आओ सब मिलजुलकर पहनें, खाएँ क्या पता कब कौन इस संसार से चला जाए।

पहाड़ी लोकगीतों में प्रकृति हमेशा मनुष्य की सहचरी रही है। प्रकृति हमेशा उनके हर सुख–दुःख में साथ रही है।

"चाँदनी, धूप, बिजली, वर्षा, आँधी, बाढ़, सूरज, चंद्र, नदी, नाले, घाटियाँ और चोटियाँ आदि सभी के प्रतीयमान तत्व लोकगायकों की भावनाओं को अभिव्यक्त करने में सहायक रहे हैं। वस्तुतः पहाड़ी लोकमानस का प्रकृति से पूर्ण तादात्म्य रहा है।''[35]

रतिभाव के गीतों में एक विरहावस्था में तड़पती स्त्री की दशा का वर्णन कुछ इस प्रकार किया गया है–

जली ये रीत पुराणी हो,
कंत मेरा झुरी रा परदेसा, असां तां रखणा मैलड़ा भेसा,
चिट्ठी न पत्री न कोई संदेसा, किंया ये जिंद निभाणी हो,
जली ये रीत पुराणी हो।[36]

अर्थात यह रीत जल जाए। मेरा पति परदेस में है और मैं ऐसा ही मैला भेस रखूँगी क्योंकि मेरे पति की न तो कोई चिट्ठी आई है और न ही कोई संदेशा ही आया है। मैं किस प्रकार अपना ये जीवन बिताऊँगी।

हिमाचली लोकगीतों में जन्म, विवाह, फसलों की बुआई, कटाई, धान की फसल की रोपाई, त्योहार, मेले, खेल हर सुख, हर दुःख के, हर शकुन–अपशकुन के गीत हैं। विवाह के समय के हर रिवाज, हर रस्म से जुड़े लोकगीतों की हिमाचली लोकसाहित्य में भरमार है। कन्यादान के समय लड़की के मनोभावों को इस लोकगीत में कुछ इस प्रकार बताया गया है–

शंख बजाया कुलजै पुरोहितै, इंद्राला खबर शुनाई।
आजा तैंई बापुआ कन्या कुआंरी, आज हई घौराई बाहरी
आमेंबी शोटे, बापुए शोटे, आज रामा मुठ्ठुए तेरे।[37]

अर्थात कुल पुरोहित ने शंखध्वनि कर दी है और इंद्रालो ने आकर यह खबर सुना दी है। बापू अब आ जा और कन्यादान कर दे आज तेरी कुँआरी बेटी घर से बाहर हो रही है अर्थात पराई हो रही है। माँ ने भी छोड़ दिया और बापू ने भी छोड़ दिया। हे राम जी अब मैं आपके हाथ में हूँ मतलब अब ईश्वर का ही सहारा है।

इसी तरह विदाई के गीत भी बड़े मार्मिक हैं–

धानौ बौए बेटीए देउड़ी दुआरे, आजौ छूटौ सौंगणी केरो साथा।
धानौ बौए बेटीए देउड़ी दुआरे, आजौ छूटौ बेटीय गुडी केरो साथा।
धानौ बौए बेटीए देउड़ी दुआरे, आजौ छूटौ बेटी का बाबू केरो घरा।[38]

अर्थात बेटी सुन, जाते जाते दरवाजे पर धान बो देना। आज से तुम्हारा अपनी सहेलियों से साथ छूटा, गुड़ियों का खेल तुमसे छूटा और प्यारे पिता का घर भी तुमसे छूट गया।

इसी के साथ–साथ त्योहार, पर्व, व्रत और देवी–देवताओं के गीत भी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका रखते हैं। शिवरात्रि, जन्माष्टमी, रामायण प्रसंग, भेंटें, नृत्य गीत, फलालु, नाटी गीत, मेला गीत आदि हिमाचली जीवन एवं संस्कृति के प्रमाण हैं। जन्माष्टमी में कृष्ण जन्म समय का गीत कुछ इस प्रकार है–

बोले रे मोहुआ, बेटेया दो दर्शणा लैई।
ऐसा बेटा कभी न जन्मा, बेटो जमो आपु भगवानों।[39]

अर्थात देवकी को जगाते हुए वसुदेव बोल रहे हैं कि उठकर बेटे के दर्शन कर लो ऐसा बेटा कहीं नहीं जन्मा स्वयं भगवान हमारा बेटा बनकर आए हैं।

रामायण प्रसंग की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं–

रामा गेणो चंद्रमों जोदया रे ठाए
गुरु गेणो वाशिष्टा लाखण भाए
सीता गेणो भारतज, राजा जनकारे जाए
राणी गेणें केउके जिए बांडे कराए।[40]

अर्थात आयोध्या में चंद्रमा जैसे राम हैं जिनके गुरु ऋषि वशिष्ठ हैं और लक्ष्मण उनके भाई हैं। सीता उनकी पत्नी हैं जो राजा जनक की पुत्री हैं। एक रानी कैकेई है जिसने सबको अलग–अलग कर दिया है।

इन लोकगीतों में कई जगह बुराइयों से बचने के उपदेश भी होते हैं। जैसे निम्नलिखित लोकगीत में बताया गया है कि हुक्का पीने से छाती पर दाग लग सकता है अर्थात दिल की बीमारी हो सकती है अतः नशा नहीं करना चाहिए–

ओ रे पड़ा ओर मंड़ी शहरा लो
पोरे कुल्लू रा बागा, लोहड़ी पोरे कुल्लु रा बागा।
हुक्का नी पीणा मेरे भाईयों छाती लगदा दागा।[41]

हिमाचल की सुंदरता और रहन–सहन, खान–पान को लेकर भी अनेक गीत गाए जाते हैं जो सामाजिक जीवन का आधार हैं जैसे–

ओढ़ने जो पाटु, बछ्याणे जो सेले, ना छोड़े फटदे, ना हुंदे मैले।
छेलुआ–भेडुआ जो लेई किथी चलेया गदिया, ठंडा पहाड़ छाड़ी तेथी, सुका चंगर मेलेया।
ठंडी–ठंडी हवा ठंडा जे पाणी हो, बांका पहाड़ा दा बसणा ओ जिंदे।
सारे मुल्क हांड़ी फिरी देखी लये, क्या एस दिलारा दसणा ओ जिंदे।[42]

अर्थात हमारे पास ओढ़ने को पट्टु है और बिछाने को सेल है। ये न तो जल्दी फटते हैं और न ही मैले होते हैं। अरे गद्दी (पहाड़ी जनजाति) तू ठंडें पहाड़ों को छोड़कर अपने मेमनों और भेड़ों के साथ सूखे बंजरों की ओर क्यों जा रहा है। यहाँ की ठंडी–ठंडी हवा है, ठंडा–ठंडा पानी है पहाड़ों में बसना तो सबसे सुखद और सुंदर है। सारा संसार घूमकर देख लिया अब और क्या इस दिल को देखना बाकी है।

हिमाचल के प्राकृतिक सौंदर्य का एक और गीत इस प्रकार है–

जीमा शेरना शेरा शेरी ठोड्जम जीमा,
लऔलो केसी फायुल औलोड् चैन शैर
कैसे हाड् र ग्यलसा यालड् चैना शैर[43]

इससे अभिप्राय है कि सूर्य पूर्व से उदय होने के बाद सबको प्रकाश देता है। गर्म भी है, नर्म भी है। धूप हमारी जन्मभूमि की चोटी पर चमकी। हाङगो की सबसे ऊँची चोटी पर धूप चमकी।

शकुन–अपशकुन के गीत भी हिमाचल में काफी प्रचलित हैं जैसे–

अरी भियाणीए, कोने कीए काहणी शुणी,
याणी बाली बे उमरे हुई मौता, चीड़ी डाला री रूणी।[44]

अर्थात अरी भियाणी कानों में यह क्या कथा सुन ली, किसी नौजवान की मौत हो गई है, यह चिड़िया शाखा पर रो रही है।

इस प्रकार देखा जाए तो जीवन का हर पहलू इन लोकगीतों में देखा जा सकता है। जन्म, नामकरण, चूड़ाकर्म, उपनयन, विवाह, गाडर, नहलाने के गीत, वेदी गीत, कन्यादान के गीत, विदाई गीत, पौराणिक कथाओं के गीत, ऐतिहासिक राजाओं के गीत, प्रकृति के गीत, पहाड़ी संस्कृति, रहन–सहन, खानपान, वेश–भूषा के गीत, त्योहारों–मेलों के गीत, मरण समय के गीत, हर रीति–रस्म के गीत हिमाचली लोकसाहित्य में मिलते हैं। जीवन का ऐसा कोई भी भाग नहीं होगा जहाँ लोकगीत नहीं होंगे। अतः लोकगीत हिमाचली जीवन और संस्कृति के आधार तत्व हैं।

हिमाचली प्रकीर्ण साहित्य में सामाजिक–सांस्कृतिक परिवेश

लोकसाहित्य में प्रकीर्ण साहित्य की अपनी विशिष्ट भूमिका होती है। जब जनमानस अपने अत्यंत निजी भावों तथा अभिव्यक्तियों को प्रकट करता है तो इसी साहित्य के माध्यम से करता है। हिमाचली लोकसाहित्य में जनजीवन के संपूर्ण सामाजिक–सांस्कृतिक जीवन का लेखा–जोखा इसी प्रकीर्ण साहित्य में मिलता है। इसके अंतर्गत कहावतें, पहेलियाँ, लोकोक्तियाँ तथा मुहावरे शामिल किए जाते हैं। पहाड़ी बोलियों में कहावतों तथा लोकोक्तियों की प्रचुर मात्रा मिल जाती है। इस साहित्य में सामाजिक सत्य, लेन–देन, प्रवृत्तियाँ, शकुन–अपशकुन, हास्य, स्नेह, ज्ञानसूचक, रीति–रिवाज, संस्कृति आदि सभी से संबंधित प्रकीर्ण साहित्य मिलता है। मानव मस्तिष्क की भावधारा को समझने में पहेलियाँ भी अपनी विशेष भूमिका निभाती हैं। इस साहित्य के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं–

सामाजिक–सांस्कृतिक जीवन से संबंधित कुछ ऐसी वस्तुएँ जिनका दैनिक जीवन में महत्व है। इन वस्तुओं से जुड़ी अनेक पहेलियाँ हैं जैसे–

1. आर भी झूलौ पार भी झूलौ
   माँझै कैमटू फूलौ। (मक्खन)

2. एकी भाई ए पेटो दी दांद (एक भाई के पेट में दाँत) (कद्दू)[45]

3. ठैन–ठैन रानियु सांतनि बाबू (ठक–ठक की आवाज करने वाला बनावटी बाबू।) (चिमटा)[46]

4. नारो–नारो नारशिम माशकोच (गिन–गिनकर भी गिरना कठिन) (आकाश के तारे)[47]

लोकोक्तियाँ लोकसाहित्य का अभिन्न अंग हैं। इनमें जनजीवन के समस्त पहलू समाहित हो जाते हैं।

ऊँची दुकान फीका पकवान कहावत का किन्नौरी रूप इस प्रकार है–

1. मी जिगित्चु बातङ तेग (आदमी छोटा बात बड़ी)[48]

2. इम्या चोरसे, राया चोरसे (एक दिन का चोर, सौ दिन का चोर)[49]

अर्थात जो एक बार चोरी का आदी बन जाता है वह हमेशा चोरी करने के लिए ललचाता रहता है।

3. अफरो चीज ला कुने मर ना बोलदो (अपनी चीज को कोई बुरा नहीं कहता)

4. पेटिङ् ताङेस ज्वापरिङ् (पेट के लिए मौत के मुँह में)[50]

अर्थात पेट की खातिर (रोजी–रोटी के लिए) बहुत से खतरे मोल लेने लगता है।

5. स्याणे ओ बोल, आंबड़ेया स्वाद, पाछा लागो मीठो[51]

अर्थात बुजुर्गों की कही बात और आँवले की मिठास का बाद में पता लगता है।

6. छारा री मारी लात आऔ मुहालै[52]

अर्थात राख में पैर मारने से वो मुँह पर ही उड़कर आती है या बुरे व्यक्ति को मुँह लगाने से हानि होती है।

7. हांडे ओ छवा आणु शैई, बेशोओ छवा आणु चौई[53]

अर्थात राह में चलते–चलते रात हो जाए तो कोई बात नहीं बैठे–बैठे रात नहीं होनी चाहिए या मेहनत करनी चाहिए जीवन में यूँ बैठकर जीवन व्यतीत नहीं करना चाहिए।

इन लोकोक्तियों के अतिरिक्त जनजीवन से जुड़े कुछ मुहावरे भी हिमाचली प्रकीर्ण साहित्य में देखे जा सकते हैं जैसे–

1. पाचे पाणी (पत्ते पर पानी) 2. देशे–देशे नाचाणो (अपमानित करना) 3. दांद पचोकणे (मुँह बनाना) 4. शीले कोदरे साही चेकणो (बुरी तरह पीटना) 5. गौड़ौ काटडू (गले का हार) 6. थूके आरशू (थूक के आँसू) 7. सीउं ध्याड़ी ओ परेशी (दिन में दीपक जलाना)[54]

इस प्रकार प्रकीर्ण साहित्य लोकानुभूति का प्रतिबिंब कहा जा सकता है। इसमें जनजीवन से जुड़ी हर चीज से संबंधित साहित्य मिलता है। इसलिए प्रकीर्ण साहित्य का भी लोकसाहित्य में अपना विशेष महत्व है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि हिमाचली लोकसाहित्य चाहे लोकगाथा हो, लोककथा हो, लोकगीत हो या प्रकीर्ण साहित्य हो सबमें हिमाचली जनजीवन की सामाजिक–सांस्कृतिक जीवन की बहुरंगी झलकियाँ देखने को मिलती हैं। लोक–साहित्य हिमाचली जीवन की आधारशिला कही जा सकती है। ग्राम्य–जीवन, ग्राम्य–संस्कृति, ग्राम्य रीति–रिवाज, ग्राम्य–परिवेश आदि सभी की विस्तृत जानकारी इस साहित्य में मिलती है। अतः हिमाचली लोकसाहित्य में हिमाचली जीवन सत्य, सौंदर्य एवं परोपकार की भावनाओं को स्पष्ट रूप से जाना व समझा जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ

1. शर्मा, श्रीराम, लोक साहित्य : सिद्धांत और प्रयोग, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, 1976, पृ.3
2. गुप्त, गणपतिचंद्र, हिंदी भाषा एवं साहित्य विश्वकोश, खंड (3), नई दिल्ली : एटलांटिक पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, 1995, पृ. 1022

3. संतराम, अनिल, कन्नौजी लोक साहित्य, अभिनव प्रकाशन, दिल्ली, 1975, पृ.22
4. शर्मा, श्रीराम, लोक साहित्यः सिद्धांत और प्रयोग, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, 1976, पृ.3
5. गुप्त, गणपतिचंद्र, हिंदी भाषा एवं साहित्य विश्वकोश, खंड(3), एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, 1995, पृ. 1027
6. गौतम, सुरेश, लोक–साहित्य : व्याप्ति और यथार्थ, संजय प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008 पृ.8
7. शर्मा, श्रीराम, लोक साहित्य : सिद्धांत और प्रयोग, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, 1976, पृ.3
8. गौतम, सुरेश, लोक–साहित्य : व्याप्ति और यथार्थ, संजय प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008, पृ.5
9. वही, पृ.6
10. गौतम, सुरेश, लोक–साहित्य : व्याप्ति और यथार्थ, नई दिल्ली : संजय प्रकाशन, 2008, पृ. 54
11. वही, पृ.147
12. गौतम, सुरेश, लोक–साहित्य : व्याप्ति और यथार्थ, संजय प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008, पृ.194
13. कश्यप, पद्मचंद्र, कुल्लुई लोक–साहित्य, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1972, पृ.64
14. इंदरसिंह नामधारी, 164.100.47.132/Lss New/Psearch/Result15.aspx?dbse = 4397
15. गुलेरी, प्रत्यूष, हिमाचली लोककथा, नेशनल बुक ट्रस्ट ऑफ इंडिया, नई दिल्ली, 2007, (भूमिका)
16. भारद्वाज, हेतु, आज के परिवेश की चुनौतियाँ और साहित्य, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 1984, पृ. 12
17. जोशी, पूरनचंद, अवधारणाओं का संकट, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1995, पृ. 127
18. कश्यप, पद्मचंद, कुल्लुई लोक–साहित्य, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1972, पृ.131
19. वही, पृ.138
20. कश्यप, पद्मचंद्र, कुल्लुई लोक–साहित्य, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1972, पृ. 139
21. सिंह, भवानी, हिमाचल की लोकगाथाएँ, एकीकृत हिमालयन अध्ययन संस्थान, जयपुर, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय एवं लिट्रेरी सर्किल, 2010, पृ. 105

22. सिंह, भवानी, हिमाचल की लोकगाथाएँ, एकीकृत हिमालयन अध्ययन संस्थान, जयपुर, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय एवं लिट्रेरी सर्किल, 2010, पृ. 105
23. वही।
24. वही, पृ. 239
25. www. divyahimachal.com/careers-and-jobs/career/हिमाचली जनजीवन/ जनवरी 31, 2012
26. शर्मा, वंशीराम, किन्नर लोकसाहित्य, ललित प्रकाशन, हिमाचल प्रदेश, 1976, पृ.95
27. हांडा, ओमचंद, पश्चिमी हिमाचल की लोककथाएँ, इंडस पब्लिशिंग कंपनी, नई दिल्ली, 1988, पृ.55
28. वही, पृ. 54
29. कश्यप, पद्मचंद्र, कुल्लुई लोक–साहित्य, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1972, पृ. 184
30. हांडा, ओमचंद, पश्चिमी हिमाचल की लोककथाएँ, इंडस पब्लिशिंग कंपनी, नई दिल्ली, 1988, पृ. 56
31. वही, पृ. 60
32. कश्यप, पद्मचंद्र, कुल्लुई लोक–साहित्य, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1972, पृ. 215
33. हांडा, ओमचंद, पश्चिमी हिमालय की लोककथाएँ, इंडस पब्लिशिंग कंपनी, नई दिल्ली, 1988, पृ.50
34. वही, पृ.33
34. वही, पृ.36
35. वही, पृ.34
36. वही, पृ.35
37. कश्यप, पद्मचंद्र, कुल्लुई लोक–साहित्य, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, पृ. 93
38. वही, पृ.95
39. वही, पृ.100
40. वही, पृ.102
41. हांडा, ओमचंद, पश्चिमी हिमालय की लोककथाएँ, इंडस पब्लिशिंग कंपनी, नई दिल्ली, 1988, पृ.47
42. वही, पृ.47, 48
43. शर्मा, वंशीराम, किन्नर लोकसाहित्य, ललित प्रकाशन, हिमाचल प्रदेश, 1976, पृ.95
44. हरनोट, एस.आर., हिडिंब, आधार प्रकाशन, पंचकुला, 2004, पृ. 116
45. कश्यप, पद्मचंद्र, कुल्लुई लोक–साहित्य, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1972, पृ. 168

46. शर्मा, वंशीराम, किन्न लोकसाहित्य, ललित प्रकाशन, हिमाचल प्रदेश, 1976, पृ. 154
47. वही।
48. शर्मा, वंशीराम, किन्नर लोकसाहित्य, ललित प्रकाशन, हिमाचल प्रदेश, 1976, पृ. 138
49. वही, पृ.139
50. वही, पृ.140
51. कश्यप, पद्मचंद्र, कुल्लुई लोक–साहित्य, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1972, पृ. 170
52. वही, पृ.171
53. वही, पृ.173
54. वही, पृ.184

❑❑❑

झारखंड के पग–पग पर गीत

अनिता रश्मि

उपन्यासकार और कहानीकार । विभिन्न पत्रिकाओं के विशेषांकों में रचनाएँ प्रकाशित । पंद्रह से ज्यादा पुस्तकें प्रकाशित। कई सम्मानों से सम्मानित। संप्रति– स्वतंत्र लेखन।

मांदर! मांदल!... एक ऐसा वाद्ययंत्र है जो आदिवासियों की पहचान है। मांदल की थाप एक अजीब–सी कशिश से भर देता है। झारखंड का सांस्कृतिक परिदृश्य इसके बिना अधूरा है। उन्नत और गौरवशाली परंपरा के धनी झारखंड में मांदल की थाप सदियों से गूँजती रही है, गूँजती रहेगी भी।

बाँसुरी की मीठी तान, जो जंगल–जंगल, डहर–डहर को मिठास से भर देती थी, आज खो–सी गई है लेकिन मांदल की थाप को बड़े जतन से लोगों ने बचा लिया है। आज भी कहीं से इस थाप की अनुगूँज भर कानों में पड़ जाए, थिरक उठते हैं पैर! थिरक उठती है कमर! थिरक उठती है पूरी देह! नाच उठता है पूरा झाड़–झंखाड़, झारखंड! झूमर से सज जाता है हमारा झारखंड!! पूरी कायनात खिल उठती है।

हर दृष्टि से उन्नत इस प्रदेश की उपेक्षा सदियों से होती रही। लेकिन अलग राज्य बनने के बाद इसकी सभ्यता–संस्कृति, साहित्य के प्रति आम जनों के बढ़ते लगाव ने अंततः लोगों को सोचने पर मजबूर कर दिया कि यह केवल झाड़–झंखाड़ों का ही प्रदेश नहीं, 'रत्नों' की खान भी है यहाँ।

केवल प्रकृति का अनमोल दान ही नहीं, साहित्य, संस्कृति की अक्षुण्ण, अविरल बहती धार भी है। नदियों–तालाबों, निर्झरों के साथ निरंतर बह रही है यह धार! झारखंडी लोग सदियों से हर अवसर, हर कार्य पर, हर उत्सव पर गीतों की रचना करते रहे हैं। उनके रचयिता का नाम भले पता न हो, पर यहाँ के लोगों ने हर अवसर के लिए अथाह गीतों की रचना की थी और की है। विभिन्न क्षेत्रीय बोलियों में गीत–संगीत की निरंतर प्रवाहमान नदी हर इलाके में मिल जाएगी यहाँ।

झारखंड के वीरों की गीतिमयी गाथा भी माला में मोती–सी पिरोई गई है। एक संथाली गीत की बानगी देखिए–

संताल मा दिसोमरे
सिदो–कान्हुकिन राजलेना
ति कोलोम ताकिन

होड़ोमो मांयांय सिहाय ताकिन
संताल परगनानाकिन बेगारलेदा

अर्थ–संथालों के देश में सिदो, कान्हू राजा हुए थे। अँगुली उनकी कलम थी। खून उनकी स्याही था। तभी संथाल परगना को अलग किया गया था।

एक और गीत में इन क्रांति के नायकों को देखें –

भोगनाडीह नाती रेन
सिदो–कान्हु चाँद–भैरव भाइरो
नाड़ी दाड़े को ताहेकाना
उपासा–तिरासा ताहेकाते
सार को नाड़ाक् लेदा सित्र–त्रिंदा
साहेब सुबा को सुमार लेत् को
आबेन देहो सिदो–कान्हु
साधिनोक् होर गेबेन तागी लेदा
रिन हाला–हाला तेको लाडगायेना संताल
हूल बेन एहोप केदा पाँचकाठिया रे!

अर्थ– भोगनाडीह (जन्मस्थल) के चारों भाई सिदो–कान्हु, चाँद–भैरव बहुत बड़े योद्धा थे। दिन–रात भूखे–प्यासे रहकर उन्होंने लड़ाई की। अंग्रेजों को तीर से मार दिया। तुम दोनों ने अंग्रजों से संघर्ष किया। कर्ज चुकाते हुए संथाल थक चुके थे। तब तुमने पाँचकठिया नामक जगह से हूल अर्थात क्रांति शुरु की।

कुडुख, हो, संथाली, खोरठा आदि सभी भाषाओं ने लोगों के बीच गहरी पैठ बनाई है। एक आम बोलचाल की भाषा, आदिवासियों की संपर्क भाषा 'नागपुरिया' ने प्रत्येक धर्म–संप्रदाय, जाति के लोगों के बीच जबरदस्त मिठास घोल दी है। ऐसी मिठास जिसमें सभी डूब–उतरा रहे हैं। यह नागपुरी अब दुरूह नहीं रह गई है। क्या हिंदू, क्या मुसलमान, क्या बंगाली सब लोगों पर इस नागपुरिया का रंग चढ़ चुका है। बोलने में कठिनाई हो तो हो, समझने में नहीं होती। इसके लिए बहुत हद तक मांदल की थाप पर उमगते, लरजते उन गीतों को सहायक माना जा सकता है, जो जीवन के चक्के के प्रत्येक चक्र से निकले हैं। गाँवों में बहते–बहते यह झरना शहरों तक आ पहुँचा है. .. लोगों के अंतस को भिगो डाल रहा है। हमारा परिचय बढ़ चला है, गाँवों में मनाए जाते छऊ, दून्दू नाच, झूमर, सरहुल, डोमकच, पइका नाच से करमा, टुसू पर्व, मंडा पर्व एवं सोहराई आदि उत्सवों, उसके गीत–संगीत से। करमा पर्व पर बालू की छोटी–सी टोकरी में जौ, कुरथी आदि बीजों को अंकुरा दिया गया है, और सजी–धजी बालाएँ गा रही हैं –

चारी पहिरे राती कुआँ खुदाबे
पाटाय लिया गे बेटी अहीरे जावा

अर्थ– चार पहर रात में कुआँ खोद लिया गया है। लो बेटी, जावा को पटा (सींच) लो।

मांदल, नगाड़े के बोल लगातार बज रहे हैं...ढम!...ढम!...ढिका...ढिका...ढम! यहाँ वनों–पाषाणों में भी इतनी जीवंतता! मांदर बज उठा। ब्याह की तैयारी हुई नहीं कि झूमर ने समां बाँध दिया। डोमकच ने अपना वर्चस्व दिखला दिया। 'बिहा' अर्थात विवाह गीत' से सराबोर हो उठी धरती–

चैत बैसाख मासे गरमेर रोदा गो,
सूखी गेलो अहरी पखोरी.
अहरी जे सूखी गेलो,
पखोरी जे सूखी गेलो
कबे बेटी होबो तो बिहा

अर्थ– चैत, बैसाख महीने में पोखर, तालाब सूख गया है। जब ये पूरी तरह सूख जाएँगे तो बेटी का विवाह कैसे होगा?

एक तरह से यह पर्यावरण की भी जायज चिंता है। धरती पुत्र पर्यावरण के पोषक हैं। जल, जंगल, जमीन के रक्षक। सरना स्थल, मंडप में मांदल बजाया गया, हड़िया का नशा सर चढ़कर पहले ही बोल रहा। और जीवन से लबरेज आँखोंवाली जनी नृत्य में निमग्न है... उसके कानों को वह थाप की आवाज मिल चुकी है... वह अब रुक नहीं सकती। पीठ पर बँधे बेतरे से कंगारू के बच्चे की तरह उसका बच्चा झाँक रहा है। बेतरे में बाँधा गया बच्चा हुलस रहा है गाने के बोल आकाश चूम रहे हैं। और वह अपनी साथिनों के साथ नाचे जा रही है... नाचे जा रही हे। पैरों में मयूर की थिरकन आ गई है जो रुकना नहीं जानती। अखरा में गीत–नृत्य, मांदर की आवाज की अद्‌भुत आकर्षण का गवाह आज हर शहर–गाँव, कस्बे का अखरा है। एक 'हो' गीत की बानगी–विवाह के अवसर पर आँगन में साथ–साथ नाचते हुए वर और वधू पक्ष आपस में क्या कहते हैं, सुनें–

मइ रेन पइकि को
मइ रेन पोरोजा को
निमिन जेटे निमिन लेलो
पेरकलि नको इनुंड तना

अर्थ– वर पक्ष– हे वधू पक्ष के सम्मानित जन! हे अतिथिगण! इतनी धूप–गर्मी सहकर खदान का काम छोड़कर आप यहाँ आए।

तब वधू पक्ष के लोग गाते हैं –

बबु रेन पइकि को
बबु रेन पोरोजा को
निमिन जेटे निमिन लोलो

पेरकलि नको इनुंड तना

अर्थ– हे वर पक्ष! हे अतिथिगण! आप भी कष्ट और परेशानी झेलकर यहाँ आए।

आगे युवती युवकों को छेड़ते हुए गा रही है –

हेसअ् सकम कागोजो बोये
बड़े सकम सिलोट बोयो
ओल इचि कोवालांड बोयो
पड़व इचि कोवालांड बोयो
कको ओले दड़ि रेदो
कको पड़व दड़ि रेदो
इदि कोवालांड थाना बोयो
चलनि कोवालांड जिला बोयो

अर्थ– पीपल के पत्ते को कागज समझो, बरगद के पत्तों को स्लेट! उस पर तुमसे लिखवाएँगे और पढ़वाएँगे। अगर नहीं लिख–पढ़ सके तो तुम्हें थाने ले जाकर चालान करवाएँगे। मतलब पढ़ने की ललक ऐसी कि ब्याहमंडप पर भी छेड़छाड़ में पढ़ाई की बात शामिल!

एक और गीत में लक्ष्मी को निमंत्रण भेजा जा रहा है –

रबंग तन रेयाड़ तन
लोकी अर लक्ष्मी कीन देला बोलों बेन
लकी अर लक्ष्मी कीन देला बोलो बेन

अर्थ– जाड़े का महीना है। ठंड लग रही है। लक्ष्मी और लखी दोनों घर के अंदर आओ। लखी और लक्ष्मी धन–धान्य और पशुधन देगी।

रोपा के लिए आत्मा बेचैन है। रोपनी खेत पर जुट आई है... बीचड़े (धान के पौधे) फेंके जा रहे हैं। रोपनी खेतों में उतर रही हैं। रोपा करते हुए हाथों में गज़ब की तेजी... साथ ही गीतों का दंगल शुरु। दो हिस्से में बँटकर गीतों में जवाब–तलब!
अब क्या नागपुरिया, क्या कुरमाली, सबके गीत मस्त करनेवाले हैं। बस उठती रहनी चाहिए मांदल की थाप! खुद उससे उठ पड़ेगा आनंद का ज्वार! उराँवों की कुडुख बोली में वनैले जीवों के शिकार अर्थात सेंदरा पर जाने के एक गीत की बानगी देखें–

सेंदरा अंबा कला भईया
पतेड़ानु ओन्टे हूं मुईययया मल्ला
मुईययया गा केरा सोहान परेतानू
सेंदरा अंबा कला भईया.....

अर्थ– सेंदरा करने के लिए नहीं जाओ भैया क्योंकि पतरा में खरगोश नहीं हैं। सभी खरगोश भागकर सोहान पहाड़ पर चले गए।

अपनी सभ्यता–संस्कृति के प्रति जुनून की हद तक प्यार करनेवाले आदिवासियों के लिए... खासकर ग्रामीण आदिवासियों के लिए पर्वों, नृत्यों का बहुत महत्व है। और तो और कांसा–पीतल के बर्तनों से प्रेमी की तुलना अद्‌भुत है –

तरी नरी नहा नरी ना ना रे सुअना
तुलसी के बिरवा करै सुगबुग–सुगबुग....रे सुअना!
नयना के दिया रे जलांव
नयनन के नीर झरै जस औरवांती....रे सुअना!
अंचरा में लेहव लुकाय
कांसे पीतल के अदली रे बदली....रे सुअना!
जोड़ी बदल नहीं जाए।

अर्थ – तुलसी के नीचे नायिका नैनों के दीप जलाकर नायक का इंतजार कर रही है। उसकी आँखों से निरंतर आँसू बह रहे हैं. कहीं दीपक बुझ न जाए, इस डर से उसे आँचल से छुपाकर रखती है। वह सुआ से आगे कह रही है कि कांसा–पीतल के बर्तन की अदला–बदली तो की जा सकती है पर प्रिय को कठोर होने के बावजूद बदला नहीं जा सकता।

नित्य भिनसरे का किरण फूटने से पहले उठकर कठोर श्रम की भट्‌टी में अपनी देह–आत्मा को तपा देनेवाले इन ग्रामीणों के लिए कहा जा सकता है – ये वनवासी सच में वन के वासी हैं। लेकिन झाड़–झंखाड़ में भटककर जीविका चलानेवाले को मंजूर नहीं वनवासी कहलाना। उन्हें झारखंडी कहलाना ही पसंद है। झाड़–झंखाड़ों भरे पथरीले रास्ते पर चलते हुए भी ये अपनी सभ्यता–संस्कृति की राह नहीं छोड़ते।

ये नहीं सीखना चाहते, नहीं मानना चाहते परंपरा से अलगाव की बात। इनकी परंपरा इनकी जान है। हड़िया, मुर्गा लड़ाई, झूमर, पइका नृत्य इनके जीवन का अहम हिस्सा है। छउ गीत को नाट्य गीत कहा जा सकता है। उसकी एक झलक–

बने मोर पाख पाखुड़ा,
बाँधे मोर फेचा
देख रे देख बँधुआ
ई अखड़ाक मजा

अर्थ– वन में पक्षियों का शिकार होता है। देखो रे, देखो अखड़ा का मजा।

प्राकृतिक संपदा, अनमोल रत्नों से भरी अपनी निश्छल गाँव की माटी पर ये लगभग अपने प्राकृतिक रूप में ही नजर आएँगे। आधी टाँग की धोती में नर, एक साड़ी में लिपटी नारी। इनकी फिलॉसफी तगड़ी है – मिट्‌टी में जन्मे हैं, मिट्‌टी में मर जाना है तो मिट्‌टी से अलगाव कैसा?

इनकी देह में माटी की सुगंध रची–बसी है। खिल–खिल! हँसती बालाएँ मिट्‌टी

मे लिथड़ी झूमते–गाते मिल जाएँगी। 'टूटी खाट, घर टपकत' की स्थिति से आक्रांत पर आत्मा में घुले गीतों के बोल इनमें असीमित, कल्पनातीत उत्साह और ऊर्जा भरते हैं जो अन्यत्र दुर्लभ है। ग्राम्य जगत के इन भोले–भाले बाशिंदों का अंतस बहुत कोमल, निश्छल है। प्रकृति–पूजक कहते हैं –

बनझाड़–झाड़ पड़ेला खेढ़िया
तो मने–मने भाभेला
नदी–नला नला खेला मच्छरी
तो मने–मने भाभेला

अर्थ– पेड़–पौधे झूमते हैं तो जंगल सुहाना लगता है। मछलियाँ जब नदी–नालियों में खेलती हैं तो यह भी मनभावन लगता है।

अंधविश्वास, अशिक्षा, भूख, शोषण और पलायन की मार के बावजूद कुछ मामलों में ये अन्य जाति के लोगों से ज्यादा सभ्य, ज्यादा प्रगतिशील, ज्यादा आधुनिक, ज्यादा वैज्ञानिक हैं। इनके कई गीतों से पता चलता है। इन्हें लिखनेवाले साहित्य की विधाओं से परिचित नहीं थे। पर हर परिस्थिति, हर अवसर एवं हर समय फूट पड़ने को आतुर गीत जिंदगी से उठाए गए हैं। इन वाचिक जीवंत गीतों का बखूबी साथ निभाया है मांदर ने... उसकी थाप ने। वीर सपूतों के बलिदान की गाथाओं पर भी गीत मिलेंगे, तो अखरा में मस्ती करने के इच्छुक चुहुल करनेवालों के भी ककहरा जाने बिना ही बड़ी बात कह देनेवाले साहित्य से अनजान लोग जब गाते थे –

अखड़ा हीं बाजै जोड़ा मांदर गो
चलअ भौजी झूमर देखे

– तब सबके दिलों में प्यार–स्नेह भर देते हैं।

छोटका देवर बड़ा मोहित गो
चलअ भौजी झूमर देखे
अखड़ा हीं बाजे जोड़ा मांदर गो...
उठल पिया देलक एड़ा एड़ा (लात)
कहाँ जइबा झूमर देखे?

करम पर्व आ गया तैयारी के लिए बालिकाओं का मन मचल उठा। करम पर्व का यह गीत बालिकाओं में उत्साह ला देता है– भाई की सलामती की कामना का त्योहार और अपना करम, भाई के धरम माननेवाली स्त्रियों का आग्रह माँ से –

राजीयय घी राजी करम वरचा
हायरे एंगदा किचरीगेम चीखी रे
हा रे एंगदा बोगोगेम चीखी...
आवय चिखय बेटी
रीगीं–चीगी किचरीनुम खेंदोन रे

रगा–बगा बौगीनुम खेदोन

अर्थ– सारे राज्य में करम त्योहार आ रहा है। इसकी तैयारी में सभी लगे हैं। इस साल हमारी बेटी भी करम पूजा करेगी। वह पड़ोसी की तैयारी को देखकर रो दी। माँ समझाती है– बेटी, तुम क्यों रोती हो? मैं भी तुम्हारे लिए रंग–बिरंगे नये कपड़े ला दूँगी। रंग–बिरंगी बाँस की टोकरी खरीद दूँगी।

डहर–डहर, शहर–शहर घूमकर जब लोग शाम ढले घर की राह पकड़ा करते थे, साथ में रात की खर्ची आटा, चावल, नून–तेल बँधा होता है। सब पंक्तिबद्ध होकर गाँव, वन की पगडंडी पर अपने–अपने ठिकाने की ओर बढ़े जा रहे हैं. उस समय भी डोहा/डहरिया गीतों के बोल उनकी थकान को पटखनी दे रहे हैं –

लक–फक करौ दइया रे
घर के बरंगिया हो दइया
घर बिना घरनी उदास...या
आम फरइ झंपा–झंपा
तेतेइर फरइ बांका–बांका

अर्थ– आम गुच्छे–गुच्छे में फलता है. इमली तो टेढ़ी फलती है।

इन डहरिया गीतों (राहगीर के गीत) में उनके स्वर का उतार–चढ़ाव देखते बनता था। 'था ' इसलिए कि अब ये गीत लुप्तप्राय हैं। नदियों की स्वच्छता, पवित्रता की तरह निर्मल इनकी संस्कृति में शामिल मतवारी लोकगीत भी लुप्तप्राय हैं।

वे नाम जो अपना नाम लिखना भी नहीं जानते थे, अँगूठे की छाप ही जिनकी पहचान थी, जीवन से उठाई गई सीधी, सच्ची बात ही जिनकी संस्कृति थी, वे कालांतर में अपने झारखंडी बाजा तुरही, मांदर, ढोल–नगाड़ों के साथ प्राचीन कथाएँ आँखों के सामने ले आते थे। झारखंडी गीत–संगीत से पूरा वातावरण झुमा देते थे।

उन्नति के सोपान पर आरूढ़ होकर कई उच्च पदों को सुशोभित करनेवाले मातबर लोग तक अब भी झुमा देते हैं, विभिन्न बोलियों में अपने–अपने गीत गाकर। मांदल की मदमाती आवाज अब भी उन्हें नाचने पर मजबूर कर देती है।

एक मुंडारी लोकगीत में व्यवसाय का भी जिक्र है –

बुरु अते हड़गुन को ना सोंदारी
नरा ते नासोरेन को
निकु चिको तुला बुलुंगअ ना सोंदारी
निकु चिको गंडाये रासुड़ी

अर्थ– पहाड़ से उतरने वाले और घाटी से सरकने वाले क्या यही लोग तराजू से तौलकर नमक बेचनेवाले हैं ? क्या यही लोग लहसून को खेजाकर बेचनेवाले हैं? हाँ! यही लोग तराजू से तौलकर नमक बेचनेवाले हैं।

हाँ! यही लोग लहसून खेजाकर बेचनेवाले हैं।

सच! कितनी समृद्ध रही है यह संस्कृति!

❑❑❑

साहित्य में आंचलिक भाषाओं का स्वर माधुर्य और विलुप्त हो रहे लोकोक्ति, कहावतें व मुहावरे

सुरभि बेहेरा

प्रकाशित पुस्तकें– 'खिलती पंखुरियाँ' कथा–संग्रह सहित अनेक अनूदित पुस्तकें प्रकाशित। ओडिया से हिंदी अनुवाद में विशेष रुचि। विविध पत्र–पत्रिकाओं में अनेक रचनाएँ प्रकाशित। राष्ट्रीय राजभाषा पीठ द्वारा भारती भूषण सम्मान सहित अनेक सम्मानों से सम्मानित। संप्रति–प्राध्यापक, जुपिटर साइंस कॉलेज ,भुवनेश्वर ।

जन्म से ही ओडिशा प्रांत में रहने के कारण ओडिया भाषा के प्रति मेरा एक खास रूझान रहा है। ओडिशा प्रदेश ने हर दृष्टि से संगीत, कला एवं साहित्य के क्षेत्र में अग्रसर होने के कारण मेरे अंदर की कला चेतना को भी और अधिक प्रेरित किया। साठोत्तरी ओडिया कथा साहित्य के कई विशिष्ट कथाकारों जैसे प्रतिभा राय, मनोज दास, सातकड़ी होता, गौरहरी दास, सीताकांत महापात्र की प्रमुख कहानियों को पढ़ने के बाद जब मेरी पहली अनूदित कृति ''ओडिया की चर्चित कहानियाँ'' का चयन अत्यंत प्रशंसनीय साबित हुआ तब अनुवाद करना मेरे सृजन की भी सकारात्मक सोच बन गई।

1999 में जब ओडिशा में (महावात्या) बहुत बड़ा समुद्री तूफान आया था। उस वक्त ओडिशा के समुद्री तट पर बसे हुए गाँवों में तूफान ने घोर प्रलय कर सबकुछ इस तरह ध्वंस कर दिया था कि लोगों को अपना घर खोजना तो दूर की बात अपनी जमीन का अंदाजा लगाना भी मुश्किल हो गया था। उस समय ओडिशा की उस दयनीय दुर्दशा पर मेरी एक अनूदित कहानी 'अल्पना अंकित दीवार' बहुत प्रशंसित हुई थी और यही कारण है कि ओडिशा की ग्रामीण क्षेत्रों से जुड़ी भावनाओं से मैं धीरे–धीरे बँधती चली आई।

वैसे तो, ओडिशा के लोग बहुत ही विनम्रशाली हैं। यहाँ बचपन से ही बच्चों को किसी से भी बात करने के लिए विनम्रता की एक अनोखी शैली सिखाई जाती है। पूरे भारतवर्ष में जो प्रथा नहीं है वह हमारे ओडिशा प्रदेश में है। जैसे आप मुझे पुकारें या मुझसे कुछ कहना चाहें तो मैं कहूँगी, हाँ या जी हाँ, लेकिन ओडिशा में इसी हाँ या फिर जी हाँ को बड़े विनम्र और अदब के साथ 'आज्ञा' कहे जाने का प्रचलन है। इस एक 'आज्ञा' शब्द से मैं आपकी क्या सेवा कर सकती हूँ के भाव स्पष्ट झलकते हैं। ये जो संस्कार और मिठास है वह शायद आपको बहुत कम ही जगह देखने को मिलेगी।

आज तक पूरे भारतवर्ष में छह भाषाओं को शास्त्रीय मान्यता प्राप्त हुई है। जिनमें संस्कृत के अलावा बाकी चार भाषाएँ दक्षिण भारत की हैं। यह बड़े गर्व की बात है कि ओडिया जो मध्य भारत की भाषा है उसे 2018 में शास्त्रीय मान्यता प्राप्त हुई है। ओडिया भाषा की प्रधानता का अनुमान हम ओडिशा के चार ज्ञानपीठ पुरस्कृत श्री गोपीनाथ महांति, श्री सच्चिदानंद राउतराय, श्री सीताकांत महापात्र एवं श्रीमती प्रतिभा राय जैसे साहित्यकारों द्वारा भी लगा सकते हैं।

कई प्रदेशों में मुख्य समाचारपत्रों द्वारा वहाँ की आंचलिक भाषा को कहने के लिए एक कॉलम मात्र ही मिलता है। लेकिन ओडिशा के पश्चिमांचल में 'कोशल प्रभा' नामक एक आंचलिक साप्ताहिक समाचार पत्र लगभग उन्नीस सालों से निरंतर प्रकाशित होते आ रहा है। जिसमें ओडिया भाषा एवं यहाँ की आंचलिक भाषा 'कोशली' को एक समान दायरे में रखा गया है। सिर्फ इतना ही नहीं इसके अलावा– नुआ सकाल, बरूआ आदि और भी कई पत्रिकाएँ मूल रूप से कोशली भाषा में ही प्रकाशित हो रही हैं।

ओडिशा के आंचलिक क्षेत्र में नारी स्वातंत्र्य यहाँ के लोकजीवन का वैशिष्ट्य है। यहाँ नारी को संपूर्ण सामाजिक हक मिले हुए हैं। वह सम्मान की अधिकारिणी है, जिसका उदाहरण यहाँ की लोककथा में देखने को मिलता है। 'जैसी करनी वैसी भरनी' कथा में 'करमसेनी' की पूजा करने वाली औरतें घर में निर्वासित होती हैं पर कालांतर में साधव (व्यापारी) पुत्रों का ज्ञानोदय होता है और साधव बहुएँ ससम्मान घर में वापस आती हैं। वर्ग सुंदरी अप्सरा, असुर कन्या, राजरानी, साधव पुत्री जैसी नारियों को लेकर ही यहाँ की आंचलिक लोक कथा निर्मित हुई हैं।

– ओडिसी नृत्य, आंचलिक संबलपुरी गीत 'रंगवती' आदि को विदेशों में भी मान्यता प्राप्त हुई है। ''रंगवती रंगवती कनकलता, हाँसी पदे कह लो कथा'' इस एक गीत के जरिए बताया गया है कि नारी संपूर्ण रूप से हर गुण में परिपूर्ण है।

दरअसल, हमने तो अब तक हिंदी, उर्दू, अंग्रेजी, बांग्ला, मराठी भाषा ही सुनी थी। अब आप जानना चाहेंगे कि आंचलिक भाषा भी कोई भाषा होती है क्या? 'हाँ' होती है। यह किसी विशेष क्षेत्र या अंचल में बोली जाने वाली भाषा है जैसे भोजपुरी, मगही, अवधी। फिर भी इन आंचलिक बोलियों को हम भाषा मानते हैं। कहा भी जाता है यदि साहित्य जीवन का प्रतिबिंब है तो लोक साहित्य उस अंचल के जनजीवन का प्रतिबिंब है। इसलिए यदि आंचलिक भाषाएँ सबल न हुईं, तो इसका सीधा असर हिंदी और इसके स्वरूप पर ही पड़ेगा।

''साहित्य में आंचलिक भाषाओं का स्वर माधुर्य, ठेठपन व विलुप्त होती लोकोक्तियाँ, मुहावरे और कहावतें'' निश्चित रूप से यह एक अच्छा और महत्वपूर्ण विषय है। साहित्य में आंचलिक भाषा के जुड़ाव से उसमें निखार तो आता ही है साथ ही उस

अंचल के लोगों में यह विश्वास पनपने लगता है कि धीरे–धीरे वे भी साहित्य के क्षेत्र में अग्रणी होते जा रहे हैं। लोगों की सोच में अलगाववादी भावना का रूप बदलकर समन्वित होने के भाव जाग्रत होने लगते हैं। वैसे तो किसी भी प्रदेश के जनजीवन में झाँकने के लिए सर्वप्रथम वहाँ के लोक साहित्य के विभिन्न पहलुओं की गलियों से गुजरना पड़ता है। वहाँ के लोक साहित्य से उस अंचल विशेष की न केवल साँस्कृतिक चेतना ही मिलती है बल्कि वहाँ के पारंपरिक परिवेश एवं लोकरंजन के सभी क्रियाकलाप भी मिलते हैं। निस्संदेह हिंदी भारत की सहज, स्वीकार्य और व्यवहार की भाषा है। लेकिन आंचलिक भाषाओं का न केवल शब्द–भंडार बल्कि हिंदी के शब्द–भंडार से अलग एवं विपुल है। देखा जाए तो आंचलिक भाषाएँ कई अर्थों में चमत्कारी भी हैं। इसका लाभ यदि हिंदी को मिलता है तो यह भाषा के तौर पर हिंदी के लचीलेपन का ही द्योतक है।

आंचलिक भाषाओं से हिंदी का सहयोग बना ही तब रहेगा, जब हिंदी उनसे बराबरी का व्यवहार करे। किसी भी क्षेत्र की आंचलिक भाषाएँ और हिंदी परस्पर शत्रु नहीं हैं। किंतु यह भी सत्य है कि ग्रामीण अंचल में और शहरी क्षेत्रों में हिंदी को संपर्क भाषा के रूप में आशातीत सुधार मिलता रहा है।

1– आंचलिक भाषा क्या है?

मुख्य रूप से आंचलिक भाषा किसी एक अंचल में बोली जाती है, किसी एक क्षेत्र में कही जाती है। ज्यादातर वहाँ के शब्द वहीं तक ही सीमित रहते हैं, बहुत दूर तक प्रचलित नहीं होते हैं। बहुत दूर तक प्रचलित न होने का कारण यह है कि उसे उसी क्षेत्र की भाषा मानी जाने लगती है और जब कोई लेखक वहाँ के पात्रों को लेकर, उन्हीं की भाषा को समझकर, उनकी ही बोली का प्रयोग करके, कुछ लिखता है तो कहा जाता है कि उसने आंचलिक भाषा में लिखा है।

जैसे हिंदी साहित्य में मशहूर फणीश्वरनाथ रेणु जी का साहित्य इसलिए भी लोकप्रिय है, रोचक है, क्योंकि उन्होंने अपने उपन्यासों में, अपनी कहानियों में आंचलिक शब्दों का खूब प्रयोग किया है और लोक कथाओं में भी उन्होंने आंचलिकता का प्रयोग कर उसे खूब रोचक बना दिया है। इसके द्वारा साहित्य में जो मिठास आ जाती है वो साहित्य को समृद्ध करती है।

लेखक खड़ी बोली में लिखते–लिखते हठात् आंचलिक भाषा में इसलिए चला जाता है कि उस खड़ी बोली में वह शब्द नहीं होते हैं। जिससे वह वहाँ की उस घटना क्रम को वर्णित कर सके। उसे आंचलिक भाषा का इसलिए सहारा लेना पड़ता है कि वहाँ के शब्दों से ही वहाँ के लोगों को समझाया जा सकता है। अगर उस अंचल के लोगों के समक्ष खड़ी बोली में कह डालें तो वह समझ ही नहीं पाएगा कि आप कहना क्या चाह रहे हैं।

दरअसल, आंचलिक भाषा के एक–एक शब्द में एक–एक कहानी छिपी रहती है। आंचलिक भाषा में किसी अंचल के एक शब्द को कह देने से उस कहानी के पूरे घटना क्रम को जाना जा सकता है।

पश्चिम ओडिशा की लोक कथाओं में पशु–पक्षी ही मुख्य अंग होते हैं। संबलपुरी भाषा में कथित बकरी और उसके बच्चे की कहानी यहाँ बहुत प्रसिद्ध है–

'एक गाँव में एक बकरी रहती थी। दीवाली आने से पहले उसका बच्चा माँ से कहता है– माँ ओ माँ! मेरे लिए एक कुर्ता बनवा दोगी। उस दिन जल रहे दिए और फूट रहे पटाखों को देखकर कितना मजा आएगा।' इस कथा से दीपावली, दशहरा पर्व के प्रति आंचलिक लोगों का धार्मिक विश्वास सन्निहित है।

2– किसी भी भाषा में माधुर्य होने का क्या तात्पर्य है?

यह बिलकुल सत्य और प्रमाणित है कि आंचलिक भाषाओं में बहुत ही मिठास है। प्रायः लोक गीतों की रचना आंचलिक भाषा में ही है।

सीधी सरल भाषा जिसे ग्रामीण अंचल में बोलचाल की भाषा कहते हैं, यदि उसी भाषा में साहित्य रचा जाए तो माधुर्य का होना निश्चित ही है। इसका मूल कारण यही है कि बोलचाल के एक–एक ठेठ आंचलिक शब्दों से लोकजीवन के यथार्थ की गहराई से व्याख्या की जा सकती है और लोग उसे आसानी से समझ भी पाते हैं। यही सरलता एवं सहजता ही किसी साहित्य का माधुर्य है, उसकी मिठास है। ऐसा साहित्य जनजीवन में अपनी पकड़ बना लेता है।

ज्यादातर क्या होता है कि लेखक जब किसी अँचल की बात करने लगता है तो वहाँ के लोगों को अपनी आत्मा के साथ जोड़ लेता है। ठीक उसी तरह जब एक ही अंचल के दो लोगों की मुलाकात होती है तो वे तुरंत अपने ही अंचल की भाषा का प्रयोग करने लगते हैं। भले वह लिखने के लिए नहीं पर बोलने के लिए कर लेते हैं। क्योंकि उनकी अपनी भाषा का एक माधुर्य है जिसके फलस्वरूप वे अपनी बातों को बहुत सहजता के साथ बता सकते हैं।

सीधे और सरल तौर पर अगर मैं कहूँ तो किसी भी भाषा की मिठास का आभास तब तक नहीं होता जब तक उसके मर्तबान से एक चम्मच निकाल के दो चार शब्द चख न लिए जाएँ। इसीलिए पेश है कुछ मिठास हमारे अंचल की।

दरअसल, ओडिशा की आंचलिक भाषा 'कोशली', कोशल प्रदेश की भाषा है। ओडिशा की इस आंचलिक भाषा को मुख्यतः संबलपुर, बलांगीर, बरगढ़, सोनपुर आदि जिले में बोला जाता है।

पश्चिम ओडिशा के लोक जीवन में प्रचलित रंगवती, डालखाई, रसरकेली जैसे गीतों का बहुत महत्व है। उदाहरणस्वरूप–

मॉल्ली फूलो फूटीकरी मह मह वासू
कला भंवरा के देखि गह गह हँसु

तार तार हेले नानी अलगे जाई वसु
किए टोके काईं कहिला साँगटा
अलगे जाई बसु नानी दे कह दे रे
रसरकेली रे रसरकेली रे

यह एक प्रेम गीत है जिसमें प्रेमी अपनी प्रेमिका से कहता है कि मल्ली फूल की तरह खिलकर तुम खुशबु देती हो और काले भँवरे को देखकर मुस्काती हो, पर जब मैं पास आता हूँ तो तुम दूर चली जाती हो। किसने तुम्हें ऐसा क्या कह दिया है, बताओ सखी जो तुम अकेले जाकर बैठ गई हो। यहाँ रसरकेली रे एक संबोधन स्वरूप है।

ओडिशा के ग्रामीण अंचल में सबसे ज्यादा लोकगीत नारी चरित्र से संबंधित है।

कहूची भउणी सुण
गला वेलकुटि संगतरे जिबो, देह संगे हेवो पाणि गो
नोहिले यम राजन
दंड देवे घन–घन।

अर्थात, सुनो बहन मैं तुम लोगों को कुछ कहना चाहती हूँ। जीवन के अंतिम क्षण में यह शरीर मिट्टी में मिल जाएगा, हमारे साथ सिर्फ ये गोदना ही जाएगा। यदि तुम इस गोदना के साथ नहीं जाओगी तो यमराज तुम्हें दंड देगा। ग्रामीण नारियों को अपने दैनिक जीवन में चाहे जितनी भी कठिनाइयों का सामना करना पड़े, उसकी चिंता उन्हें नहीं होती लेकिन अगले जन्म में उन्हें किसी भी तरह की सुख–सुविधाएँ मिल जाएँगी या नहीं, इसके लिए वे विशेष रूप से चिंतित रहती हैं।

3– किस तरह के साहित्य में आंचलिक भाषा का अधिक उपयोग हुआ है?

हिंदी में किसी एक शब्द के पर्यायवाची शब्द कई होते हैं, जैसे पानी शब्द को जल, वारि, नीर आदि भी कहा जाता है। गंगाजल कहने का तात्पर्य ही शुद्धता है। पानी तो नाले में भी बहता है पर सिर्फ पानी कह देने से हम उसे पी नहीं सकते। अगर जल कह दिया जाए तो लगेगा कि वह बहुत साफ–सुथरा है और उसे हम पी सकते हैं।

जहाँ तक हिंदी के भाषाई विकास के विभिन्न चरणों को जानने का प्रश्न है, उस परिप्रेक्ष्य में यह जानना उचित होगा कि क्या ये वही चरण हैं, जो हिंदी क्षेत्र में पहले से विद्यमान विभिन्न आंचलिक भाषाओं के रहे हैं?

हम जब किसी भी गाँव में जाते हैं तो हमें एक अलग–सी बोली सुनाई देती है और हम उन्हें ऐसे देखते हैं मानो वह हिंदी अच्छे से बोल नहीं पा रहे हों। लेकिन अगली बार से जब कभी भी ये ख्याल अपने जेहन में उतरे तो ध्यान रखें कि वे तो हिंदी बोल ही नहीं रहे। उनकी भाषा लोकभाषा है जो हिंदी से पृथक भी है और हिंदी से जुड़ी हुई भी। पृथक इसलिए कि वे लोग हिंदी–काल से भी पहले बोली जाने वाली

भाषा बोलते हैं और हिंदी से जुड़ी इसलिए कि इन भाषा से कई शब्द हिंदी के विकास में शामिल हैं।

आज हिंदी को समृद्ध बनाने मे आंचलिक बोलियों का बड़ा योगदान रहा है। आंचलिक बोलियाँ इतनी धनी होती हैं कि हर विपरित परिस्थिति में किसी एक वस्तु को अलग–अलग नाम से संबोधित कर हिंदी को भी समृद्ध बना देती हैं। इसका उदाहरण हम ओडिया में कोशली भाषा के विभिन्न शब्दों के उपयोग से देख सकते हैं, जैसे– जिस लकड़ी का सहारा लेकर चलते हैं उसे कोशली में 'बाड़ी' कहा जाता है, और जिस लकड़ी से गाय चराते हैं उसे 'ठेंगा' कहते हैं। जिससे घर बनाते हैं उसे 'पाटी' कहते हैं और जिससे मारते हैं उसे 'झाँट' कहते हैं। यहाँ एक ही वस्तु को इंगित करने के लिए उसके इस्तेमाल के अनुसार अनेक शब्दों का प्रयोग किया गया है। उसके लिए अगर हम दूसरा शब्द प्रयोग करते हैं तो अर्थ भी सही नहीं निकलता है और उतनी गंभीरता से उस बात को हम कह भी नहीं पाते। आंचलिक भाषा की यही सबसे खास बात है।

4– ठेठ या ठेठपन का अर्थ आंचलिक भाषा में क्या है?

ठेठपन या ठेठ का मतलब सीधे और सरल शब्दों में कहा जाए तो वह बोलचाल की भाषा जिसमें कोई बनावटीपन न हो, जो शुद्ध निपट देशी भाषा हो, जो बिलकुल सीधी–सादी बोली हो तथा जो अपने मूल रूप में हो, जिसमें कुछ और न मिला हो बिलकुल निर्विकार, निर्मल हो। जैसे ठेठ हिंदी, ठेठ मारवाड़ी, ठेठ हरियाणवी आदि। ठेठपन का तात्पर्य है कि अंचलवासी जो बोलते हैं, उसी को हम उनके वक्तव्य में या वार्तालाप में लिख देते हैं। उसे हम खड़ी बोली में बदलने का प्रयास नहीं करते। सीधे–सीधे आंचलिक भाषा के शब्दों को कह देना ही ठेठपन है। असलियत में देशज भाषा ही ठेठपन का स्वरूप है।

5– आंचलिक भाषा की लुप्त होती लोककथाएँ–

सामान्यतः लोक कथाओं में माधुर्य, वहाँ के लोगों की वेदना, वहाँ के लोगों की दिनचर्या तथा उस अंचल के लोगों की कहानी देखने को मिलती है। लोक कथा, साहित्य का कंठहार ही है। पहले गाँव–देहात के घरों में शाम होते ही बच्चे अपने दादा–दादी के पास बैठकर आंचलिक लोक कथाओं का आनंद लेते दिखाई देते थे, परंतु आजकल गाँवों में आंचलिक भाषाओं की संप्रेषणीयता बिलकुल लुप्त–सी होने लगी है। लेकिन संबलपुर, बलांगीर, सोनपुर जो पश्चिम ओडिशा के दायरे में आते हैं, वहाँ के जनमानस में संबलपुरी भाषा के प्रति आज भी प्रेम भरा हुआ है। संबलपुरी भाषा में दादी की बोली के रूप में एक उदाहरण देना चाहूँगी–

कहानी सुनब आसरे पिला टुकेला–कथा सुनने के लिए आओ रे लड़के–लड़कियों।

पश्चिम ओडिशा के आंचलिक जीवन में लोक कथाएँ पूरी शिद्दत से रची बसी हैं। उदाहरण–

एक बौला गाय हर रोज चरने जाती और शाम को वापस लौट आती। एक दिन वह एक खूँखार शेर की गिरफ्त में आ गई। जब शेर उसे खाने को लपका तो उसने गुहार लगाई कि मुझे मेरे घर जाने दे मैं अपने बच्चे को दूध पिलाकर वापस आ जाऊँगी वर्ना वह दूध पिए बिना ही मर जाएगा। पहले तो शेर नहीं माना फिर उसने गाय को जाने के लिए एक मौका दे दिया। कुछ देर बाद जब गाय अपने बछड़े को दूध पिलाकर वापस आई तो शेर गाय की सत्यवादिता को देखकर प्रसन्न हो गया और उसका शिकार न कर उसे वापस चले जाने को कहा।

ऐसी ही कथाओं से मन भावुक हो उठता है।

6– आंचलिक भाषा में लोकोक्ति, मुहावरे और कहावतों का क्या महत्व है?

यह बिलकुल सत्य है कि अपने भावों और विचारों को संप्रेषित करने के लिए अभिव्यक्ति का सबसे सशक्त माध्यम भाषा है। जिस प्रकार काव्य कला का सौंदर्य अलंकारों से निखरता है उसी प्रकार भाषा का माधुर्य मुहावरों और लोकोक्तियों से दोगुना हो जाता है। अगर आज भी हम कहावतों, दोहे, पहेलियों या मुहावरों का आनंद ले पाते हैं, तो इसका कारण सिर्फ लोक–साहित्य एवं लोकभाषा का मौजूद होना है।

मुहावरा भाषा का वह विशिष्ट गुण है जिसके प्रयोग से भाषा न केवल समर्पित और सांकेतिक हो जाती है वरन् अर्थ में लाक्षणिक सौंदर्य दृष्टिगत होने लगता है। मुहावरे की यह सबसे बड़ी विशेषता होती है कि आप उसके शाब्दिक गठन में कोई परिवर्तन नहीं कर सकते। जैसे 'कमर टूट गई' तो आप कटिबंध नहीं लिख सकते। कमर टूटने से जिस कठिन परिश्रम का अर्थ निकलता है वही अर्थ कटिबंध कह देने से नहीं निकलता है।

लोक में प्रचलित उक्ति ही लोकोक्ति है, यह सर्वकालिक और सार्वदेशिक होती है। यदि मुहावरा मानवीय अंगों पर आधारित हेाता है तो लोकोक्तियाँ मानवीय अनुभवों और अनुभूतियों पर आश्रित। संक्षिप्तता, सारगर्भिता, विदग्धता आदि गुणों से लबालब होने के कारण लोकोक्तियाँ साहित्य की संप्रेषणीयता में चकाचौंध की सृष्टि कर देती हैं।

यहाँ मैं एकाध उदाहरण के साथ मुहावरा और लोकोक्ति के ठेठपन अर्थात उसकी निजता या सपरिवर्तनशीलता पर भी दृष्टिपात करना चाहूँगी। एक मुहावरा है 'फूलकर कुप्पा हो जाना' यानी खूब प्रसन्न होना। इसमें आप लिंग, वचन के अनुरूप परिवर्तन नहीं कर सकते। जब मुझे इस भव्य समारोह में शामिल होने का आमंत्रण मिला तो मैं फुलकर कुप्पी नहीं हुई कुप्पा ही हुई। अर्थात आप मुहावरे के शब्दगठन में कोई परिवर्तन नहीं कर सकते। बड़े जिद्दी होते हैं ये मुहावरे। लोकोक्तियाँ तो और भी हठीली होती हैं। एकाध उदाहरण 'कोशली' भाषा में देना चाहूँगी।

लोकोक्ति–

देखेन सुंदरी फॉलसा फूल– देखने में सुंदर तो है पर उसमें कोई खुशबू नहीं है।

कहि जानले कथा सुंदर चाली जानले वाट– नाच न जाने आँगन टेढ़ा

अब ओडिया में कुछ मुहावरों का उदाहरण देना चाहूँगी–

आंचलिक मुहावरे–

अंधारो रे बाड़ी बुलेईवा– अँधेरे में तीर मारना

गर्जिला मेघ बरसे नाहीं– जो गरजने हैं वह बरसते नहीं

तिलो कु तालो करिवा– तिल का ताड़ बनाना

अल्प ज्ञान भयंकारी– आधा ज्ञान खतरनाक है

वस्तुतः मानव समाज उन सभी शिक्षित–अशिक्षित, सभ्य–असभ्य लोगों का समुदाय है जो परंपरागत, मूल्यों, जीवन–व्यापारों, रीति–रिवाजों में आस्था रखता है। लोकाक्ति इसी आस्था से सृजित होती है। लोकभाषा की संरचना में उसके ध्वनिगत सांगीतिक तत्व का भी बहुत महत्व है। लोकभाषा में क्षेत्रीयता, देशीयता अथवा आंचलिकता की अपनी अस्मिता और मिठास होती है। खखरा–खखरी, लल्लो–चप्पो, झांझर, नथुनियाँ, गुड़गुड़ाना आदि आंचलिक शब्द हैं। ऐसे शब्दों का प्रयोग आंचलिक कथाकार वेणीपुरी और फणीश्वरनाथ रेणु के कथा साहित्य में बहुतायत रहता है। रेणु जी की शैली लोक साहित्य के बहुत निकट की शैली है। चाहे 'मैला आँचल' हो या 'परती परिकथा' उपन्यास अथवा 'तीसरी कसम' कहानी। रेणु जी किसी भी अंतर से कोई भी कथा उठा लेते हैं और उसमें लोकभाषा की छौंक लगा देते हैं और उसके बाद कथा की माँग के अनुसार लोकगीत की पंक्तियाँ गूँथकर उसमें लोक संस्कृति की मधुरिम मिठास भरकर अत्यंत जीवंत साहित्य की सृष्टि कर डालते हैं। रेणुजी के कथा साहित्य में लोकभाषा, लोकोक्तियाँ और गाँव घरों में प्रचलित मुहावरों का अद्‌भुत प्रयोग देखा गया है।

यह कदापि संभव नहीं हो सकता कि इतने कम समय में आंचलिक भाषा के विशाल भंडार से चुनकर हर प्रकार के नमूने को यहाँ दिया जा सके। किंतु इन उदाहरणों द्‌वारा आपको साहित्य में आंचलिक गाँवों की धड़कन का अहसास जरूर हुआ होगा।

❑❑❑

लघुकथा : अतीत से भविष्य की ओर

किशन लाल शर्मा

उपन्यास, कहानी, कविता एवं लघुकथा की कई पुस्तकें प्रकाशित। अनेक पत्र–पत्रिकाओं में निरंतर लेखन। संप्रति– स्वतंत्र लेखन।

साहित्य में लघुकथा की भागीदारी अपने विभिन्न स्वरूपों में वर्षों पुरानी है। यह साहित्य की अनुपम धरोहर के रूप में साहित्य का एक अनमोल खजाना भी है और इस खजाने को सँभालकर रखना हमारा नैतिक कर्तव्य भी है।

कुँवर प्रेमिल का यह कथन लघुकथा की उत्पत्ति के बारे में बहुत कुछ कह देता है। लघुकथा का जन्म तब हुआ होगा, जब आदमी को भाषा का ज्ञान हुआ होगा। हजार–हजारों वर्षों से दादा–दादी, नाना–नानी, माँ–बाप आदि द्वारा रात को सोते समय बच्चों को सुनाए जाने वाले किस्से, कहानियाँ लघुकथाएँ ही थीं। इन कथाओं का स्वरूप हर युग मे बदलता रहा है। पहले सुनाई जाने वाली लघुकथाएँ पशु–पक्षी, चाँद–तारे, प्रकृति से संबंधित रही होंगी। कालांतर में मानव सभ्यता के विकास के साथ समाज, राज्यों, देशों की स्थापना के साथ कथाओं के पात्रों में राजा–रानी, परियाँ, भूत–प्रेत आदि का समावेश हुआ होगा।

छोटी–छोटी कथाएँ हर युग में लिखी जाती रही हैं। इनको बोधकथा, लोककथा, आदि नामों से जाना जाता है। 'पंचतंत्र', 'हितोपदेश', जातक कथा के साथ–साथ पौराणिक ग्रंथ छोटी कथाओं के अथाह भंडार हैं। उनमें लघुकथाएँ बिखरी पड़ी हैं। पूर्ववर्ती लेखकों में भारतेंदु हरिश्चंद्र, प्रेमचंद, सुदर्शन, परसाई, गुलेरी आदि अनेक लेखकों द्वारा लिखी छोटी कथाएँ हिंदी साहित्य का अनमोल खजाना हैं।

लघुकथा शब्द की उत्पत्ति– पूर्व में लिखी गई, चाहे काल खंड कोई भी रहा हो, लघु कथाओं को लघुकथा नाम नहीं दिया गया। वे विभिन्न नामों–जातक कथाएँ, पंचतंत्र की कथाएँ, पौराणिक कथाएँ आदि नामों से ही जानी जाती रहीं। लघु आकार

की रचनाओं को लघुकथा नाम देने का विचार बुद्धिनाथ झा कैरव के मन में आया। उनके द्वारा छोटी रचनाओं को 1942 में लघुकथा नाम दिया गया और फिर लघु रचनाएँ इसी नाम से जानी जाने लगीं।

हिंदी साहित्य का वर्गीकरण–हिंदी साहित्य को मुख्यतः दो भागों में बाँटा जा सकता है– गद्य और पद्य। गद्य के भी अनेक भाग हैं। उपन्यास, कहानी, लेख (इसके भी अनेक भाग हैं), निबंध (निबंध भी कई तरह के होते है)। संस्मरण, रेखाचित्र, जीवनी, नाटक, रिपोर्ताज, एकांकी, पत्रलेखन, यात्रा संस्मरण, साक्षात्कार आदि।

पद्य के भी अनेक भाग हैं– कविता, गीत, हाइकु, छंद, दोहे, चौपाई, ग़ज़ल, नवगीत, जनक छंद, नई कविता आदि आदि। लघुकथा गद्य विधा की रचना है।

लघुकथा– लघुकथा क्या है? यह प्रश्न हर एक के मन में उठ सकता है? डॉ. मो. मोइनुद्दीन 'अतहर' के शब्दों में– ''लघुकथा न चुटकला है, न ही कहानी का छोटा रूप। यह तो लघुरूप में बुराइयों पर प्रहार करने वाला ऐसा हथियार है, जो सामाजिक बुराइयों को समूल नष्ट करने अथवा आघात करने में सक्षम है''।

लघुकथा की परिभाषाएँ– ''कथा विधा के सागर में एक बूँद ही तो है लघुकथा। आकार में लघु, क्षणिक घटना या परिस्थिति का वर्णन करती है। किंतु मारक क्षमता, तारक क्षमता, संवेदना, संप्रेषण में विस्तृत विधाओं के समक्ष खड़ी नजर आती है यह''।

डॉ. नीरज सुधांशु कथा विधा की सबसे छोटी इकाई को लघुकथा मानती हैं। उनका कथन पूर्णतया सत्य है। आकार में लघु होने के कारण ही इसका नाम लघुकथा पड़ा है।

बलराम अग्रवाल के शब्दों में ''मनुष्य के समसामयिक संवेदन तंतुओं को प्रभावित करने वाली 'वस्तु' विशेष की सूक्ष्म एवं समग्र कथात्मक प्रस्तुति का नाम लघुकथा है''।

डॉ. बालेंदु शेखर तिवारी की राय में, ''लघुकथा गद्य साहित्य की वह लघु आकारीय विधा है, जो अपने कथ्य एवं कथोपकथन द्वारा किसी क्षण, घटना, परिस्थिति अथवा विचार को प्रभावपूर्ण ढंग से पाठक के सम्मुख प्रस्तुत करती है''।

सुरेंद्र गुप्त के अनुसार ''लघुकथा का अंत मारक होना चाहिए। रचना की भाषा सहज व सरल होने के साथ रचना में सौंदर्य के अनुसार आंचलिक शब्दों का प्रयोग होना चाहिए''।

राजेश शर्मा प्रियदर्शी के शब्दों में ''लघुकथा भोगा हुआ यथार्थ या आपबीती है''।

महावीर प्रसाद जैन के शब्दों में ''लघुकथा कम से कम शब्दों में असरदार ढंग से किसी भी संवेदना की प्रस्तुति है''।

डॉ. सतीश दुबे के शब्दों में ''लघुकथा संक्षेप में कही गई सहज, स्वाभाविक अभिव्यक्ति है, जो पाठकों को मानवीय संवेदना से जोड़ती है''।

सुरेश जांगिड़ उदय के शब्दों में ''कम समय में अपने विचारों को अधिक और कम से कम शब्दों में लिखने की कला को ही लघुकथा कहते हैं''।

लघुकथा पर शोध कर चुकीं डॉ. शकुंतला किरण के शब्दों में ''लघुकथा एक प्रकार से कम आय वाले एक अर्थशास्त्री का अपना निजी बजट है, जिसे वह प्रबुद्धता के साथ बहुत सोच समझकर बनाता है कि प्रत्येक पैसे का सार्थक उपयोग हो सके।

व्यंग्य का पुट– डॉ. मो. मोइनुद्दीन अतहर का मानना है कि जिस तरह सब्जी में नमक जरूरी है, उसी तरह लघुकथा में व्यंग का पुट हो तो बेहतर है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि बिना व्यंग्य के लघुकथा नहीं लिखी जा सकती।

समाज में अनेक विसंगतियाँ हैं, विद्रूपताएँ है। समाज सिर्फ धर्म, जाति, क्षेत्रीयता में ही नहीं बँटा है। अमीरी–गरीबी में भी बँटा है। आदमी–औरत में भी बँटा है। अनेक रूढ़ियाँ, परंपराएँ, खोखली मान्यताएँ हैं। व्यवस्था की खामियाँ हैं। भ्रष्टाचार–अनाचार है। आर्थिक विषमताएँ हैं, बिखरते परिवार–टूटते दांपत्य हैं। बेरोजगारी, आर्थिक मंदी, अलगाववाद, आतंकवाद... अंत नहीं समस्याओं का, नशे का बढ़ता प्रचलन, राह भटकते युवा–युवती, आत्महत्या करते किसान, चंद लोगों के हाथों में सिमटती दौलत– ये सब जन्म दे रही हैं लघुकथाओं को और ये एक प्रकार का व्यंग्य ही तो है।

जिंदगी के करीब कुछ और परिभाषाएँ लघु कथा की ओर भी अनेक विद्वानों/साहित्यकारों ने लघुकथा को परिभाषित किया है। डॉ. माहेश्वर के शब्दों में ''कम से कम शब्दों में काफी पुरअसर ढंग से जिंदगी का एक तीखा सच कथा में ढाल दिया जाए, तो वह लघुकथा कहलाएगी''।

इसका सीधा अर्थ है– हमारे आसपास देश दुनिया में जो घटित हो रहा है, वो ही लघुकथा को जन्म देता है, तभी तो सतीश राठी कहते हैं– ये जिंदगी की तमाम विसंगतियों पर वजनदार चोट करने में पूर्ण सक्षम होती हैं। इसीलिए रमेश बतरा ने कहा था– लघुकथा जीवन की आलोचना है।

यह तभी संभव है, जब उसमें मारक सच हो। मतलब जो दिल पर सीधे–सीधे चोट करे। प्रसिद्ध लघु कथाकार बलराम अग्रवाल कहते हैं– मारक तत्व लघुकथा का मूल तत्व है। यदि लघुकथा पाठक में तिलमिलाहट उत्पन्न नहीं करती, पठनोपरांत उसमें चिंतन, जिज्ञासा उत्पन्न नहीं करती, तो यह उसकी कमजोरी है।

अलग–अलग लोगों ने लघुकथा को अलग–अलग तरह से परिभाषित किया है, लेकिन कमल किशोर गोयनका का मानना है कि अभी तक इसकी कोई सर्वमान्य परिभाषा नहीं दी जा सकी है। इनका यह कथन सच है, तभी तो लघुकथा को परिभाषित करने का सिलसिला थमा नहीं है। लगातार जारी है। मेरी नजर में लघुकथा– अनेक विद्वानों, सभी साहित्यकारों, लघुकथाकारों ने अनेक तरह से लघुकथा को परिभाषित किया है। अभी तक जितनी भी परिभाषाएँ आई हैं, जो यहाँ उद्धृत हैं या नहीं हैं, सभी का मूल है कि कथाविधा की सबसे छोटी इकाई लघुकथा

है, जिसमें कथा के सभी तथ्य समाहित होते हैं। और उन सभी परिभाषाओं को आत्मसात करने के बाद मेरी राय में लघुकथा की परिभाषा निम्न है–

''कम से कम शब्दों में कथात्मक शैली में तीखे सच को उभारना लघुकथा है''।

जैसा नाम से ही स्पष्ट है, लघुरचना को लघुकथा कहा जाता है। इसका मतलब यह हर्गिज नहीं है कि हर लघुरचना यानी चुटकुला आदि भी लघुकथा हो गई।

लघुकथा के तत्व– कोई भी लघुरचना, तभी लघुकथा मानी जाएगी, जब उसमें लघुकथा के तत्व मौजूद हों। एक लघुकथा में डॉ. मो. मोइनुद्दीन अतहर के अनुसार निम्न तत्वों का समावेश जरूरी है।

संक्षिप्तता– लघुकथा, जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है, लघुकथा का संक्षिप्त होना जरूरी है। इसकी संक्षिप्तता की वजह से ही इसकी लोकप्रियता बढ़ रही है।

संवेदनशीलता– लेखक स्वयं देखी हुई किसी घटना या किसी से सुनी किसी घटना को लघुकथा का रूप देता है। लेखक जितना ज्यादा संवेदनशील होगा, उतनी ही ज्यादा उसकी लघुकथा।

संप्रेषणीयता– यह लघुकथा की जान है। लेखक की कलम से निकली बात पाठक के दिल को छूनी चाहिए।

स्वाभाविकता– लघुकथा बनावटी नहीं लगनी चाहिए। स्वाभाविक लगनी चाहिए। लघुकथा स्वाभाविक लगेगी, तभी पाठक उससे अपने को जुड़ा महसूस करेगा।

गंभीरता– आमजन की चेतना के जितना समीप लेखक का चिंतन होगा। लेखक उतनी ही ज्यादा गंभीर लघुकथा लिखेगा।

मौलिकता– मौलिक रचना ही श्रेष्ठ रचना होती है और पाठक को रोचकता प्रदान करती है। इसलिए लेखक को मौलिक लेखन ही करना चाहिए।

बोधगम्यता एवं सरलता– प्रथम वाक्य से ही पाठक को बाँधने में सक्षम होनी चाहिए। पाठक लघुकथा पढ़ते समय उसमें खो जाए। घटना प्रवाह पाठक की रोचकता बढ़ाता है। लघुकथा की भाषा सहज एवं सरल होनी चाहिए, जिसको पाठक आसानी से समझ सके।

व्यंग्यात्मकता– सब्जी में जैसे नमक होता है, ऐसे ही लघुकथा में व्यंग्य का पुट हो, तो उसकी मारक क्षमता बढ़ जाती है।

इन सब तत्वों के अलावा लघुकथा का शीर्षक महत्वपूर्ण है। लघुकथा का शीर्षक ऐसा होना चाहिए जो संपूर्ण लघुकथा को व्यक्त करने में पूर्णतया सक्षम हो।

परिभाषा और रचना– परिभाषा का रचना पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। कोई भी लेखक परिभाषा को ध्यान में रखकर साहित्य की रचना नहीं करता। शरद जोशी और हरिशंकर परसाई परिभाषाओं के चक्कर में न पड़ने वाले लघुकथाकार हैं।

समसामयिक लघुकथाकार लक्षण–मुक्त होकर लघुकथा को नए संवेदन और शिल्प से समृद्ध कर रहे हैं।

यथार्थ की कल्पना– लघुकथा का जन्म कपोलकल्पित घटना से नहीं होता। किसी न किसी घटना से लघुकथा का सूत्र मिलता है। विचार लघुकथा के दिमाग में आता है। यह विचार बीज का काम करता है। बीज अपने आप जमीन में उगता नहीं है। उसे रोपना पड़ता है। खाद–पानी देने के साथ उसकी देखभाल करनी पड़ती है। तब बीज अंकुरित होकर जमीन से बाहर आकर पेड़ बनता है। इसी तरह लघुकथा के बीज को लघुकथा के पेड़ के रूप में विकसित करने के लिए लेखक को क्या करना पड़ता है? इसका उत्तर पुरुषोत्तम दुबे के इस कथन से मिल जाता है– "कोई भी लघुकथा लिखने से पूर्व चिंतन के घोड़े अवश्य दौड़ाने पड़ते हैं।"

इस कथन का अर्थ साफ है। लघुकथा का जो सूत्र लेखक को किसी घटना से मिलता है। उस पर लेखक को मनन, चिंतन और कल्पना करनी पड़ती है। तब कहीं वह घटना लघुकथा बनती है।

इसका अर्थ स्पष्ट है कि लघुकथा न तो पूर्ण रूप से सत्य घटना है ना ही कोरी कल्पना, बल्कि दोनों का मिश्रण है। यह लेखक की अपनी योग्यता, अनुभव पर निर्भर करता है कि वह सत्यता और कल्पना का तालमेल बैठाकर और लघुकथा के मूल तत्वों को ध्यान में रखते हुए कैसे उस घटना को जीवंत कर पाता है, संवेदनशील बना पाता है। इसको कमल चोपड़ा ने इन शब्दों में व्यक्त किया है– "रचनाकार यथार्थ को अपनी चेतना, प्रतिभा, सोच, विवेक और कल्पनाशीलता के प्रयोग से रचना को मूर्त रूप देता है।"

लघुकथा कितनी लघु– जिस तरह लघुकथा की कोई सर्वमान्य परिभाषा अभी तक स्थापित नहीं हो पाई है, उसी तरह लघुकथा कितनी लघु हो, इस पर भी कोई सर्वमान्य विचार नहीं बन पाया है। कोई दो पेज की कथा को लघुकथा मानता है, तो किसी का तर्क है तीन सौ शब्दों या पाँच सौ शब्दों तक की रचना को लघुकथा माना जाना चाहिए।

लेकिन लघुकथाएँ तो एक दो लाइनों में भी लिखी जा रही हैं। कहने का मतलब है, अभी तक लघुकथा की कोई शब्द सीमा तय नहीं हो पाई है।

लघुकथा का वर्गीकरण– डॉ. रामकुमार घोटड़ के शब्दों में साहित्य अनादि है। हर युग में लघुकथा प्रचलित रही है। अंतर उसकी संरचना, स्वरूप, भाषा–शैली में पाया जाता है। लघुकथाएँ कल भी थीं, आज भी हैं और कल भी रहेंगी। रचनाधर्मिता के अनुसार उन्होंने हिंदी लघुकथा को चार भागों में बाँटा है।

1– **पूर्ववर्ती लघुकथाएँ**– लघुकथा शब्द की उत्पत्ति से पूर्व की सभी लघु रचनाओं को उन्होंने इस श्रेणी में रखा है। सन् 1940 तक लिखी गई सभी रचनाओं को उन्होंने पूर्ववर्ती लघुकथाएँ माना है।

2– **लघुकथाएँ**– सन् 1942 में लघुकथा शब्द का नामकरण हुआ। इसके बाद लिखी छोटी रचनाओं को लघुकथा कहा जाने लगा। डॉ. रामकुमार घोटड़ ने 1941 से 1970 के बीच लिखी गई लघुकथाओं को इस श्रेणी में रखा है।

3– **आधुनिक लघुकथाएँ**– पुरातन से हटकर नई अनुभूति–आधुनिक का मतलब नई सोच, नए विचार, विसंगतियों पर प्रहार–रुढ़िवादिता पर चोट–खोखली मान्यताओं का विरोध के साथ–साथ समस्याओं को उठाना है। उन सब बातों को ध्यान में रखकर डॉ. राम कुमार घोटड़ ने 1971 से 1989 के बीच लिखी गई लघुकथाओं को इस श्रेणी में रखा है।

4– **समकालीन लघुकथाएँ**– समकालीन का मतलब समसामयिक परिस्थितियों से है। यानी समय के सापेक्ष रोजमर्रा की जिंदगी से जुड़े क्षणों को प्रस्तुत करना है। असामाजिक, असाधारण व काल्पनिक सोच इन लघुकथाओं में नहीं होती। ये लघुकथाएँ जीवन मूल्यों से रूबरू कराती हैं। 1990 के बाद से लिखी जा रही लघुकथाओं को डॉ. रामकुमार घोटड़ ने इस श्रेणी में रखा है।

पत्र–पत्रिकाओं का योगदान– लघुकथा को हिंदी साहित्य जगत में उचित स्थान दिलाने, स्थापित करने में 'हंस' और 'सारिका' की भूमिका को भुलाया नहीं जा सकता। इन दोनों पत्रिकाओं ने अपने हर अंक में लघुकथा को स्थान दिया। 'हंस' में सामाजिक विद्रूपता से जुड़ी रचनाएँ रहती हैं। 'सारिका' के हर अंक में पैनी–धारदार–समाज से जुड़ी लघुकथाएँ रहती थीं। विदेशी लघुकथाओं को भी उचित स्थान दिया जाता था।

इसका अर्थ यह नहीं है कि इन दोनों पत्रिकाओं ने ही लघुकथा के लिए काम किया है। लघुकथा के उत्थान में लघु आघात, मिनीयुग के साथ अन्य छोटी पत्रिकाओं की भूमिका को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। 'कजरारी', 'शुभतारिका', 'जर्जर कश्ती', 'मित्र संगम पत्रिका', 'कथाबिंब', 'लघुकथा अभिव्यक्ति', 'साहित्य अभियान', 'नई दिशा', 'शब्द सामयिकी', 'कथालोक', 'वीणा', 'प्राची', 'नवनिकष', 'मोमदीप', 'प्राची प्रतिभा', 'दीवान मेरा', 'प्रेरणा अंशु', 'संबोधन', 'दीपशिखा', 'नालंदा दर्पण', 'सानुबंध', 'साहित्यांचल', 'सुमन सागर', 'मसिकागद', 'कर्मनिष्ठा', 'कथासागर', 'अवध अर्चना', 'क्षितिज', 'युवारश्मि', 'युवक', 'गरिमा भारती', 'दस्तावेज', 'द्वीप लहरी', 'सादर इंडिया', 'पुष्पगंधा' आदि अनेक पत्रिकाएँ हैं, जिहोंने लघुकथाओं को उचित स्थान दिया है। इसके अलावा 'सामाजिक आक्रोश', 'शब्दमंच', 'तपती जमीन', 'तुमुल तूफानी', 'संग्राम बटोही', 'व्हॉइस ऑफ इंदौर', 'सिटी रिपोर्टर', 'स्पूतनिक', 'नया युग पुरुष', 'जेलस टाइम्स', 'दक्षिण समाचार', 'नीरज ज्योति', 'केरल ज्योति', 'शाश्वत सृजन', 'फतेहपुर दूत', 'प्रेमवाणी', 'भानुगूँज' आदि साप्ताहिक/पाक्षिक पत्रों की लंबी श्रृंखला है। इनमें लघुकथाओं को उचित स्थान दिया जाता है।

सभी दैनिक समाचार पत्रों के रविवारीय संस्करणों में, वे चाहे नगर स्तर के हों, प्रांत या राज्यस्तरीय हों या राष्ट्रीय–अंतरराष्ट्रीय स्तर के हों, उनमें भी लघुकथाओं को प्रमुखता से छापा जाता है।

पत्र/पत्रिकाओं द्वारा समय–समय पर निकाले गए लघुकथा विशेषाकों ने भी लघुकथा के प्रचार–प्रसार और लोकप्रिय बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

अनियमितकालीन विशेषांक भी निकलते रहते हैं।

'दैनिक हिंदी मिलाप' द्वारा सर्वप्रथम लघुकथा विशेषांक निकाले गए। 'सारिका' द्वारा निकाले गए लघुकथा विशेषांक काफी चर्चित रहे। 'मिनीयुग', 'दीपशिखा', 'साहित्य निर्झर', 'नव भारत', 'डिक्टेटर', 'लघु आघात', 'कथाबिंब', 'नालंदा दर्पण', 'सानुबंध', 'क्षितिज', 'अवध–पुष्पांजलि', 'अवध अर्चना', 'अक्षर खबर', 'इंद्रप्रस्थ भारती', 'अनामा', 'युवारश्मि', 'गरिमा भारती', 'संबोधन', 'हंस', 'दस्तावेज', 'द्वीप लहरी', 'हरिगंधा', 'मधुमती', 'सरस्वती सुमन', 'सादर इंडिया', 'साहित्य जनमंच', 'अविराम साहित्य की', 'पुष्पगंधा', 'साहित्य अमृत', 'जर्जर कश्ती', 'शुभ तारिका', शब्द सामयिकी आदि पत्र/पत्रिकाओं द्वारा समय–समय पर लघुकथा विशेषांक निकाले जा चुके हैं।

सरकारी/अर्द्धसरकारी पत्र–पत्रिकाओं के लघुकथा के विकास में किए गए योगदान को भुलाया नहीं जा सकता। 'पंजाब सौरभ', 'देशकाल संपदा', 'गिरीराज', 'हिमप्रस्थ', 'मधुमती', 'हरिगंधा', 'उत्तर प्रदेश', 'इस्पात भाषा भारती', 'समाज कल्याण', 'आजकल', 'नया ज्ञानोदय', 'अक्षरा', 'साक्षात्कार', 'रेल राजभाषा', 'भारतीय रेल योजना', 'शीराजा', 'इंद्रप्रस्थ भारती' आदि अनेक सरकारी/अर्द्धसरकारी पत्रिकाओ में लघुकथा को प्रमुखता से छापा जाता है।

लघुकथा संकलन– लघुकथा के प्रसार में तथा उसे लोकप्रिय बनाने में लघुकथा संकलनों ने भी अहम भूमिका निभाई है। संकलनों का फायदा यह होता है कि देश/विदेश के कई लेखकों की रचनाएँ एक जगह पढ़ने को मिल जाती हैं। सन् 1956 में उपेंद्रनाथ अश्क, कमलेश्वर, मार्कंडेय के संपादन मे 'संकेत'– लघुकथा संकलन निकला था।

डी. आर. धवन/राजेंद्र धवन के संपादन में– 'एक कदम' और, अजीम अंजुम के संपादन में– 'लहर और लहर', सुरेश जांगिड़ उदय के संपादन में– 'दोहरे चेहरे', काली चरण प्रेमी/पुष्पा रघु के संपादन में– 'अंधा मोड़', डॉ. जितेंद्र 'जीत'/डॉ. नीरज सुधांशु के संपादन में– 'बूँद–बूँद' सागर, सुमति कुमार जैन के संपादन में– 'लघुकथा संसार', त्रिलोक सिंह ठकेरिया के संपादन में– 'समसामयिक हिंदी लघुकथाएँ' आदि. .. अभी तक विभिन्न संपादकों के संपादन में 200 से अधिक लघुकथा संकलन निकल चुके हैं।

लघुकथा संग्रह– लघुकथा संकलन में कई लेखकों की रचनाएँ होती हैं। जबकि लघुकथा संग्रह में एक ही लेखक की रचनाएँ होती हैं। सर्वप्रथम लघुकथा संग्रह 1946 में नारायण लालू परमार का 'किसान का बेटा' निकला था। प्रतिवर्ष अनेक प्रकाशकों द्वारा अनेक लेखकों के संग्रह प्रकाशित किए जा रहे है। संग्रह में एक ही लेखक की अनेक रचनाएँ पढ़ने को मिल जाती हैं।

लघुकथा प्रतियोगिता– लघुकथा को प्रोत्साहित करने के लिए लघुकथा प्रतियोगिता भी आयोजित होती रहती है। सामाजिक आक्रोश पाक्षिक द्वारा प्रतिवर्ष

इसका आयोजन होता है। जैमिनी अकादमी द्वारा भी ऐसा ही किया जाता है। 'साहित्य समर्था' पत्रिका भी प्रतियोगिता आयोजित करती है। 'प्रेरणा अंशु' पत्रिका द्वारा भी प्रतियोगिता रखी गई है। शब्द निष्ठा समूह द्वारा भी इस वर्ष इस प्रतियोगिता का आयोजन किया गया था। इस तरह के आयोजनों द्वारा लघुकथा को बढ़ावा दिया जा रहा है।

विशेष योगदान– लघुकथा साहित्य की श्रीवृद्धि के लिए मो. मुइनुद्दीन 'अतहर', कमल चोपड़ा, कुँवर प्रेमिल व मधुदीप के योगदान को भुलाया नहीं जा सकता। मो. मुइनुद्दीन 'अतहर' द्वारा जबलपुर से लघुकथा 'अभिव्यक्ति' त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन वर्ष 2004 में शुरु किया गया। इस पत्रिका में लघुकथाकारों की केवल लघुकथाएँ ही छापी जाती थीं। फरवरी 2016 में इस पत्रिका का अंतिम अंक निकला क्योंकि अप्रैल 2016 में 'अतहर' जी इस दुनिया से प्रस्थान कर गए।

जबलपुर से ही कुँवर प्रेमिल द्वारा 'प्रतिनिधि' लघुकथाएँ वार्षिकी का प्रकाशन किया जा रहा है। प्रतिवर्ष निकलने वाले अंक में केवल लघुकथाएँ ही प्रकाशित की जाती हैं। उसके अभी तक 10 अंक निकल चुके हैं। कुँवर प्रेमिल के संपादन में ही 'ककुंभ' अनियतकालीन लघुकथा संकलन का प्रकाशन भी किया जा रहा है। उसके अभी तक चार अंक निकल चुके हैं।

कमल चोपड़ा के संपादन में दिल्ली से प्रतिवर्ष 'संरचना' वार्षिकी का प्रकाशन किया जा रहा है। वृहद आकार में निकलने वाली इस पत्रिका में महत्वपूर्ण आलेखों के साथ–साथ देश–विदेश के लघुकथाकारों की उत्कृष्ट लघुकथाएँ प्रकाशित होती हैं। इसके अभी तक नौ खंडों का प्रकाशन हो चुका है।

लघुकथा के प्रचार–प्रसार और उसे लोकप्रिय बनाने तथा जन–जन तक पहुँचाने में मधुदीप द्वारा किए जा रहे कार्य की चर्चा के बिना यह लेख अधूरा है। मधुदीप द्वारा दिशा प्रकाशन से लघुकथाओं की विशिष्ट शृंखला–पड़ाव और पड़ताल का प्रकाशन किया जा रहा है। इस शृंखला में लघुकथाकारों की लघुकथाओं के साथ–साथ उनकी विभिन्न विद्वानों द्वारा पड़ताल, समालोचना और लघुकथा पर महत्वपूर्ण आलेख भी होते हैं। अभी तक पड़ाव और पड़ताल के 27 खंड प्रकाशित हो चुके हैं। खंड 28 व 29 की घोषणा भी की जा चुकी है।

लघुकथा इंटरनेट पर– संचार क्रांति ने विश्व में युगांतरकारी परिवर्तन ला दिया है। पहले तार पहुँचने में कई घंटे तो पत्र में कई दिन लगते थे। लेकिन इंटरनेट ने दुनिया को समेटकर रख दिया है। एक क्षण में कोई भी बात दुनिया के एक कोने से दूसरे कोने तक पहुँचाई जा सकती है। प्रिंट मीडिया में कोई भी रचना/आलेख छपने में समय लगता है। वो भी तब जब संपादक द्वारा स्वीकृत हो जाए। लेकिन इंटरनेट पर ऐसा नहीं है। लघुकथा को इंटरनेट से जोड़ने का श्रेय सुकेश साहनी एवं डॉ. रामेश्वर कंबोज को जाता है। उनके द्वारा संचालित laghukatha89.com में

लघुकथाएँ प्रकाशित की जाती हैं। इसके अलावा फेसबुक पर आधुनिक लघुकथाएँ, लघुकथा साहित्य, लघुकथा सृजन, लघुकथा के परिंदे, सदाबहार लघुकथाएँ, लघुकथा वाटिका आदि 20 से ज्यादा ग्रुप हैं। इनमें से कुछ ग्रुपों में लघुकथाएँ पोस्ट बीस हजार से ऊपर भी हैं। लघुकथा के अलावा अन्य साहित्यिक ग्रुपों में भी लघुकथाएँ पोस्ट की जा सकती हैं।

इंटरनेट पर मौजूद ग्रुपों में खूब लघुकथाएँ लिखी जा रही हैं। नए लेखक ही नहीं, बलराम अग्रवाल, सुभाष नीरज जैसे वरिष्ठ लघुकथाकार भी इन ग्रुपों में लघुकथाएँ पोस्ट कर रहे हैं। ब्लॉग, ट्विटर पर भी लघुकथाएँ लिखी जा रही हैं। अनेक वेब पत्रिकाएँ भी हैं, जिन पर लघुकथाएँ आती रहती हैं। व्हाट्सएप पर शब्दनिष्ठा समूह, मंजिल ग्रुप साहित्य मंच आदि में भी लघुकथाएँ आती रहती हैं।

इंटरनेट पर लघुकथाएँ लिखने का फायदा ये हो रहा है कि लघुकथा पोस्ट होते ही प्रतिक्रियाएँ मिलना शुरु हो जाती हैं। नेट के जरिए लघुकथाएँ आमजन तक भी पहुँच रही हैं। आलोचना/प्रतिक्रियाएँ लेखक को प्रोत्साहित करने के साथ कमियों की तरफ इशारा भी करती हैं। लेकिन नेट पर लघुकथा के नाम पर चाहे जो परोसा जा रहा है। यह लघुकथा का अहित भी कर रहा है। पत्र/पत्रिका में रचना छपने से पहले संपादकों के आगे से गुजरती है। आवश्यक संशोधनों के बाद पाठक के पास आती है। लेकिन नेट पर ऐसा नहीं है। इससे लघुकथा को नुकसान भी हो रहा है।

भविष्य की ओर अग्रसर– 'जनता की अदालत ने फैसला किया है कि लघुकथा एक जनप्रिय साहित्यिक विधा है।' डॉ. कमल किशोर गोयनका के ये शब्द लधुकथा की वर्तमान स्थिति बताने में पूर्णतया समर्थ हैं। आजकल पाठक कोई भी पत्रिका हाथ में आते ही सबसे पहले लघुकथा पढ़ना चाहता है, क्यों?

आज का युग भागम भाग का है। रोजी–रोटी की तलाश और जीवनयापन करने के लिए इतनी भागदौड़ है कि आदमी के पास समय का अभाव है। दूसरे टी वी एवं इंटरनेट के बढ़ते प्रचलन से भी पठन–पाठन के प्रति लोगों की रुचि कम ही है। यह समय अभाव लघुकथा के लिए वरदान सिद्ध हो रहा है। आज आदमी समय के अभाव की वजह से लंबी कहानी/उपन्यास नहीं पढ़ना चाहता। वह छोटी सारगर्भित रचना पढ़ना चाहता है। उसकी इस इच्छा की पूर्ति लघुकथा कर रही है।

आने वाले समय में मानव जीवन और कठिन/संघर्षपूर्ण होने के साथ मानव के पास समय का अभाव होता जाएगा और लघुकथा की लोकप्रियता बढ़ती जाएगी।

लघुकथा अतीत से वर्तमान तक आ पहुँची है। वर्तमान अच्छा है, तो भविष्य भी अच्छा ही होगा क्योंकि भविष्य का निर्माण वर्तमान की नींव पर ही होता है।

संदर्भ ग्रंथ

1. एक कदम और (लघुकथा संकलन) रंभा ज्योति प्रकाशन, चंडीगढ़–1989 संपादक–डी. आर. धवन/राजेंद्र धवन।

2. लहर और लहर (लघुकथा संकलन) बुकबड्र्स, जयपुर, प्रथम संस्करण संपादक अजीव अंजूम।
3. फूल और कांटे (लघुकथा संग्रह) अयन प्रकाशन, दिल्ली–2012 मो. मोइनुद्दीन 'अतहर'।
4. संरचना (वार्षिक) सभी 9 खंडों से, संपादक कमल चोपड़ा।
5. ककुंभ/अनियतकालीन (लघुकथा संकलन) सभी चार खंडों से स.–कुवँर प्रेमिल।
6. समसामयिक हिंदी लघुकथाएँ/(लघुकथा संकलन), राजस्थानी ग्रंथाकार, जोधपुर संपादक–त्रिलोक सिंह ठकुरेला।
7. बूँद–बूँद सागर (लघुकथा संकलन) वनिका पब्लिकेशन, संपादन–डॉ. जितेंद्र जीतू/डा. नीरज सुधांशु।
8. अनसुलझा प्रश्न (लघुकथा संग्रह) अयन प्रकाशन, नई दिल्ली 2016– किशन लाल शर्मा
9. मुखौटों के पार (लघुकथा संग्रह) अयन प्रकाशन, नई दिल्ली 2013– डॉ. मो. मोइनुद्दीन 'अतहर'।
10. विश्व हिंदी लघु कथाकार कोष–दिशा प्रकाशन दिल्ली। संपादक–मधुदीप/बलराम अग्रवाल।

❑❑❑

अनुवाद और सांस्कृतिक संचरण : कुछ विचार

प्रमोद कोवप्रत

प्रकाशित पुस्तकें–'भारतीय जीवन मूल्य और ज्ञानपीठ पुरस्कार हिंदी कवि','समकालीन हिंदी कविता का तापमान', 'शताब्दी कवि : धरती और धड़कन','हिंदी गद्य विमर्श के नए क्षितिज','जन भाषा हिंदी'। दस से अधिक पुस्तकों का संपादन। उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान का हिंदी भाषाभूषण सम्मान सहित कई पुरस्कारों से सम्मानित। संप्रति–प्रोफेसर, हिंदी विभाग, कालिकट विश्वविद्यालय, मलाप्पुरम, केरल।

अनुवाद दो भाषाओं के बीच का आदान–प्रदान मात्र नहीं है, वह वास्तव में दो संस्कृतियों का आदान–प्रदान होता है। इसलिए अनुवाद सांस्कृतिक कर्म माना जाता है। सभ्यता के विकास में अनुवाद की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही है। वैश्वीकरण के युग में सांस्कृतिक संक्रमण चल रहा है, तो अनुवादक एक प्रकार से सांस्कृतिक राजदूत बन जाता है। रूसी चिंतक और अनुवादक मैलिनोव्स्की ने ठीक ही कहा है– "अनुवाद सांस्कृतिक संदर्भों का एकीकरण है।"1

जब भूमंडलीकरण के युग में देश और भूगोल की सीमाएँ मिट रही हैं, तब विभिन्न संस्कृतियाँ भी निकट आ रही हैं। मनुष्य का समन्वय और समरसता अनुवाद से ही संभव है। सृजनात्मक साहित्य के अनुवाद में विशेषकर कृति (text) का नहीं संस्कृति (culture) का अनुवाद किया जाता है। हर पाठ (text) के साथ परिवेश (context) भी जुड़ा रहता है। वह कॉन्टेक्स्ट कभी कभार अप्रत्यक्ष रहता है, पाठ में। उसका अनुवाद भी कभी संभव नहीं हो पाता। कॉन्टेक्स्ट में संस्कृति सूरज की किरणों की तरह छाई हुई है।

आजकल अनुवाद की माँग बढ़ रही है। मनुष्य की सुविधाओं के विकास में अनुवाद अहम भूमिका निभा रहा है। अनुवाद के कई सॉफ्टवेयर बन चुके हैं। आज गूगल ट्रांस्लेट (google translate) को एक बहुत बड़ा अनुवाद उपकरण (tool) माना जाता है। कृत्रिम बुद्धि (artificial intelligence) का आज जमाना आ गया है। Al में भाषा और अनुवाद का महत्व बढ़ जाएगा। Chat GPT में आपके चैटिंग के अनुकूल जवाब मिलना है। उसी तरह की सामग्री आपको चैट करनी है तो हर भाषा की सामग्री को इंटरनेट पर पहले से उपलब्ध कराना होता है। दूसरा रास्ता अनुवाद का है। किसी

भी भारतीय भाषा में अगर चैट करेंगे तो उसका जवाब तुरंत किसी अनुवाद सॉफ्टवेयर के माध्यम से भी उपलब्ध कराया जा सकता है। मतलब है कि टेक्नोलॉजी और बाजारीकरण के युग में अनुवाद तेज रफ्तार में हो रहा है। जिस तरह भाषा के बिना भूमंडलीकरण की कल्पना संभव नहीं है, उसी तरह अनुवाद के बिना भूमंडलीकरण की सफल यात्रा की कल्पना नहीं की जा सकती है।

संस्कृति नहीं है तो अपसंस्कृति फैल जाती है। अपसंस्कृति से बचाना भी अनुवाद का दायित्व बन जाता है। सृजनात्मक साहित्य का अनुवाद पुनःसृजन (transcreation) है। खाली उसे भाषा का अंतरण नहीं कह सकते। भाषा का अंतरण दूसरे शब्दों में भावों का अंतरण है। इसलिए भाषांतर में भावांतरण महत्वपूर्ण बन जाता है। भाषा एक उपकरण (device) बन जाती है। चाहे वह मोबाइल फोन हो या कंप्यूटर, हम उस उपकरण से जैसे डाटा ट्रांस्फर करते हैं, उसी तरह स्रोत भाषा से लक्ष्य भाषा में पाठ के अर्थ को अंतरित करते हैं।

थियोडर सेवरी के अनुसार "वैज्ञानिक अनुवाद फोटोग्राफी की कला के समान है।"[2] यह एक अर्थ में सही है। इसमें वैज्ञानिक दृष्टि भी प्रमुख है। समान मेगा पिक्सल के कैमरा देने पर भी दस लोगों द्वारा खींची गई फोटो उसकी पूर्णता (perfection) में भिन्न नज़र आती हैं। कभी जीवंत लगेगी कभी फीकी या धुंधली। संस्कृति का अनुवाद भी इसी तरह है। दूसरी बात एक सुंदर स्पष्ट फोटो को फोन द्वारा दूसरे को भेजते हैं। इसके लिए व्हाट्सएप या कोई सॉफ्टवेयर इस्तेमाल कर सकते हैं। मगर यह पाया गया है कि अत्यंत साफ और स्पष्ट फोटो भी कई बार अंतरित करने पर धुंधला या फीका पड़ जाता है। उसकी स्पष्टता (clarity) थोड़ी कम हो जाती है। सृजनात्मक साहित्य में सांस्कृतिक अनुवाद लगभग इसी तरह होता है।

सन् 1957 में जय रतन और पी. लाल ने 'गोदान' का अंग्रेजी अनुवाद 'The gift of the cow' नाम से किया। बाद में सन् 1968 में गोर्डोन सी. रोडरमेल ने इसका दूसरा अनुवाद भी किया। हमें देखना है कि गोदान की संस्कृति भारत की खास संस्कृति है, वह भी उत्तर भारत की। विश्वास करता हूँ कि एक विदेशी भाषा में उसकी आंतरिक सत्ता को संप्रेषित और पुनःसृजित करना बहुत मुश्किल है। टेक्स्ट का अनुवाद अवश्य हो सकता है मगर कॉन्टेक्स्ट और परिवेश को अनूदित करना और लक्ष्य भाषा के पाठकों तक समतुल्य प्रभाव के साथ पहुँचाना वास्तव में चुनौतीपूर्ण काम है। "अनुवाद न केवल एक कठिन कार्य है अपितु एक बड़े दायित्व का काम भी है। अच्छा अनुवादक न केवल एक भाषा के भावों का दूसरी भाषा में अनुवाद करता है बल्कि एक सिद्धहस्त अनुवादक मूल भाषा को और अधिक प्रांजल और सुंदर बना सकता है।"[3]

प्रेमचंद के मलयालम अनुवादक ई.के.दिवाकरन पोट्टी ने कहा है – ''अनुवादक को अपनी इच्छा के अनुसार आगे बढ़ने की आजादी नहीं होती है। जगह और पात्रों के नाम बदल डालें तो वह प्रेमचंद की कृति नहीं बनेगी.....। उपन्यास में मैंने पहले

'गबन' को लिया। मलयालम में उसका शीर्षक 'वंचना' रखा था। 'गबन' के लिए मलयालम का 'वंचना' शब्द पूर्णतः ठीक नहीं लगा था, किंतु उससे बढ़िया शब्द ढूँढ़ न पाया।''[4]

मलयालम के एक मशहूर कथाकार हैं एन.प्रभाकरन। उनकी एक कहानी है 'दैवत्तिन्टे पूंबाट्टा'। इसका अनुवाद इस लेख के लेखक ने किया 'देवता की तितली' नाम से, जो 'समकालीन भारतीय साहित्य' पत्रिका में छपकर आया। छपने के बाद दुबारा इस अनुवाद पर सोचना पड़ा। एक ग्रामीण परिवेश के गरीब माँ–बच्चे की कहानी है यह। मगर उसके परिवेश में एक मंदिर है, एक लोक देवता हैं, विश्वास हैं, अनुष्ठान हैं। कहीं यह नहीं बताया गया है कि कौन–सा मंदिर है और कौन–सा देवता है। मगर उस परिवेश में पलने वाले को मूल रचना पढ़कर लगेगा कि यह केरल के कण्णूर जिले का एक मशहूर मंदिर है, जिसका नाम परशिनिक्कड़वु मंदिर है और देवता मुत्तप्पन हैं। मगर कोई भी अनुवादक इस परिवेश को अनूदित कर सकता है इसमें संदेह है।

दुनिया की संस्कृति में इतना वैविध्य है। भारत की क्लासिक कृतियों का अनुवाद विश्वभाषाओं में हुआ है। रामायण, महाभारत तथा अनेक पौराणिक एवं दार्शनिक ग्रंथों का अनुवाद विश्वभाषाओं में खूब मिलता है। उसी तरह कालिदास, टैगोर, प्रेमचंद, तकषी जैसे भारतीय साहित्यकार आज विश्व भर में मशहूर हो गए। शेक्सपियर, चार्ल्स डिकेंस, मैक्सिम गोर्की, विक्टर ह्यूगो, एंटन चेखव, मोपसंग, लियो टॉलस्टॉय, एमिली सोलो, हेमिङ्वे, कसान साकिस, थॉमस हार्डी, पौलो कोयलो जैसे अनेक साहित्यकार विश्वभर में अनुवाद के माध्यम से लोकप्रिय हो गए। इन लोगों ने विश्व साहित्यकार की ख्याति दरअसल अनुवाद के माध्यम से प्राप्त की है। इसीलिए हम विश्वबोध महसूस कर सकते हैं। केरल के विशेष परिवेश में लिखी रचना अरुंधती रॉय की कृति 'गॉड ऑफ स्मॉल थिंग्स' या 'मामूली चीजों का देवता' विश्वभर में प्रसिद्ध हो गई और बुकर पुरस्कार से सम्मानित भी हुई। इसी तरह हिंदी की गीतांजलि श्री का उपन्यास 'रेत समाधि' या 'टुंब टोंब ऑफ सेंड' डैसी रोकवेल द्वारा अंग्रेजी में अनूदित हुआ तो बुकर पुरस्कार के माध्यम से यह रचना विश्वभर में फैल गई। भारतीय संस्कृति का भी संचरण विश्व की अन्य भाषाओं में फैलने का यह कारण भी बना। विश्व मानव की सृष्टि और विश्वबोध तभी संभव हो पाता है, जब दुनिया की भिन्न–भिन्न संस्कृति आचार–विचार एवं विश्वासों का आदान–प्रदान अनुवाद द्वारा संभव हो जाए। तभी अनुवाद की महत्ता बढ़ जाती है। अनुवाद ही विश्व की संस्कृति के मोतियों को पिरोनेवाला एक सशक्त धागा बन जाता है। भारतीय संस्कृति के संदर्भ में वैविध्य अवश्य देख सकते हैं। लेकिन उसकी अंतर्धारा उस रजत धागा या सिल्वर थ्रेड की तरह चलती रहती है, जो किसी भी करेंसी नोट को असली–नकली समझने के लिए हम देखते रहते हैं।

भाषाई विविधता को अभिशाप के रूप में नहीं, संस्कृति के वरदान के रूप में देखना चाहिए। कन्नड लेखक कुवेंपू की राय में, "बाँसुरी में जैसे अनेक छेद होते हैं वैसे ही भारती की अनेक जिह्वाएँ भी होती हैं। पीपी बजानेवाले बालक के लिए ये छेद मुसीबत पैदा कर देते हैं, लेकिन वेणुवादनपट या मुरली बजाने में कुशल संगीतज्ञों के लिए उन छेदों की अनेकता ही वह आवश्यक साधन बनती है जिसके सहारे स्वरमेल के माधुर्य को साधने में वह सफल हो जाता है।"[5] यह देश और दुनिया की विशेषता है। सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय सामान्य का राज्य मार्ग खोलना अनुवाद से ही संभव है। यह बहुस्वरता का मोर पंख होता है। उसके अलग रंग जब एक साथ आते हैं, तभी उसमें सौंदर्य आता है। इंद्रधनुष के सात रंगों को अलग कर दें तो वह आकर्षक नहीं होता। सात रंगों को साथ देखने से इंद्रधनुष हमारे दिल में खिल जाता है। वास्तव में अनुवाद का मतलब सांस्कृतिक संचरण द्वारा सांस्कृतिक समन्वय एवं विश्वबंधुत्व को प्रोत्साहन देना है। ज्ञान समाज में, वैश्वीकृत समाज में, सूचना क्रांति एवं प्रौद्योगिकी के समाज में अनुवाद एक सशक्त धुरी बन जाता है, जिसके चारों ओर दुनिया घूमती–चलती है।

हर भाषा की अपनी प्रकृति होती है, उसकी परंपरा एवं लोकपरंपरा होती है। जातीय अस्मिता और सांस्कृतिक अस्मिता भी महत्वपूर्ण है। सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को पहचानने से ही प्रभावधर्मी अनुवाद संभव हो पाता है। भारतीय संदर्भ में राम, सीता, कृष्ण, राधा, दशरथ, रावण, हनुमान, दुर्योधन, अर्जुन ऐसे पात्रों के द्वारा जब सांस्कृतिक प्रभाव उत्पन्न होता है, उसे विदेशी भाषा में पुनःसृजित करना कठिन होता है। भारत के पर्व एवं त्योहार भी इसी तरह होते हैं। ओणम, विषु, होली, दीपावली, दशहरा, पोंगल आदि ऐसे अनेक त्योहार हैं, उसके आयामों को पूर्ण रूप से सभी भारतीय भी नहीं समझ पाते हैं। उससे जुड़कर जितनी रस्में एवं अनुष्ठान होते हैं, वे भी महत्वपूर्ण हैं। चटनी, इडली, पुट्टु, मालपुआ, कचौड़ी, पायसम, वड़ा, अड़ा, अप्पम, इडियप्पम, पच्चड़ी, अवियल, पुलिशोरी, तोरन जैसे खाद्य पदार्थ सारे भारतीयों के लिए पूर्ण रूप से परिचित नहीं हैं, तो उसका भी भारतीय–विदेशी भाषाओं में अनुवाद करते समय समस्याएँ सहज ही उत्पन्न होती हैं।

कौरव–पांडव, रामबाण औषधि, लक्ष्मण–रेखा, संजीवनी बूटी, चक्रव्यूह, भीष्म प्रतिज्ञा, शिवधनुष आदि में गहरा सांस्कृतिक अर्थबोध व्यंजित है। उसके भावानुवाद या व्याख्यात्मक अनुवाद से असली प्रभाव छूट जाता है। कभी–कभी विशिष्ट अर्थ प्रयोग शब्दों का होता है, उसका शब्दानुवाद अर्थ का अनर्थ पैदा करता है। उदाहरण–1

blue blood – अभिजात्य, blue penciling– संशोधन प्रक्रिया, blue stacking – साहित्य प्रेमी, blue film – अश्लील सिनेमा आदि। मलयालम में चोर का भात, पानी का मटका, काल का पैर, आड़ का बकरी, पवन का तोला, वित्त का बीज, पट्टी का कुत्ता, शिक्षा का दंड, दंड का छड़ी आदि अर्थ बन जाते हैं। केरल की संस्कृति में कई

शब्द ऐसे हैं, इसके लिए हिंदी या अन्य भाषाओं में निकटतम समतुल्यता की सृष्टि करना कठिन हो जाता है। जैसे कायल, पुंचप्पाडम, कईतोड, आटुवेला, इडवापाती, चाकरा आदि। इसी प्रकार रिश्तों के संदर्भ में और प्रथाओं के संदर्भ में कई शब्द हैं – वेली, संबंधम्, मुरप्पेण्णु, मुरचेरुक्कन आदि। विश्वासों और अनुष्ठानों से जुड़कर भी सैकड़ों ऐसे शब्द मिलते हैं, जो हमेशा अनुवादनीयता के प्रश्न खड़े कर देते हैं। जैसे, चात्तन, माडन, तेय्यम, वेलिच्चप्पाडु, कावु, कोट्टम आदि। 'रामचरितमानस' के मलयालम अनुवादक वेण्णिकुलम गोपाल कुरुप ने कहा है– ''जिस प्रकार भक्त इष्टदेव की मूर्ति की उपासना करता है, उसी प्रकार मैंने भी तीन साल तक इस ग्रंथ की उपासना की। मैं धर्म सुभग एक पौराणिक ग्रंथ को छू रहा हूँ, इस विचार से मैंने अनुवाद शुरू किया आद्यंत वह विचार बना रहा। अगर काव्य का चयन अनुवाद में प्रतिफलित नहीं होगा तो वह अपराध बन जाएगा।''[6]

वास्तव में अनुवाद एक चुनौतीपूर्ण काम है। मेरी राय में अनुवाद एक समझौता (compromise) होता है। अर्थात भाषा, शैली एवं संस्कृति के साथ एक समझौता। हम यह नहीं कह सकते हैं कि मैंने पूर्ण रूप से अनुवाद किया। अनुवाद में एक अन्वेषक की तरह हमें आगे बढ़ना होगा। हर शब्द के लिए व्याख्या और पाद टिप्पणी देना युक्तित्संगत नहीं लगता है। अनुवाद के समय अगर रचना की आत्मा नष्ट होती है, तो एक प्रकार से जीवित कृति की लाश को दूसरी भाषा में पहुँचाने की तरह होगा। तब अनुवाद एक आईसीयू (Intensive care unit) बन जाता है, जहाँ जान को बचा भी सकते हैं या मार भी सकते हैं। जिसमें पहुँचने के बाद लाख कोशिश करने के बावजूद भी हम जान को बचा नहीं पाए और हम कृति को मोर्चरी की सामग्री बना देते हैं तो यह बड़ा दुर्भाग्य होगा, यह अनुवादक की पराजय है। डॉ. पी. कृष्णन ने सांस्कृतिक अनुवाद में कृति के अरोचक बनने के संबंध में बताया है–''पाद टिप्पणियाँ देकर आशय स्पष्ट करने की प्रथा है। किंतु मैंने 'कथा एक प्रांतर की' में ऐसा नहीं किया। क्योंकि ऐसा करने पर पाठकों को अरोचक लगेगा। घर से भी बड़ा चौपाल अशोभनीय ही रहेगा।''[7]

अनुभव यही साबित करता है कि सृजनात्मक अनुवाद एक चुनौतीपूर्ण विषय है। संस्कृति आसमान की तरह अनंत है, तो समुद्र की तरह गहरी भी है। लेकिन इन सबके बावजूद भी सैकड़ों विदेशी एवं भारतीय कृतियों का अनेक भाषाओं में अनुवाद चल रहा है। मलयालम में हुए कुछ महत्वपूर्ण अनुवाद देखिए। 'सेवासदन', 'निर्मला', 'रंगभूमि', 'प्रेमाश्रम', 'गोदान' आदि रचनाओं का अनुवाद लगभग उन्हीं नामों में मिलता है। वी.ड़ी कृष्णन नंबियार ने भीष्म साहनी के 'कड़ियाँ', 'बसंती' आदि उपन्यासों का अनुवाद मलयालम में किया। उन्होंने कमलेश्वर के 'काली आँधी' और 'आगामी अतीत' का मलयालम में अनुवाद किया। यशपाल के 'देशद्रोही', 'झूठा सच' का पी. अच्युत वारियर ने, धर्मवीर भारती के 'गुनाहों के देवता' का वी.के. रवींद्रनाथ ने, मृदुला गर्ग के

'कठगुलाब' का एस. तंकमणि अम्मा और के.जी. बालकृष्ण पिल्लै ने, अलका सरावगी के 'कलिकथा वाया बाईपास' और 'एक ब्रेक के बाद' का ए.के.सुधर्मा ने मलयालम में अनुवाद किया। मलयालम से हिंदी में किए गए अनुवाद में 'चेम्मीन' (भारतीय विद्यार्थी द्वारा), 'कयर' (सुधांशु चतुर्वेदी), 'न्टप्पू प्याक्कोरानेन्टार्नु' (के.रविवर्मा), 'ओरु देशत्तिन्टे कथा' (पी.कृष्णन द्वारा), 'नाडन प्रेमम्' (डॉ. आरसु), 'यंत्रम' (पी.के.चंद्रन), 'नेल्लु' (राकेश कालिया), 'नालुकेट्टु' (के. कृष्ण मेनोन), 'सूफ़ी परञ्ञा कथा' (पी.के.राधामणि) आदि महत्वपूर्ण हैं।

कन्नड भाषा में हिंदी से 'अंधायुग' (प्रो.सिद्धलिंग पट्टणशेट्टी द्वारा), 'रामचरित मानस' (प्रदान गुरुदत्त), सुमित्रानंदन पंत की कविताओं का अनुवाद (एम.एस.कृष्ण मूर्ति) आदि प्रमुख अनुवाद हैं। द.र.बेंद्रे की कविताओं का हिंदी अनुवाद भालचंद्र शेट्टी ने, अक्कमहादेवी के वचनों का अनुवाद काशीनाथ अंबलगे ने, बसवण्णा के वचनों का अनुवाद प्रभाशंकर प्रेमी ने किया। इसी प्रकार तेलुगु से प्रसाद मूर्ति की प्रतिनिधि कविताएँ (डॉ. वल्लभ राव द्वारा) एन.गोपी की कविताएँ (प्रो.माणिक्यांबा), सी.नारायण रेड्डी की कविताएँ (पेरिशेट्टी श्रीनिवास) हिंदी में अनूदित हुए हैं। तमिल में सुबह्मण्य भारतीयार की कविताएँ (एच.बालसुब्रह्मण्यम द्वारा), भारतीयार की चुनी हुई कविताएँ (वी.पद्मावती द्वारा), 'तिरुक्कुरल' (गोविंद राजन) अनुवाद के रूप में मशहूर हैं। तमाम चुनौतियों के बावजूद भी भारतीय भाषाओं के बीच अनुवाद द्वारा आदान–प्रदान का सिलसिला जारी है। इन सबके बावजूद भी अनेक भारतीय पाठक एवं रचनाकार अन्य भारतीय भाषाओं की कृतियों से अपरिचित हैं। एक बार मलयालम कथाकार एम.टी. वासुदेवन नायर ने कहा – "पाश्चात्य साहित्य के लेखक की कृतियों के अनुवाद इधर जल्दी मिल जाते हैं। लेकिन भारतीय साहित्य के महारथियों की कृतियों के अनुवाद न मिलने के कारण हम भारतीय साहित्य की समृद्धि, विविधता और एकता के संबंध में मूल्यांकन नहीं कर पाते हैं।.....अनुवाद अभियान को गतिशील बनाने पर ही भारतीय साहित्य का सही चित्र हमें मिलेगा।"[8]

रूसी विद्वान वारन्निकोव ने 'रामचरितमानस' का रूसी भाषा में अनुवाद किया तो भारतीय संस्कृति का संचरण सच्चे अर्थों में रूस में हुआ। अनुवादक ने स्वयं इस कृति को भारतीय संस्कृति का विश्वकोश समझा। भारतीय नवजागरण में भी अनुवाद की बड़ी भूमिका रही। "अनुवाद की गहरे पर्तों से नवजागरण की भूमि उर्वर हुई।"[9] भारतीय संदर्भ में भी देखें तो भारतीयता की सही पहचान अनुवाद द्वारा ही संभव है। भारत की खोज अगर करनी हो तो अनुवाद करना प्रथम जरूरत बन जाती है। प्राच्यविदों ने अनुवाद द्वारा ही समझा कि भारतीय मार्ग मुक्ति और मूल्यों का मार्ग हो सकता है। भारतीय संस्कृति के प्रति वे विशेष अनुराग रखते थे। कालिदास के 'अभिज्ञान शाकुंतलम्' का अनुवाद विलियम जोंस ने 1789 ई. में किया। जॉर्ज फोर्स्टर ने 1791 ई. में इसे जर्मन भाषा में अनूदित किया। इसे पढ़कर विख्यात साहित्यकार गेथे

ने शकुंतला पर सुंदर कविता ही लिख डाली। भारतीय संस्कृति की महत्ता से विलियम जॉन और गेथे काफी प्रभावित थे। "अनुवाद भाषाओं, संस्कृतियों के बीच संवाद का सेतु है। बौद्धिक उपलब्धियों के बीच संवाद का सेतु है।"[10]

संक्षेप में सकते हैं कि अनुवाद एक प्रकार से असंभव को संभव बनाने की एक समझौतापरक सांस्कृतिक सेतुबंधन की प्रक्रिया है जिसमें अनुवादक को सांस्कृतिक इंजीनियरिंग करनी पड़ती है और वह रचनाओं के बीच संस्कृति और विचारों का पुल बनाता है। इसलिए अनुवाद को पुनः सृजन बताया गया है। इसी पैठ की वजह से अनुवाद को "परकाया प्रवेश की प्रक्रिया"[11] बताया गया है। मूल पाठ की अंतर्वस्तु की समझ सर्वोपरि प्रमुख है। साथ ही उसकी शैली, मुहावरा, अर्थ, उद्देश्य आदि को भी संपूर्ण परिवेश के विशाल कैनवास में समझना पड़ता है। रचनात्मक अनुवाद कभी–कभी यांत्रिक नहीं हो सकता। उसमें जीवन का कच्चा यथार्थ जीवंतता के साथ उपस्थित रहता है। इसीलिए सृजनात्मक साहित्य के अनुवाद का उत्तरदायित्व अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। हिंदी भारतीय भाषाओं को जोड़ने का एक महत्वपूर्ण मंच है, जिसके माध्यम से भारत की संस्कृति का आदान–प्रदान एक हद तक संभव है।

संदर्भ ग्रंथ

1. डॉ. जी.गोपीनाथन–अनुवाद सिद्धांत एवं प्रयोग, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद 1990, पृ.18
2. वही, पृ.23
3. भोलानाथ तिवारी, किरण बाला–भारतीय भाषा से हिंदी अनुवाद की समस्याएँ, शब्दकार, दिल्ली 1984 पृ.34
4. (सं.) डॉ. आरसु, डॉ. एम.के.प्रीता–अनुवाद अनुभव और अवदान, जयभारती प्रकाशन, इलाहाबाद 2008 पृ.87
5. सं. बिशन टंठन–ज्ञानपीठ पुरस्कार, नई दिल्ली 1991 पृ.53,54
6. (सं.) डॉ. आरसु, डॉ.एम.के.प्रीता–अनुवाद अनुभव और अवदान, जयभारती प्रकाशन, इलाहाबाद 2008 पृ.80
7. (सं.) के.सी.कुमारन, डॉ.प्रमोद कोवप्रत–इक्कीसवीं सदी में अनुवाद दशाएँ और दिशाएँ, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा 2007 पृ.95
8. समकालीन भारतीय साहित्य – सितंबर–अक्तूबर 1996, पृ.31
9. डॉ. रमण सिन्हा–अनुवाद और रचना का उत्तर जीवन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 2002 पृ.37
10. अनुशीलन, जून–अगस्त 2000 पृ.114
11. डॉ. जी.गोपीनाथन–अनुवाद सिद्धांत एवं प्रयोग, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद 1990 पृ.16

❑❑❑

तुलसीदल गंगाजल

ऋता शुक्ल

शिक्षा ,कला साहित्य और संस्कृति से विशेष जुड़ाव। ग्यारह उपन्यास तथा पंद्रह कथा संग्रह प्रकाशित। बिहार गौरव सम्मान. उत्तर प्रदेश हिदी संस्थान का हिंदी लोकभूषण सम्मान सहित अनेक सम्मानों से सम्मानित। संप्रति–परमाणु ऊर्जा मंत्रालय की हिंदी सलाहकार समिति की सदस्य।

पिछले साल जब आजी की आँखों में मोतियाबिंद का असर गहराने लगा था, तब वे इलाज के लिए छह महीने तक हमारे यहाँ ठहरी थीं। आते ही उन्होंने अपनी पोटली खोल दी थी– ताजा सोनपापड़ी, गुड़ की पट्टी, चौरठ का पटउरा– कई चीजों का ओसारे में पड़ी चौकी पर ढेर लग गया था।

बाबूजी ने टोक दिया था– नाहक इतनी चीजें जुटा लाई काकी। अभी ज्यादा पैसे मत खरचो। ऑपरेशन के वक्त जरूरत पड़ सकती है।

छोटकी आजी की ऊँगलियाँ एक नन्ही पोटली की गाँठ खोलती सहसा थम गई थीं। बाबूजी की बात सुनकर उन्होंने बड़ी कातरता से उनकी ओर देखा था और फिर उनकी आँखें छलछला गई थीं।

अम्मा ने फौरन बात संभाल ली थी... इनके कहने का बुरा नहीं मानेगी काकी जी, उन्होंने तो इसीलिए कहा कि... वैसे भी तो हम आप ही का दिया खाते है। आप नाहक इतनी परेशान...

आजी का सफेद पल्ला उनकी आँखों तक उठ गया था... आज तहार काका जी जीयत रहिते त इहे जिनिस ना आइत बबुआ ऽ। बाल–बचवन के घर में बिना कपड़ा–लता के आइल...

आप भी काकी, क्या फालतू की सोच–फिकर ले बैठती हैं। आपकी असीस फले, ये बच्चे बने रहें... यही हमारे लिए काफी है।

छोटकी आजी के आँसुओं मे अम्मा की आँखों से बहता दर्द सिमटता जा रहा था। आजी लगातार सुबकती जा रही थीं और बाबूजी के सामने वर्षों पुराना अतीत एकबार फिर से आ खड़ा हुआ था। वही अतीत, जिसे विस्मृति के गर्त में दफना देने के लिए

अनवरत् किए गए प्रयत्नों की धार भी कुंठित होती चली गई थी और उम्र की आधी सीमा पार कर जाने के बाद भी उनका मन जिंदगी के उस छूटे हुए हिस्से का अतिक्रमण नहीं कर पाया था।

छोटकी आजी की दोनों आँखें ओड़हुल का फूल बन गई थीं। इन आँखों से बहते रक्त में बाबूजी ने अपने पिता की लहूलुहान देह के कटे–फटे हिस्सों को तैरते हुए देखा था।

यही भीखना अहीर है बेटा। भईया ने इसे पोसपुत बनाकर पाला और इस जल्लाद ने उनके साथ एहसान फरामोशी की।

अनपढ़, गँवार भीखना अहीर! गाँव का नामी लठैत! बड़े–से–बड़े पहलवान को लाठी के पहले दाँव में चित कर देने वाला! अखाड़े में उतरता तो बाबा के पैर छूना नहीं भूलता– शिवदान बाबा के चरण हमरा खातिर सुलच्छन बा S!

'जय बजरंग बली के' ..... कहता हुआ लंबी हुकारी भरकर जब वह अखाड़े में कूदता, बाबा की आँखें चमकने लगतीं। उनका हाथ पास बैठे इकलौते बेटे के माथे पर फिरने लगता.....

मरद को शेर–बब्बर होना चाहिए बचवा। देख रहे हो भीखना को। बचपन में कैसा मरियल–सा था– बिना माँ–बाप का छोकरा। हमी ने कहा– जो नहीं है उसका सोग मत मना भीखन! हमो आने बाप की जगह समझ। जानते हो बेटे, अपनी लछमिनिया गाय के पावभर दूध और रूखी–सूखी रोटियों ने इसकी सेहत ऐसी बना दी। बस, हमारी बात गाँठ में धर लो बेटे। देह को जैसा बनाना चाहोगे, वह वैसी ही बन जाएगी और देह मे जोर रहेगा तो कोई तुम्हें कभी नहीं दबा सकेगा।

गाँव में बाबा के बराबर कद–काठी वाला दूसरा कोई नहीं था। कई मनौतियों और जप–तप आदि के बाद आजी की कोख भरी थी। चौथेपन में बाबा ने पूत का मुँह देखा था।

छोटकी आजी ने बताया था– भाई जी ने जवार भर के पहलवानों को नेवता भेजा था। नजदीक पास के सभी बटुरा गए थे। पंचों की बिरादरी ने एकमत होकर कहा था– शिवदान बाबा के जोड़ का मरद दूसरा नहीं।

..... पसीने से तर–बतर बाबा जीत की खुशी में उमगते हुए भीतर आए थे और दस दिन के बच्चे को जोरों से ऊपर उछालकर बाँहों पर टिकाते हुए ठठाकर हँस पड़े थे–

आज की जीत बबुआ के नाम लिख रहा हूँ। भगवान करें, यह दुनिया जहान में नाम कमाए।

बाबूजी पाँच बरस के थे, जब वह आफत आई थी। अँधेरी गली के दो मुहाने पर बाबा आगे–पीछे दोनों ओर से घेर लिए गए थे। लाठी की पहली चोट ने अपनी पहचान आप खोल दी थी–

भीखन... तुम ...?

बाबा की रोबीली आवाज ने नकाब चढ़े चेहरों का पानी उतार दिया था।

भीखन के थमे हुए हाथों को अंधेरों में छिपी आकृतियाँ उकसाने लगी थीं– पथरा क्यों गया रे ससुर? आगे–पीछे सोचना था तो दस हजार की थैली गिनवाने के पहले ही सोच लेता। अब अपने साथ–साथ हमें भी काला पानी भेजने का इरादा है क्या?

कोहनी के बल गिरे बाबा ने बेहोश होने से पहले भीखन को लताड़ा था– तू मरद का बच्चा नहीं, सियार का जन्मा निकला भीखना! तुझसे ऐसी आस नहीं थी। सच्चा लठैत पीछे से वार नहीं करता रे ऽ। तूने इस विद्या का अपमान किया है। जा, तेरा कभी भला नहीं होगा।

भीखना की आत्मा अपना पहला पाप कबूल बैठी थी। दारोगा के सामने डहक–डहककर रोते हुए उसने सारा राज खोला दिया था–

सुमेसर सिंह और सिवदान बाबा के बीच जमीन को लेकर पुश्तैनी दुश्मनी है। यह सुमेसरा हरामी है सरकार। इसने बहला–धमकाकर हमारी मति बिगाड़ दी। हमने पाप किया है, धरमपिता की हत्या कर कलंक कर अपने माथे लिया है। हमको डामिल फाँसी की सजा दीजिए हुजूर, हम इसी जोग हैं।

पैसे की प्रभुता थी, सुमेसर सिंह का सारा अपराध पच गया। उसके तीनों लठैत जुर्माना सहित छह–छह महीनों की सजा भुगतकर मूँछों पर ताव देते बाहर निकल आए। भीखना जेल में ही मर गया।

किसी ने कहा– उसका गुर्दा खराब हो गया था।

किसी ने कहा– भीतर–ही–भीतर घुलकर उसने अपनी मौत आप बुला ली।

लेकिन छोटका आजा को पक्का विश्वास था– भीखना की मौत के पीछे सुमेसर सिंह की कोई साजिश थी। जेल का सिपाही उससे मिला हुआ था, उसी ने भीखना के खाने में कुछ...

बाबा की अकाल मौत का सदमा आजी नहीं झेल पाई थी और बाबूजी की अबोध जिंदगी अपनी काकी के आँचल को पनाह लेने के लिए मजबूर हो गई थी।

अखिलेश काका तब छोटकी आजी की गोद में थे। तीन महीने का छोटा–सा गुलथुल शिशु। देह में सरसों का तेल चुपड़, आँखों में काजल की मोटी लकीरें आँज कर छोटकी आजी बच्चे को खटोली पर लिटा देती–जीत बबुआ, भाई को खेलाते रहो। हम जरा घर के काम से निबट लें।

और बाबूजी छोटे भाई को बहलाने में मशगूल हो जाते।

..... जहानाबाद से अखिलेश की कोई चिट्ठी आई काकी?

नाहीं बचवा, अखिलेश के छोटकी बिटियवा एगो चिट्ठी डलले रहे।

पटने के लिए गाड़ी पर चढ़ते वक्त स्टेशन पर गाँव के एक आदमी ने छोटकी आजी को वह चिट्ठी थमाई थी।... मैं जोर–जोर से पढ़कर चिट्ठी उन्हें सुना दूँ इसी

अभिप्राय से छोटकी आजी ने जाकिट की तह में छिपी चिट्ठी निकालकर मेरे हाथों में थमा दी थी–

डियर ग्रेनी.....।

संबोधन के इस सर्वथा अपरिचित शैली पर आजी चौंक उठी थी– इ कवन भाखा है बचिवा।

बाबूजी के संकेत को समझकर मैंने फौरन अपनी ओर से संशोधन किया था– आदरणीय दादी जी,

....बाबूजी... को समय नहीं है कि वे विलेज आइ मीन गाँव... जाकर आपको लिवा सकें और फिर यहाँ रूम्स की बहुत प्रॉब्लम है। दो ही रूम्स हैं...

रूम्स के मायने आजी समझ रही है क्या? छोटे भाई ने मुझे बीच में ही टोका।

हें बबुआ, खूब समझत बानी। आजी ने एक उसांस भरकर आगे पढ़ने का संकेत दिया।

आप आकर कहाँ ठहरेंगी..... आगे पढ़ते हुए मुझे सकुचाहट हो रही थी– क्या–क्या लिखा है, इस लड़की ने? ग्यारह साल की लड़की के ऐसे विचार?

छोटकी आजी ने आहिस्ते हँसकर चिट्ठी मेरे हाथ से ले ली थी–

सुन लिहल बबुआ, कवन मुँह के लेके हम जहारीबाग जइतीं। बाप के जियते अखिलेश के जवन हाल रहे..., अब का बुद्धि सुभाव कवनो दोसर होई? हमरा खातिर कोठरी नइखे..... हम रहब कहाँ...? जा ए अखिलेश ...। कोख के कलंक बनि के तहरे आवे के रहे?

तुम्हारी सौगंध, जो हम झूठ कह रहे हों। अम्मा जी जेठी को अपने हाथों से खोए की मिठाई खिला रही थी। मुझे देखकर दोनों–की–दोनों सटक गई।

..... मेरा क्या, मैं तो फिर भी दूसरी हूँ जी, चार दिन का आई हुई। सारा जी यही कहेंगी कि आते ही बेटे को बिगाड़ दिया। लेकिन कोई कुछ भी कहे, मुझे तो आने वाले दिनों का सोच है।

शहर की सातवीं पास नवयौवना पत्नी की इठलाती हुई बाँहों का इसरार अखिलेश काका के दिलो–दिमाग पर मादक उत्तेजना के साथ ही साथ संदेह की परतें भी बिछाता चला गया था...

अंबा, सुनो, तुमसे एक बात कहनी है।... बेटे की आवाज का अनचाहा रूखापन ताड़कर छोटकी आजी चौकन्नी हो गई थीं–

कवन बात बा? तनि ठहर जा बबुआ, बड़कू के रोटी देले आई, ऑफिस जाए के बखत या.....।

मुझे भी फुर्सत नहीं अम्मा। सोच रहा हूँ आज ही दरभंगा लौट जाऊँ। अभी सारे कपड़े–लत्ते भी सहेजने हैं।

छोटकी आजी के इकलौते पूत ने उन्हें चिताया था– सुलोचना शहर में पली लड़की है अम्मा। उसकी माँ ने मुझे हिदायत दी थी– ज्यादा भारी काम उससे नहीं लिए जाएँ और मैं देख रहा हूँ कि आते ही तुमने उसे रसोईघर में बिठा दिया। अच्छा हो कि जब तक मेरी पढ़ाई पूरी नहीं हो जाती, वह अपनी माँ के यहाँ ही रहे।

छोटका आजा ने जबरदस्त विरोध किया था–

यह भी कोई बात हुई भला? एक महीना आए नहीं हुआ और विदाई कर दें? बड़ी बहू की तबीयत ठीक नहीं चल रही है। ऐसे में अखिलेश की कनिया का वहाँ रहना बहुत जरूरी है।

उन्होंने बड़ी गंभीरता से बेटे को समझाया था– कनिया को चाहिए कि वह सारा भेदभाव भुलाकर सबसे घुलमिल जाएँ। नइहर का गुमान ठीक है। लेकिन इतना नहीं कि सास–ससुर की बात माटी बनकर रह जाए।

दुराब का पहला काटा उसी दिन सुलोचन काकी के कलेजे में बिंधा था।

नेहर नहीं जा पाने का गुस्सा कैसी–कैसी प्रतिक्रियाएँ बनकर फटा था–

रसोई में बैठे–बैठे ही दाल जल जाती, दूध की देगची उलट जाती...। चावल चढ़ा कर काकी अपने कमरे में जा घुसती, लकड़ियाँ बुझ जातीं और चावल अक्सर ही अधपका रह जाता।

गाँव–घर का नियम था– ससुर जेठ खाने बैठते तो घर की बहुएँ हल्के से घूँघट की आड़ लेकर पीढा–पानी देतीं और रसोई की कच्ची जमीन को लीपकर अपने हाथों में थाली रख जातीं। सुलोचना काकी ने कभी जो छोटका आजा को खिलाया हो।

अम्मा ने एकाधबार दबी जबान में समझाया भी था– कनिया, काका जी, काकी जी मुँह से कुछ नहीं कहते, लेकिन यह उम्मीद जरूर रखते हैं कि तुम उनकी थोड़ी–बहुत सेवा करो। काका जी को पानी–पीढ़ा दो, काकी जी को रोज नहीं तो, काम–से–कम हफ्ते में एकाध दिन ही सही, तेल लगा दिया करो। यह भी नही तो सवेरे उठकर दोनों की पालागी तो कर ही सकती हो। बड़े–बूढ़े तो दो मीठे बोल के भूखे होते हैं बहना।

सुलोचना काकी ने अनखाते हुए जवाब दिया था– रोज–रोज की सेवकाई हमसे तो नहीं होने की। आपके देवर जी तो कह रहे थे कि सारे रिवाज ढकोसला बनाकर रख दिए गए हैं। अब आप ही सोचिए न, कोई रोग–बीमारी हो जाए तो दवा–दारू का इंतजाम किया जाए या फिर मालिश–वालिश भी कर दी जाए, लेकिन जो हाथ–पैर से बिलकुल दुरुस्त हो, उसे मालिश की क्या जरूरत है भला? झूठमूठ समय की बरबादी ही तो हुई न। हमसे तो अम्मा जी के नखरे बर्दाश्त नहीं होते हैं। ये कह गए है– तुम्हें मैट्रिक का इम्तिहान देना होगा। अपनी जिंदगी बनानी है, शहर में रहने का तौर–तरीका सीखना है, तो पढ़ाई पूरी करनी होगी। अब मैं इन झूठ–मूठ के चोंचलों में लगूँ कि अपना काम देखूँ।

और फिर... सुलोचना काकी ने एक विचित्र–सी हँसी हँसकर अम्मा को भरपूर निहारा था...

आप तो हई हैं अपनी काकी जी की हर मुराद पूरी करने वाली।... आते ही उनकी असीस फल गई। अब वे पोता खिलाती रहें। ये तो कहते थे, इतनी जल्दी हमें यह सब खटराग नहीं पालना है।... सब कहे दीदी, ये तो खूब हँस रहे थे कि अपने भाई जी भी...

शर्म और अपमान से अम्मा की शिराएँ लहक उठी थीं। आँखों में क्षोभ के आँसू लिए वे अपनी कोठरी में चली गई थीं।

अम्मा का आखिरी महीना था वह। दिन भर रसोई के काम निपटाती वे निढाल हो जातीं। कटे हुए धनहर खेत का पीलापन अम्मा के अंग–प्रत्यंग पर उतर आया था– चलतीं तो आँखों के आगे अँधेरा छा जाता, पैर उलटे–सीधे पड़ने लगते। उन्हीं दिनों घर में एक वाकया हो गया था और अखिलेश काका छोटकी आजी से लड़–झगड़कर सुलोचना काकी को अपने साथ दरभंगा ले गए थे।

जाते वक्त उन्होंने खूब जहर उगला था– हम अच्छी तरह जानते हैं अम्मा, तुम और बाबूजी दोनों ही भईया के बहकावे मे आ गए हो। कूटनीति तो इनके खून में है न। बड़का बाबूजी कम प्रपंची थे क्या? जिंदगीभर मुकदमे लड़ते रहे और आधी से ज्यादा जायदाद राजनीति के दाँव–पेंच सीखने में फूँक दी। कौन कहेगा कि मैं तुम्हारा सगा बेटा हूँ? या कि सुलोचना तुम्हारी अपनी बहू है? दिन–रात किधर सटी रहती हो, क्या–क्या कानाफूसियाँ चलती रहती हैं, मुझे सब पता है। बड़का बाबूजी के साथ–साथ भीखना इनको भी...

छोटका आजा का जोरदार थप्पड़ अचानक ही काका के गाल पर पड़ा था और वे कराहते हुए कनपटी पकड़कर वही बैठ गए थे। आजा का यह रौद्र रूप आज भी अम्मा की आँखों में ज्यों–का–त्यों बना हुआ है–

होश सँभालकर बात बोला कर छोकरे, बड़का भईया नहीं होते तो तुझे जनम देने वाला यह अपराधी भी इस दुनिया में नहीं होता। जिस गैरत के साथ उन्होंने मुझे पाला–पोसा उसकी कोई मिसाल है क्या? ..... कौन किसके बहकावे में आया है, यह हम भी जानते है अखिलेश। लेकिन कान खोलकर सुन लो– हमारे जीते–जी बड़का भईया का वंश हमारी आँख की ओट नहीं हो सकता... कभी नहीं। तुम चले जाओ, जहाँ तुम्हारा जी चाहे।

छोटका आजा की लंबी काया क्रोध के आवेग में थरथरा रही थी– वे दीवार का सहारा लेकर डगमगाते हुए दालान की ओर मुड़ चले थे। अम्मा रोती हुई अखिलेश काका को सहारा देने के लिए आगे बढ़ी थी कि तभी आजा दुबारा पलट आए थे–

और सुन लो, तुमसे हमारी चाहे जितनी जगहँसाई हो, हम अपने ईमान पर अड़े रहेंगे। अपने जीते–जी बाँट–बखरा कर देंगे। खबरदार, जो आज के बाद तुमने

भाई–भावज के खिलाफ एक भी बात कही। पुश्त–दर–पुश्त कंगाली में काटने वाले केसव पांड़े की सूदखोर बुद्धि का असर तुम्हारे दिमाग पर हो चुका लगता है। तो बबुआ, आज हम भी कहे दे रहे हैं कि पांडेपुर में तुम्हारा संबंध करके हम बहुत पछता रहे है। हमने सोचा था कि थोड़ी पढ़ी–लिखी लड़की आएगी तो घर का संस्कार बदल जाएगा लेकिन तुम्हारी बहुरिया का सुझाव.., ठीक ही कहा गया है–अधजल गगरी बेसी छलकती है। बड़की कनिया का रहन–सहन देखो तो मन शांत हो जाता है और...

छोटका आजा की बात पूरी होते न होते सुलोचना काकी की कोठरी से जोरों की एक चीत्कार सुनाई पड़ी थी। काकी ने अपना माथा पाटी पटक दिया था और वे जोर–जोर से चीखने लगी थीं।

छोटका आजा को अचानक ही न जाने क्या सूझा था। गाड़ीवान को बुलवाकर उन्होंने हुक्म दिया था–

हीरू–किसनु पिछवाड़े बँधे है, उन्हें खोल लाओ। अभी तुरंत... और गाड़ी तैयार करो।

अखिलेश काका के लिए गाड़ीवान की मार्फत संदेश आया था–

कनिया से कहो– आधे घंटे में अपनी सारी चीजें समेट लें और अखिलेश भी तैयार हो जाएँ।

अखिलेश काका के ससुर ने दरभंगा में किराए का मकान ढूँढ़ दिया था और वे सुलोचना काकी के साथ वहीं रहने लगे थे।

छोटका आजा ने चिट्ठी–चपाटी तक का सिलसिला बिलकुल तोड़ दिया था। घर की अशांति, छोटका आजा के क्रोध और छोटकी आजी की मानसिक यंत्रणा का प्रभाव अम्मा पर पड़ा था, उनकी पहली संतान धरती पर गिरते ही निस्पंद हो गई थी। उन्हीं दिनों अखिलेश का पहला पत्र मिला था– झूठ और बेईमानी फलती नहीं। उसका अंजाम यही होता है।

दो पंक्तियों की सूत्र शैली– आग की एक तेज लपट, जिसने बाबूजी की भावनाओं को भीतर तक जलाकर राख कर दिया।... छोटका आजा को तो जैसे मर्मभेदी बाण लगा हो।... उसी समय से उन्होंने खाट पकड़ ली थी। अक्सर छोटकी आजी से पछतावे के स्वर में बतियाते रहते–अखिलेश अपने ससुर के रंग में पूरा रंग गया मलकिनी। थोड़े से लालच ने हमारी सोने की गृहस्थी राख कर दी।

अखिलेश काका के ससुर ने ब्याह के वक्त उनकी डॉक्टरी पढ़ाई का सारा खर्च कबूला था। उस वक्त बाबूजी ने कहा भी था– संबंध बराबरी का ही ठीक होता है काका। लड़की ज्यादा पैसे वाले घर की हुई तो निभाव में कठिनाई आ सकती है। रहन–सहन के फर्क को आसानी से नहीं मिटाया जा सकता।

छोटका आजा बाबूजी की बातों को याद करते सिर धुनते रहते थे– हमारी बुद्धि क्यों भरम गई थी भगवान?

उनके आखिरी दिनों में भी अखिलेश काका ने गाँव आने की जरूरत नहीं समझी थी। साँस टूटने के पहले छोटका आजा ने बाबूजी को अपने पास बुलाकर कहा था–

बड़का भईया ने अनाथ भीखना को कलेजे से लगाकर पोसा, और वे उसी के हाथ से जिनगी गँवा बैठे।

भीखना परजात था, पैसे के लालच में अपना ईमान लुटा गया। अखिलेश तो अपना खून था बबुआ। उसकी पाल–पोस मे हमने कौन–सी कसर छोड़ी थी, जिसका दंड आज वह हमें दे रहा है।

...मरते वक्त बड़का आजा को दो–चार मिनट के लिए होश आया था और उन्होंने भीखना का अपराध भुला दिया था। बड़का आजा की कचहरी में उन पर घातक प्रहार करने वाला भीखना निर्दोष था। अटकते–अटकते उन्होंने छोटका आजा को समझाया था– बदला... मत... लेना बचवा।... सुमेसर ने बरजोरी करके भीखना की... गरीबी का नाजायज फायदा उठाया। असली दोषी यह नहीं।

लेकिन छोटका आजा अखिलेश काका को माफ नहीं कर सके थे। तीन दिनों तक उनका निष्प्राण शरीर दालान में पड़ा अखिलेश काका की प्रतीक्षा करता रहा था– बेटे के हाथों के मुखाग्नि मिले तो मोक्ष होता है।

पता नहीं, छोटका आजा को मोक्ष मिला था या नहीं...? उनके शव की दुर्दशा हो इसके पहले बाबूजी ने स्वयं सारे संस्कार निभाने का फैसला कर लिया था।

अखिलेश काका चौथे दिन पहुँचे थे। आते ही उन्होंने सारा घर सिर पर उठा लिया था और अम्मा–बाबूजी को कटूक्तियों से विभूषित करने लगे थे।

छोटकी आजी घुटनों में मुँह छिपाए सिसकती जा रही थी और काका दहाड़ रहे थे– मैं खूब जानता हूँ अम्मा। यह सब तुम लोगों की मिली–भगत का नतीजा है।

टेलिग्राम जान–बूझकर देर से भिजवाया गया ताकि भईया अपनी मनमानी कर सकें और गाँव के पंच यह समझें कि लड़का सचमुच नालायक है, बाप का मरा मुँह देखने तक नहीं आया।

ठीक है भईया, मैं आपकी डिप्लोमेसी खूब समझता हूँ। सारी जमीन हथियाने के लिए आपने भी अच्छा नाटक रचा। बाबूजी से आपको इतना प्रेम क्यों था क्यों आप पटने की लगी–लगाई नौकरी छोड़कर गाँव में टीचरी करने आए... यह सब आज पता चला। बाबूजी ने बड़ी शांति से काका की सारी बातें सुनी थीं।

श्राद्ध के दूसरे ही वे शहर जाकर वकील से एक कागज लिखवा लाए थे–

मैं घोषणा करता हूँ कि गाँव की सारी चल–अचल संपत्ति पर मेरा कोई अधिकार नहीं। यह संपत्ति मेरे छोटे भाई डॉ. अखिलेश्वर की है। मैं या मेरी संतान इसके लिए कभी कोई दावा नहीं करेगी।

छोटका आजा के हम उम्र बुजुर्गों के सामने बाबूजी ने वह कागज काका को सौंपा था– रामजतन काका, हरिभाई और सुदर्शन पंडित जी, मेरा हफलनामा आप

लोगों के सामने है। अखिलेश भाई से यही विनती करूँगा कि वे गाँव में काकी की देखभाल तथा उनके गुजारे के लिए यथोचित प्रबंध कर दे। मैं तो चाहता था कि काकी मेरे साथ पटना चलती... लेकिन गाँव की ममता इनसे नहीं छूटेगी और मैं भी इन्हें मजबूर नहीं करूँगा। काका के जीते–जी हम...

बाबूजी का गला भर्रा गया था और वे दालान से उठ गए थे।

... ऑपरेशन सफल हुआ था। छोटकी आजी छह महीने हमारे साथ रहकर गाँव लौट गई थी। बाबूजी ने आजी को अपनी बाँहों में उठाकर रिक्शे पर बिठाया था और वे अम्मा को तथा हम सबको बार–बार असीसती चली गई थीं।

उन्होंने बाबूजी से कहा था– मरत बेर तहरे हाथ के पानी चाही बबुआ। हमार खोज खबर लेत रहिह ऽ।

और वे बिलख पड़ी थीं।

गाँव के सुदर्शन पंडित के बेटे ने आकर सूचना दी थी– छोटकी आजी बहुत बीमार है। अखिलेश भईया को तार भेजा जा चुका है, वे बार–बार आपको खोज रही हैं।

खबर पाते हम सब गाँव पहुँचे थे। एक घंटे पहले अखिलेश काका और सुलोचना काकी भी पहुँच चुकी थीं।

खटोले पर पड़ा आजी का जर्जर शरीर, सिरहाने पावताने बैठे अखिलेश काका और बाबूजी। चौखट के पास खड़ी अम्मा और सुलोचना काकी।... कमरे में हवा के साथ घूमती एक भयावह चुप्पी।

सुलोचना काकी ने थोड़ी देर पहले अम्मा से कहा था– मालगुजारी का आधा हिस्सा तो आपकी काकी जी ही रखती थीं। न जाने सारा पैसा क्या हो गया? हमारे पास तो इतना नहीं है न कि... अम्मा जी फिजूल फेंकती रहीं। जिस–जिस पर लुटाने वाली आदत के चलते ही तो आज इनकी दशा हो गई।

आजी की साँसें गिनी जा रही हैं–

कब...? ... आखिर कब तक?

सुलोचना काकी विरक्त हो रही हैं– बच्चे यहाँ अकेले हैं।

नौकर के भरोसे कब तक..... छोड़ा जा सकता है?

जब–जब आजी की पलकें उघरती हैं और उनके आँसुओं में तैरती हुई कोई उम्मीद चुपचाप कनपटियों के नीचे दुलक जाती है।

अखिलेश काका काठ–पत्थर की तरह क्यों बैठे हैं? सिरिंज में दवा भरकर आजी की सूखी बाँह में सूई चुभो देना और बीच–बीच में दवा की छोटी–बड़ी गोलियाँ उनकी जीभ पर रखकर पानी पिला देने के अलावा उनका कोई काम नहीं।....

काका–काकी इतने निस्पृह क्यों हो गए? अपने जीवन के प्रति चरम आसयित दूसरों के लिए ऐसी ही निरासक्त प्रवृत्ति का प्रतिफलन बनती है क्या?

बाबूजी गीता पाठ कर रहे हैं। अम्मा छोटकी आजी के पाँव सहला रही हैं और अखिलेश काका बाहर खड़े काकी का प्रस्ताव सुन रहे हैं।–

मेरी समझ से तो अब गाँव में ठहरना बेकार है। फिर यहाँ भाई जी और जेठी तो हैं ही।

अखिलेश काका की व्यवसाय–बुद्धि भी आतुर हो उठी है–हाँ, सचमुच एक सप्ताह से ज्यादा हो गया। अब तक कितने पेशेन्ट्स।

अम्मा बगल से गुजरती हैं–

काका सकुचाकर भाषा बदल देते है– लॉस ऑफ थाउजेंड रूपीज पर डे (हजार रूपये रोज का नुकसान)...

अच्छा होता, वहीं से सौ–दो सौ रूपये भेज देते। अम्मा जी भी खुश हो जातीं।

ठहरो, मैं भईया से कहता हूँ।

पत्नी के विचार अखिलेश काका को आश्वस्त करते हैं। जेब में हाथ डालकर वे रूपये टटोलते हैं... एक... दो... तीन... चार... कहो तो चार हजार दे दूँ।

काकी झटककर कहती हैं– चार हजार रूपयों का क्या होगा जी? आप भी... बहुत हुआ तो हजार दे दीजिए न... काफी है। भाई जी का भी तो फर्ज है। वे भी कुछ–न–कुछ ...।

छोटकी आजी के सिरहाने बैठे अखिलेश काका पाँच सौ के दो नोट बाबूजी की ओर बढ़ाते हैं।... कहने को उनके पास कोई बात नहीं शायद। आँखें झुकाकर वे किसी तरह बोल पाते हैं– भईया, यह अम्मा के लिए...

छोटकी आजी की आँखें खुली है। उनकी चेतना सचेष्ट है। न जाने कहाँ से उनके हाथ में बिजली की–सी गति भर जाती है। बाबूजी कुछ कहें... इसके पहले आजी अखिलेश काका की ऊँगलियों मे फँसे नोटों को झपटकर फेंक देती है–

हमारा रोग के दवाई नोट ना ह बबुआ। एह आतमा के कलेश भरने पर छूटी। तू जा, अपना रोजगार देख।

सुलोचना काकी ने काका को समझाया है– सब जेठी जी की कारस्तानी है। उन्होंने अम्मा की मति फेर दी है। दस तोले के कंठहार का लालच जो है।

बाबूजी भीतर–ही–भीतर संत्रस्त है– कहीं ऐसा न हो कि अखिलेश काका छोटकी आजी को अपमानित कर दें। उन्हें आजी के पुनः सचेत होने की प्रतीक्षा है, ताकि वे कह सकें– काकी, अपना कंठहार अखिलेश बहू को दे दो।

छोटकी आजी बाबूजी की बात सुनकर हँस देती है–

जवन बेंत सूख जाला ओकरा के निहुरावल ना जाला बबुआ। हमार कोख ता ओही दिन पथरा गइल जवन दिन अखिलेश बाप के निरादर कइले। ... महतारी के सोच से बढ़ि के आप न कोठरियन के सोच कइले।

..... छोटकी आजी का इशारा अखिलेश काका की बेटी के पत्र की ओर था।

उन्होंने अपना आखिरी फैसला सुनाकर आँखें मूँद ली थीं–

दुःख–सुख में जे हमार आपन रहल, उहे एक देह के छुई। आज हम सुनावत बानी, सकलजीत बबुआ हमरा के तुलसी–गंगाजल दीहे।

छोटकी आजी ने अपने गले का कंठहार अम्मा के गले में पहना दिया था। अखिलेश काका के चेहरे पर स्याही पुत गई थी।

बाबूजी ने काका को बहुतेरा मनाया– मुत्युशैय्या पर पड़ी माँ की बातों का बुरा नहीं मानना चाहिए।

काका नहीं माने। जाने से पहले उन्होंने छोटकी आजी को देखने की जरूरत नहीं समझी।

बाबूजी ने शांत भाव से उन्हें समझाया था– कर्तव्य–अकर्तव्य की सीख में तुम्हें क्या दूँगा भाई। तुम स्वयं इतने विद्वान हो। काकी की आत्मा को चोट नहीं पहुँचे इसीलिए कहता हूँ– कुछ दिन और रूक जाओ।

अखिलेश काका ने बड़ी रूखाई के साथ कंधे पर रखा बाबूजी का हाथ हटा दिया था और कार में बैठ गए थे।

..... कोने में रखा दीपक सुगबुगा रहा है। तीन रातों से लगातार जल जो रहा है। बाबूजी निश्चल बैठे हैं। उनकी आँखें मुँदने वाली नहीं। छोटकी आजी की अपेक्षा उनमें मूर्त्त है। आजी को गंगाजल चाहिए–जीवन–मुक्ति का अंतिम पाथेय।

आजी की पंचभूत काया बाबूजी की बाहों में अवशिष्ट है। अब कोई राग नहीं, क्रोध नहीं, ईर्ष्या नहीं... सारे भाव विसर्जित हो गए।

आजी की आँखें बंद हैं, मुँह खुला हुआ– बाबूजी के अंतिम फर्ज की ओर इंगित करता.....

मुखाग्नि जो देनी है।

इस शरीर का क्षरण इन्हीं हाथों से हो– आजी ने आखिरी बार कहा था।

❑❑❑

अलविदा

सुमन सिंह

अध्ययन–अध्यापन व लेखन में विशेष रुचि। भोजपुरी एवं हिंदी भाषा में कहानियाँ, कविताएँ एवं शोध–आलेख प्रकाशित। हिंदी व भोजपुरी की विविध विधाओं में अब तक लगभग दस पुस्तकें प्रकाशित व संपादित। संप्रति–सहायक आचार्य (हिंदी विभाग) मुकुलारण्यम् महाविद्यालय, सिगरा, वाराणसी।

उसका लगातार फोन आ रहा है। कई दिनों से उसकी कॉल को अनदेखा कर रही हूँ। मन बेचैन है लेकिन बात करने का साहस नहीं जुटा पा रही हूँ। बार–बार फोन करने के बाद उसने मैसेज किया– 'बहुत जरूरी है, कॉल कीजिएगा।' मेरा दिल धक्क से रह गया। आखिर क्या बात होगी। ऐसी क्यों हूँ मैं? आज जबकि उसे मेरी मदद की जरूरत है, कुछ नहीं कर पा रही। खुद को धिक्कारती हूँ बार–बार लगातार। लेकिन मन की बेचैनी किसी भी तरह कम नहीं होती। मेरे इस व्यवहार से वह कितनी आहत होगी इसका अंदाज़ा है मुझे। कई घंटे बीत जाने के बाद मैं सहमी हुई उसे कॉल करती हूँ लेकिन तुरंत फोन काट दिया जाता है। मेरा दिल बैठ जाता है। मुझे पता है कि वह बहुत ही संवेदनशील है, सजग भी। उसकी व्यावहारिक समझ बहुत ही उम्दा है। तनिक भी उपेक्षा हो तो वह भाँप लेती है। मैं अपनी और उसकी व्हाट्सएप चैट देखती हूँ। कितनी–कितनी बातें हुईं हमारे बीच। कभी राग कभी विराग के भँवर में झूलते हम सच्चे सनेही बन साथ निभाने के लिए प्रतिबद्ध थे। वह अपने वचन की पक्की निकली और मैं? मैंने क्या किया उसके साथ! जितना उसके बारे में सोचती हूँ उतना ही आत्मग्लानि घेरती है। फेसबुक पर अपनी और उसकी बातचीत देखते समय अपनी ही एक पोस्ट पर नज़र पड़ती है। कोई बरस भर पहले मैंने उसके लिए लिखा था——

मेरी दोस्त,

कई दिनों की प्रतीक्षा के बाद पाया कि तुम्हारी अनुपस्थिति को किसी ने भी महसूस नहीं किया। तुम्हारी फेसबुक प्रोफाइल पर कई महीनों से कुछ लिखा नहीं मिला। तुम्हारी वे गंभीर टिप्पणियाँ जिनसे जाने कितने फेसबुक पोस्ट्स की अर्थवत्ता बढ़ जाती थी, नहीं दिखीं। तुम्हारी प्रोफ़ाइल जिसकी खुशरंग तस्वीरें हर हफ्ते बदल जाती थीं वह जाने कब की बेरंग और उदास हैं वैसे ही जैसी तुम्हारी देहरी होगी इन

दिनों। दुःख के स्याह दिन समेटे तुम्हारी उजली आँखें कितनी उजाड़ दिखती होंगी इसकी कल्पना मात्र से सिहर उठती हूँ।

कभी इस ओर लौटना तो यह सोचकर दुःखी मत होना कि सब तुम्हें छोड़कर आगे बढ़ गए क्योंकि जीवन आगे बढ़ने का ही नाम है। यक़ीन करो इस 'बढ़ने' को बढ़ना ही कहते हैं 'साथ छोड़ना' या 'मुँह मोड़ना' नहीं कहते।

दाईं हथेली को बाईं हथेली में कसकर थाम कहना कि तुम ही हो अपनी संगी–साथिन।

दुःख में आपा खोने के बाद अपने आप में लौटना तो पड़ता ही है न ? लौट ही आओगी एक दिन जब जान जाओगी कि औंधे मुँह अधमरे पड़े रहने से क्षुधा नहीं भरती। अनवरत रोई–सूजी आँखों में भी पीड़ा नहीं पूरती।

किसी और को हो न हो मुझे तुम्हारा इंतज़ार रहेगा।

आना जरूर। 'अपनी ही पोस्ट पढ़कर रुलाई फूट पड़ी। जाने कितनी देर तक मैं रोती रही। उसे बार–बार पुकारती मैं आखिर क्यों नहीं लौटा पाई उसे जीवन में। एक बार फिर उसको फोन करती हूँ लेकिन कोई नहीं उठाता। शायद रूठ गई है मुझसे। इस समय दिल–दिमाग में बस वही छाई है। उसका सुंदर चेहरा और नेह से भरी आँखें जैसे सामने मूर्तिमान हैं। स्मृति से एक क्षण के लिए भी ओझल नहीं हो रही। उससे पहली मुलाक़ात याद आती है। फेसबुक पर लिखी अपनी पोस्ट पर उसकी टिप्पणियों को देखकर मैं उल्लास से भर उठती। पति टोकते – 'कौन हैं ये मोहतरमा जो आपकी इतनी फैन हैं? जानती हैं आप इन्हें?' मेरे 'नहीं' कहने से उनका संशय चरम पर होता – 'तब जरूर कोई लड़का फ़र्ज़ी आईडी से फाँसने की कोशिश में होगा। नई–नई कवयित्रियों और लेखिकाओं को झूठी–मूठी तारीफ़ कर अपने शब्दजाल में कैसे फँसाना है, खूब जानते हैं ससुरे। बच के रहिएगा। अरे यह तो अपने ही शहर की हैं, बात नहीं हुई कभी?'

'नहीं' मैं पति की खोजी बुद्धि पर खीझ से भरी थी।

'अरे तो देर किस बात की बात कर लीजिए मैसेंजर पर।' पति ने तनिक चिढ़ाते हुए कहा।

'देखेंगे।' मेरी तुनकमिज़ाजी पर हँसते हुए उन्होंने फौरन उसके मैसेंजर पर कॉल लगा दिया। देर तक कोई जवाब न मिलने पर उन्होंने बहुत भरोसे से कहा– 'पक्का फ्रॉड है। ब्लॉक कीजिए।' मैंने उनकी चेतावनी उस क्षण अनसुनी कर दी। इस बात को बीते अभी एक सप्ताह ही हुआ था कि मैसेंजर पर उसकी आईडी से कॉल आई। मैंने सकुचाते–घबराते कॉल उठा लिया। उधर से बहुत ही मधुर आवाज आई – 'सॉरी उस दिन मैं आपका कॉल देख नहीं पाई। दरअसल मैसेंजर पर कम ही एक्टिव रहती हूँ। कैसी हैं आप? शानदार लिखती हैं। मैं नियमित पढ़ती हूँ। सच! इतना रूहानी

लगता है आपका लिखा कि डूब जाती हूँ।' वह अपनी रौ में कहती जा रही थी और मैं उसकी मधुर आवाज़ में डूबी सुध–बुध खो चुकी थी।

'आप सुन रही हैं न?' उसने टोका तो मेरी चेतना लौटी।

'हम एक ही शहर में रहते हैं। मिलें क्या? आपकी आवाज सुनकर लगता है कि आप मेरी ही उम्र की होंगी, है न?'

'जी, मिलते हैं कभी।' उसके इस लहज़े में इतना ठहराव था कि मैं समझ गई कि वह अभी मिलने को तैयार नहीं। मैं संशय में पड़ी पति की बातें सुन रही थी –

'अरे आजकल वाइस चेंज करने के कई एप्प आ गए हैं। जरूर कोई मनचला होगा। बचकर रहिए।' इस सुझाव पर अमल करते हुए मैंने ठान लिया कि अब उससे मिलने की बात नहीं करूँगी। उसके मैसेज और कॉल का भी जवाब नहीं दूँगी। इस बात को कई महीने बीते। अपनी पोस्ट पर उसकी प्रशंसात्मक टिप्पणियों को देखती और उनका यथोचित जवाब दे देती। एक दिन उसने मैसेंजर पर अपना मोबाइल नंबर भेजा और लिखा कि बात करना चाहती है। कुछ दिनों तक मैंने चुप्पी साधे रखी लेकिन उसके बार–बार आग्रह करने पर एक दिन कॉल किया। वही मधुर आवाज़ और वही नेह। वह मुझे अपने घर बुला रही थी। जो पता भेजा था वह मेरे घर से बहुत पास ही था। उसने कहा कि मुझे देखने के बाद विचलित न होइएगा। आपकी हिम्मत से मुझे हौसला मिलेगा। उसकी बातें रहस्यमयी थीं। मुझे बार–बार संदेह होता लेकिन उससे मिलने के मोह में मैं उसके घर जा पहुँची। सुंदर से घर के किवाड़ पर उसके भैया मेरी अगवानी में खड़े थे। बैठक के कमरे में उसकी मम्मी और भाभी मेरा इंतज़ार कर रही थीं। इतनी आवभगत और इतना स्नेह पाकर मन मुदित था। मैं उसे देखने के लिए बेचैन थी। वह आई तो मैं स्तब्ध रह गई। उसने अपनी दुबली– कमजोर बाँहें फैला दीं। उससे गले लगते हुए मैंने महसूस किया कि वह काँप रही है। उसकी बड़ी–बड़ी सुंदर आँखों में आँसू थे जो छिपाने का असफल प्रयास करने के बावजूद छलक गए। मैं असमंजस में घिरी चुप बैठी रही। बाद में उसकी मम्मी ने पूरे माहौल को खुशनुमा बना दिया। इसके बाद खूब बातें हुईं। उसके बचपन की एलबम देखी गई जिनमें वह सुंदर गुड़िया–सी लड़की स्कूल में आयोजित कई प्रतियोगिताओं में पुरस्कृत होती हुई शान से मुस्करा रही थी। उसकी तस्वीरें दिखाते हुए उसकी मम्मी का उत्साह बढ़ता ही जाता था। उसकी मेधा और गुणों का बखान करते वे थक नहीं रहीं थीं। उस दिन उससे विदा लेते मैं खुश भी थी और उदास भी। उस दिन के बाद जब भी हमारी बातें होतीं तो उनमें एक संकोच होता। हमने तय किया कि जो बातें फोन पर खुलकर नहीं कर पाते लिखकर करेंगे। उसकी और मेरी सिलसिलेवार हुई बातों में से कुछ बातों पर मेरी नज़र गई। लगभग सात महीने पहले की हमारी व्हाट्सएप चैट सामने खुली पड़ी थी –

'आजकल क्या सोचती हो?'

'कुछ नहीं, बस यूँ ही। दिनभर बिस्तर पर पड़े–पड़े लगता है कि इस बिछौने की तरह ही बेजान हो गई हूँ। बस और क्या।'

'बिस्तर पर पड़े–पड़े तो और भी सोचा जा सकता है। जब तन अवश होता है तभी मन के भाव ज्यादा जाग्रत होते हैं ..है न? तो बताओ आजकल तुम्हारे दिमाग़ में क्या चल रहा होता है ..बताओ भी।'

'अच्छा नहीं मानोगी। जिद्दी हो। तो सुनो आजकल एक ही ख्याल बार–बार आता है कि मैं मर जाऊँगी तो कौन रोएगा।'

'दुत्त!! ऐसा क्यों सोचती हो। सभी रोएंगे.. सभी।'

'ना, सभी अपने–अपने कारणों से रोते हैं, कोई किसी के लिए नहीं रोता।'

'हुँह! ऐसा नहीं है। एक मृत्यु ही ऐसी अवस्था है जिसमें परिचितों के साथ अपरिचित भी रो पड़ते हैं। कठोर भी सनेही हो जाते हैं।'

'यह सब बेकार की बातें हैं, छलनाएँ हैं। समझीं! सभी अपने कारणों से रोते हैं। मृतक किस–किस के लिए कितना–कितना उपयोगी था। यह सोच–सोच रोते हैं। जो आजीवन दूसरों पर बोझ बना हो उसके लिए कौन रोता है। तुमने देखी है भारी बोझ के तले दबे आदमी की आँखें, बोझ से मुक्ति के लिए कैसे छटपटाती हैं। अनुपयोगी व्यक्ति भी ऐसा ही बोझ है। इसलिए कहती हूँ कि मेरे लिए कोई नहीं रोएगा।' वह स्माइल की इमोजी में हँस रही है। भरी आँखों से असहाय–सी हँसी।

'परेशान हो?'

'तुम्हें और कोई काम नहीं, मेरा मन टोहने के सिवा। क्या सोचती हूँ? नहीं बताती जाओ।'

'मर जाओगी देह की गठरी ढोते–ढोते। कोई नहीं जान पाएगा मन में क्या था तुम्हारे। चलो बता भी दो, आजकल क्या सोचती हो?'

'मानोगी नहीं न?'

'ना, एकदम नहीं।'

'तो सुनो, सोचती हूँ कि प्रेम तन की दशा है या मन की?

'बेशक तन–मन दोनों ही की। मन क्या हवा में तैरता है? रहता तो इसी देह में है न।'

'हाँ लेकिन जिसकी देह होकर भी न हो? माने मेरी तरह हो....अशक्त। इतनी दुर्बल कि दीन होना पड़े, हीन होना पड़े। रोजमर्रा के कामों के लिए भी दूसरों पर आश्रित होना पड़े। यहाँ तक कि कंधे पर कोई विषैला जीव जान लेने आ बैठा हो और आप उसे देखते हुए भी परे न हटा पाए। आकुल–व्याकुल हो हटाने की कोशिश करें। खूब जोर–जोर से चीखें–चिल्लाएँ लेकिन अपनी ही मदद को बाहें उठ न पाए। कंधे को जोर से क्या हल्के से भी झिंझोड़ पाने की शक्ति न हो आपमें। एक हल्की सी जुंबिश, एक धीमी सी हरकत–भर भी जान न हो आपके शरीर में। ऐसे शरीर के मन को कौन देखता है?

वही जो मन समझता है?'

'हा हा हा भोली हो तुम। ऐसे बेजान शरीर के मन को कोई नहीं समझता। लोग पहले यह चाहते हैं कि कोई उन्हें समझे फिर बाद में वे किसी को जानने के क्रम में अपना पहला डग भरते हैं।'

'इतना निराश नहीं होते। उदास न हो प्लीज! तुम्हारे लिए भी होगा इस जहान में। प्रेम भाव ही ऐसा है निश्छल–निष्पाप और उदार। उसे तुम्हारे इस बेजान शरीर से नहीं बल्कि सजीव–सुंदर मन से लगाव होगा'।

'ऐसा!'

'हाँ'

'तब तुमने दुनिया बिलकुल नहीं देखी, उतनी भी नहीं जितनी मैंने बरसों इसी खाट पर पड़े–पड़े देख ली है।' वह इमोजी में हँस पड़ी।

'अच्छा! क्या खूब! यहीं पड़े–पड़े? बंद घर के बिस्तर पर? क्या जाना तुमने?'

'यही कि प्रेम सर्वांग सुंदर देहधारियों के लिए है। ध्यान दो, सर्वांग सुंदर, मुझ जैसी अपंग के लिए तो बिलकुल नहीं।'

'तुम निराशा में ऐसा कह रही हो।'

'तो तुम्ही कोई ऐसी बात कह दो जिससे इस सुन्न देह में यकायक आशा संचरित हो उठे।'

'हाँ ...रुको ..ठहरो... कहती हूँ। कोई बना होगा तुम्हारे लिए भी...।'

'कौन? इतने बरस गुजरे मुझे तो नहीं दिखा। तुम जानती हो उसे ? देखा है?'

'नहीं, जानती तो नहीं। लेकिन होगा कोई..।'

'आज तुम्हे एक नया नाम देने का मन कर रहा है।'

'क्या?'

'झूठी तसल्ली' वह इमोजी में हँस रही है।

मैं इस बातचीत को जितनी बार पढ़ती हूँ उतनी बार पहली मुलाक़ात में देखी हुई उसकी छवि साकार हो उठती है। व्हील चेयर पर बैठी हुई एक सुंदर लड़की जिसका धड़ से नीचे का पूरा हिस्सा बेजान है। उसकी पतली बाहों का काँपता आलिंगन मुझे अडोल नहीं रहने देता। उसकी गर्वीली आँखें और हठीली मुस्कान बार–बार जताती हैं कि उसे 'बेचारी' समझा जाना कतई पसंद नहीं। उसके इर्दगिर्द उसकी माँ का सुरक्षा घेरा है जिसमें उसका स्वाभिमान सुरक्षित है। मैं उसके बारे में लगातार सोचते हुए मैसेज करती हूँ। बार–बार कॉल करती हूँ लेकिन वह नहीं उठाती। थक–हारकर मैं चुप लगा जाती हूँ। लगभग आठ दिन बाद व्हाट्सएप पर उसका मैसेज आता है — माँ नहीं रहीं। जीवन में अब कुछ नहीं बचा। यह नाम भी एक दिन नहीं रहेगा जिसे वह पुकारती थीं। जाने क्या सोचकर वे मुझे स्वयंसिद्धा कहती थीं। मैं आपसे नाराज़ हूँ। अब कभी बात नहीं हो पाएगी। अलविदा।

❑❑❑

माई कभी नहीं हँसेगी

भावना शेखर

प्रकाशित कृतियाँ 'जुगनी,' 'खुली छतरी,' 'साँझ का नीला किवाड़', 'जीतो सबका मन,' 'एक टीचर की डायरी,' 'एक सपना लापता' (उपन्यास) आदि कविता, कहानी और बालगीत की बारह पुस्तकें प्रकाशित। साहित्य सम्मेलन द्वारा साहित्य– सेवी और साहित्य शताब्दी पुरस्कार सहित अनेक सम्मानों से सम्मानित। संप्रति–ए एन कॉलेज पटना में अध्यापनरत।

माई सात साल की थी
खुशबू–सी मस्त
हवा–सी आवारा
झरने के झाग–सी उसकी हँसी थी,

पिछवाड़े के खुले आँगन की
ऊबड़–खाबड़ गीली मिट्टी में,
छपाक–छपाक कूदती
घूमती फिर घर भर में,

बिल्ली के पंजों से नन्हें फुटप्रिंट
धोखे में डाल देते माँ को,
पर्दे की ओट में छिपी दो आँखें
हँसतीं
चमककर कुछ और छोटी हो जातीं।

आज नीले आसमान में
सुर्ख था सूरज,
शांत बहती हिरोशिमा की नदियों पर
नाच रही थीं सुनहरी किरणें,

माई शकरकंद का नाश्ता करते
बीच–बीच में टांगों का झूला झुलाती,
तभी चमकी बिजली
चुँधिया गईं आँखें

नारंगी और सफेद अंगारों से,
काँपती इमारतें रेत के टीलों–सी
ढह रहीं एक–एक कर।
गुबार की एक आँधी
पलभर में छाई थी
प्रलय–सी तबाही थी।
क्यों? कैसे? का जवाब –
इनोला विमान !
जिसने लिटिल बॉय को उतारा था,
अमेरिका को देखना
एटॉमिक नजारा था।
खोला जब माई ने
हौले से पलकों को,
सुर्ख आसमान
स्याह कोयले–सा,
आग का इक दरिया
ज्वालामुखी के लावे–सा,
भिंच गईं पलकें खौफनाक मंज़र से
धौंकनी बन गया नन्हा–सा सीना।
माई!
पुकारा किसने ??
बच्ची सिहर उठी
सुलगती लपटों में ठिठुरते साज़–सी,
माँ की हाँक सुनकर
माई को लपककर सीने से लगाया
किमोनो के कमरबंद की पट्टी बनाकर
लपेटा सुलगते घावों पर
और पीठ पर पोटली बना
जिगर के टुकड़े को
दौड़ पड़ी बेसाख़्ता नदी की ओर।
माई चान, मुझे कसकर पकड़े रहो!
माई ने देखा वह तांडव

भीड़ के जले हुए कपड़े
फूली हुई पलकें
सूजे हुए होंठ
चिल्लाते हुए भूतों की
बड़ी–सी फ़ौज
दौड़ पड़ी थी नदी की ओर,
मरे–अधमरे लोगों के ढेर पर
बढ़ा जा रहा था
कूदता फांदता इक रेला।

खाली जमीन के टुकड़े पर
घिसटती अबाबील...
वह नन्हीं–सी चिड़िया,
पंखों के जलने से
अब उड़ न पाएगी
लंगड़ाते कदमों से
जल्द ही मर जाएगी।

याद आया माई को
वो खुला आँगन ...
ऊबड़–खाबड़ गीली मिट्टी...
वो पंजों के फुटप्रिंट वाली
लकड़ी की ज़मीन...
वो पर्दे की ओट से
झाँकती दो आँखें...

पर....पर वे आँखें
अब और छोटी ना हो पाएँगी,
इस हादसे की हैरत से
फटी ही रह जाएँगी,
अब माई कभी नहीं हँसेगी....
कभी नहीं हँसेगी।

❑❑❑

कविता

इस घने अंधेरे में

सोनी पांडेय

प्रकाशित कृतियाँ–'मन की खुलती गिरहें','बलमा जी का स्टूडियो', 'मोहपाश', 'उषाकिरण खान का कथा लोक'आदि। अनेक पत्र–पत्रिकाओं में अनेक आलेख प्रकाशित। उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान द्वारा यशपाल कथा सम्मान सहित अनेक सम्मानों से सम्मानित । संप्रति–गाथांतर हिंदी त्रैमासिक पत्रिका का संपादन एवं वर्तमान में कस्तूरबा विद्यालय में अध्यापन।

आँखें मूँदते कब रात ढल जाती थी
पता ही नहीं चलता था
कि इन दिनों रात का अंधेरा उतरता ही नहीं
मन से
उतरता नहीं मन से काई लगी सीढ़ियों का भय
इस बरसात में रखती हूँ थह–थहकर पैर पृथ्वी पर
यह धरती इतनी बीहड़ नहीं लगी पहले कभी
सन्नाटा चीरते हुए कान के परदे उतरने लगा है नसों में
उतरता नहीं मन से बिजलियों की कड़कड़ाहट का भय
कितनी जानें जा चुकी हैं इनके गिरने से
इनके गिरने से जो गिरे थे पेड़
वे फिर कभी नहीं उगेंगे इस धरती पर
वहाँ खुलेगा कोई गुणा–गणित का केंद्र
मैं अठानबे, निन्यानबे से आगे बढ़ ही नहीं पाई
उनके सौ का आँकड़ा
हजार से लाख की सीमा तोड़ बढ़ता गया
इधर लोग उलझे रहे गाँव के चकरोट में
उनकी फोरलेंथ सड़क गाँव की छाती चीर निकल गई
कितने बचे हैं खेत, बाग, बगीचे?
कितनी बची है हमारे बीच की दुनिया?

हमारी दुनिया के बिलाने के साथ ही उगती है
उनकी दुनिया
इस दुनिया की चकाचौंध
रौशनी के बढ़ते प्रकाश से मैं डरती हूँ
छिपा रही हूँ घर के तहखाने में
माँ के गीत
पिता के सपने
भाई की लकड़ी की गाड़ी
गिट्टी, चिप्पी, चूड़ी के रंगीन टुकड़े
वे खेल के सामान जो सुलभ थे सबके लिए
इस घिरते अंधेरे में जलाकर उम्मीद का दीया
रख देती हूँ आँगन के ताखे पर
रात यहीं उतरेगा चाँद
मैं बलइयाँ लेती उसे चूम लूँगी जी भर
मेरे आँगन में बचा रहे चंद्र खिलौना
कउवा मामा
दूध–भात की लोरी
कि इन दिनों बढ़ते अंधेरे में
सब भागना चाहते हैं छुड़ाकर हाथ
मेरी हथेलियों पर कुछ जुगनू बैठे लड़ रहें हैं
पूरी ताकत से
बबूल की झाड़ ही सही
थोड़ी–सी चुभन ही सही
थोड़ी–सी जलन ही सही
हम सह लेंगे दर्द की सारी हदें
लड़ते हुए अपने–अपने अंधेरे से।

❑❑❑

माँ

भरत प्रसाद

आलोचक, कवि और कथाकार। आलोचना, कविता और कहानी विधा में विशेष रुचि। 'कविता की समकालीन संस्कृति', 'चिंतन की कसौटी पर गद्य कविता', 'प्रकृति के पहरेदार' समेत अब तक सत्रह पुस्तकें प्रकाशित। मलखानसिंह सिसौदिया कविता पुरस्कार सहित कई पुरस्कारों से पुरस्कृत। संपादक. 'देशधारा' (साहित्यिक वार्षिक पत्रिका) और प्रधान संपादक– 'पूर्वांगन'(ई–पत्रिका)। संप्रति–प्रोफेसर, हिंदी विभाग, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग।

माँ बनते ही औरत
कोई और धातु हो जाती है
जमा हो जाता है रग–रग में
हद से ज्यादा लोहा
हद से ज्यादा पानी
हद से ज्यादा चट्टानें
निर्मलतम अहक की मिसाल है
माई का हृदय।
गलती से भी माँ को आँकने की गलती
मत करना
उसके गूढ़ हृदय में छिपी हैं
अज्ञात, अनछुई लिपियाँ
नहीं पढ़ी जा सकीं आजतक
भीतर दबी है कोई अनजानी भाषा
माँ की आत्मा पर लिखी हुई
जिसे पढ़ पाना संभव नहीं
सृष्टि की माया की तरह।
किसी भी गहराई में उतर जाना
माईपन में उतरने से ज्यादा आसान है
सारी ऊँचाइयाँ बौनी हो जाती हैं
माई का स्पर्श पा लेने के बाद
किसी भी त्याग का वजन

माई के आँसुओं से बहुत हल्का है
माटी की सोंधी गंध का फैलाव
माँ के एहसास के आगे कुछ भी नहीं।
माँ के लिए माँ हुए बगैर
माँ को जान पाना मुमकिन ही नहीं।
माँ सिर्फ़ एक शब्द नहीं
न ही केवल ध्वनि है
सिर्फ़ एहसास भी नहीं
रिश्तों की चौहद्दी में
माँ को बाँधने की नादानी
स्वत्न में भी मत करना।
जीते जी हद से ज्यादा मिट जाने की कला
यकीनन है—माई।

❑❑❑

अनूदित खंड
पंजाबी कहानी

अंबा मरजानी

मूलः रेमन

पंजाबी भाषा के समाजशास्त्रीय अध्ययन में विशेष रुचि। दो पुस्तकें प्रकाशित। कई पत्र–पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित। संप्रति–सरकारी सेवा में रहते हुए लेखन कार्य में रत।

अनुवाद : केवल गोस्वामी

कहानी, कविता, उपन्यास, आलोचना, निबंध, बाल साहित्य एवं अनुवाद की बीस पुस्तकें प्रकाशित। अनेक सम्मानों से सम्मानित। संप्रति स्वतंत्र लेखन।

बात कुछ अजीब है और कहानी किसी को मालूम नहीं, सब आँगन में इकट्ठे होकर अंबा के तिलमिलाए चेहरे की ओर देख रहे थे। बाबू दिबेश औरों से कुछ अधिक घबराए हुए थे, सुंदर पत्नी का पति होना भी कई मसले पैदा करता है। हर कोई देखता है और देखने वाले को रोका नहीं जा सकता और पति तनिक कम सुंदर हो तो पत्नी के किसी और पर मोहित हो जाने का भय बना रहता है। इस सबसे अधिक यदि पत्नी गुस्सैल हो तो उसके नखरे बर्दाश्त करना भी कठिन हो जाता है। और अंबा में यह तीनों बातें हैं बल्कि और भी कई चीजें अधिक हैं कम नहीं।

''तुम मुझे पहले पूरी बात बताओ, तुम्हें किसी ने कुछ कहा है?''

बाबू दिबेश ने आदमकद दरवाजे के पास खड़ी अंबा को भीतर आने में सहायता दी, तिमंजले मकान का यह बड़ा आँगन है। आँगन के बीचोंबीच लगे तुलसी के पौधे के पास पड़ी कुर्सियों पर सिर्फ अंबा बैठी है और घर के बाकी पंद्रह प्राणी उसका मुख देख रहे हैं।

साड़ी के पल्लू से आँखें पोंछती अंबा की ओर देखते शेष प्राणियों पर ज्यादा फर्क नहीं पड़ा पर दिबेश बाबू को जरूर पसीना आ रहा था। अंबा से दिबेश ने तनिक ऊँची आवाज में झिड़की की तरह कहा ''रोना बंद करो और मुझे बताओ तुम्हें किसी ने कुछ कहा है?''

''उसने मुझे छुआ है,''

कहकर वह जोर–जोर से रोने लगी।

''किसने?''? बाबू दिबेश ने हैरानी से पूछा और दूर खड़ी घर की औरतों ने अंबा के गिर्द घेरा बना लिया। ''बताओ अंबा तुम्हें किसने छुआ है?'' सबसे बड़े भाई की पत्नी ने सहानुभूतिपूर्वक पूछा।

''दर्जी ने।''

अंबा का उत्तर सुनकर सब आश्चर्यचकित एक–दूसरे का मुँह देखने लगे।

''मैंने कहा था न, नित नया नाटक, दिबेश की ही जिद थी सबसे सुंदर लड़की के साथ शादी करने की, अब बैठकर इसके नखरे देखते जाओ जैसे हमें और कोई काम ही नहीं है'' यह दिबेश की भाभी की आवाज थी, जिसको अंबा पसंद नहीं, अंबा इस घर में किसी को पसंद नहीं और इसका कारण यह है कि बाहर वह हर किसी को पसंद आ जाती है। घर के अंदर, घर के बाहर, हर गली हर चौराहे पर उसकी सुंदरता की चर्चा है। वह जब भी बाहर निकलती है लोग उसको देखते हैं। उस पर हर रंग खिल उठता है। उसके बालों पर गजरे महक जाते थे। संतरी साड़ी में वह संतरी लगने लगती, गुलाबी साड़ी में गुलाबी। शहर जाने वाली सारी बग्घियाँ उसके आगे–पीछे घूमने लगतीं। जो उसको देखता है उसकी बगल में बैठी औरतों को नहीं देखता, इसलिए वह घर में किसी को पसंद नहीं, क्योंकि वह बाहर हर किसी को पसंद आने लगती है।

''कौन सा दर्जी अंबा? मुझे उसका नाम बताओ।'' दिबेश अंबा के पैरों के पास बैठ गया।

''नीलांबर''

अंबा ने दर्जी का नाम बताया है। दिबेश बाबू के चेहरे का रंग उड़ गया है, घर की औरतें हँसने लगीं ''पर नीलांबर साठ साल से अधिक है अंबा, उन्हें तो पूरी तरह शायद दिखाई भी नहीं देता। तुमसे कोई भूल हुई है, नीलांबर ने सारी उम्र हमारे लिए काम किया है। वह ऐसा काम नहीं कर सकते।''

दिबेश एक साँस में बोल गया।

''दिबेश उन्हें सब दिखाई देता है, उन्होंने नाप लेते हुए मुझे छुआ है।''

''पर नाप लेते हुए तो छूना ही पड़ता है।''

दिबेश को अंबा की बातों पर बेहद हैरानी है।

''नहीं इस तरह नहीं छुआ जाता, यह अलग तरह का छूना है।'' पर अंबा नीलांबर की उम्र तो देख, उसके बच्चों के भी बच्चे हो गए है वह ऐसा काम नहीं कर सकते प्रिय, जरूर तुम्हें कोई भ्रम हुआ है।

''मुझे भ्रम कैसे हो सकता है?'' अंबा ने अपनी एक जेठानी की गर्दन को छूकर कहा कि इस तरह कौन छूता है? पर जेठानी ने अंबा के छूने पर कुछ महसूस नहीं किया, उसे अंबा की बातें पसंद नहीं, अंबा किसी को पसंद नहीं।

''आप उन्हें बुलावा भेजो अभी उनको यहाँ पर बुलवाओ। पूछिए उन्होंने ऐसा क्यों किया। मैं उनकी बेटी की तरह लगती हूँ आप बस एक बार उन्हें बुलावा भेजो। झूठे आदमी का चेहरा बता देता है। मुझे दुर्गा की सौगंध है देवाशीष मैं झूठ नहीं बोल रही'' अंबा की आवाज़ में इतनी दृढ़ता है तो कोई नीलांबर को संदेशा कैसे न भेजे। नीलांबर इतना बूढ़ा है कि वह गलत नहीं हो सकता पर अंबा इतनी सुंदर है उसको गलत कौन

कह सकता है। बाबू दिबेश ने नौकर के साथ नीलांबर को घर आने का संदेशा भेजा। संदेशा किसी हुक्म की तरह नहीं गया विनती जैसा संदेश है। नीलांबर की कमर किसी हुक्म का बोझ नहीं सह सकती।

ऐसा लगता है जैसे कोई बहुत बड़ी घटना घट गई है। नीलांबर का एक भाई संदेशा सुनने के बाद दुकान से घर आ गया।

अंबा ने तब तक रो–रोकर सारा काजल चेहरे पर फैला लिया। तभी नीलांबर ने दरवाज़े पर खड़े होकर नमस्कार किया, धोती कुर्ता, दरमियानी दाढ़ी, चेहरे पर झुरियाँ और मटमैली सफ़ेद पोशाक पर रिवायती काला कोट, दिबेश नीलांबर का बूढ़ा चेहरा देखकर वह बातें भूल गया जो उसने करनी थी। दिबेश बाबू के भाई ने दिबेश की उड़ती रंगत देखकर बात करने की कोशिश की।

नीलांबर साहब मामला कुछ संजीदा है और अजीब भी, माफ़ करना मुझे इस तरह के मामले में आना पड़ा अब क्या करें।

बाबू दिबेश को मालूम है, यह बात उनके करने से ही होगी।

''नीलांबर साहब! अंबा कुछ कह रही है, अंबा कह रही है कि आपने उसको छुआ है,'' बात सुनकर नीलांबर खड़े–खड़े जब्त हो गए उन्होंने हाथ जोड़कर कहा–

''दिबेश बाबू आपके पिता की चाकरी की है, आपको बच्चे से बड़ा होते देखा है आपका ब्याह जब हुआ मैं तब भी हाजिर था इस घर की रोटी खाई है, इस घर की औरत मेरे लिए दुर्गा है। मैंने यह पाप किया है तो मुझे इसी पल मौत आ जाए''

इन बातों का कोई जवाब नहीं नीलांबर के मुँह पर सच है, अंबा के मुँह पर भी सच है, तीसरा सच यह है कि दोनों सच्चे नहीं हो सकते।

''नीलांबर साहब, ऐसा भी हो सकता है कि आपको ख्याल न रहा हो और जाने अनजाने आप ने अंबा को यह महसूस करवा दिया हो, जो उचित नहीं। मैं समझता हूँ आपकी उम्र भी बहुत हो गई है कुछ भूलें हो ही जाती हैं, जानबूझकर नहीं होतीं पर हो जाती हैं।'' दिबेश की इन बातों ने अंबा की आँखों की पीड़ा बढ़ा दी है। उसके सुंदर चेहरे पर उदासी सह पाना और भी कठिन है। नीलांबर की आँखों में झाँककर बात करने से भी कठिन।

''यदि इस तरह हुआ है तो दिबेश बाबू इसमें मेरा दोष नहीं, यह अनजाने में कोई भूल हो सकती है। बदनीयत होकर यह गुनाह मैंने नहीं किया। अंबा मेरे बच्चों जैसी है।''

दिबेश बाबू अपनी जगह से खड़े हो गए थे, परेशान होकर कमरे में चले गए। नीलांबर उसी स्थान से लौट गए, औरतें होंठों में मुस्कुराती हैं और चली जाती हैं। दिबेश बाबू के भाई ने उदास अंबा के सिर पर हाथ रखा, निराश अंबा की इस सांत्वना में कोई आस्था नहीं।

क्या सचमुच ही कोई भूल हुई है? नीलांबर में कोई दोष नहीं? पलभर के लिए अंबा के मन में शंका उत्पन्न हुई है और दूसरे पल गायब भी हो गई, नीलांबर का हाथ उसे अपनी पीठ पर ज्यों का त्यों महसूस हुआ। गर्दन से फिसलते हाथ का उम्र के साथ कोई संबंध नहीं लगता, उसको इस प्रकार की छुअन का पता था। यह साधारण नहीं, समझना कठिन हो सकता है पर महसूस करना नहीं। इस पर यदि नीलांबर सच्चा है तो वह झूठी है, उसे मालूम है इस स्थिति की अन्य तस्वीर नहीं है।

सूरज अभी–अभी निकला है, रोशनी का रंग अभी सिंदूरी है, पर घर के प्राणी बहुत पहले उठ गए लगते हैं। अनेक प्राणियों ने बहुत से काम निपटा लिए हैं। रसोई के अंदर आज मछली की नहीं अपितु शुद्ध शाकाहारी भोजन की खुशबू आ रही है, घर के अंदर शुद्ध धूप के जलने का गहरा अहसास हो रहा है, लगता है जैसे दिवाली से भी बड़ा कोई दान है आज। नंगे पैरों काम करने वाली औरतों के मेहंदी लगे पाँवों की झांजरों की आवाज ही केवल घर की खामोशी को भंग कर रही है, भाग–भागकर काम करती औरतों के चेहरे पर समय से काम समाप्त करने का तनाव जरूर है पर माथे पर लगी बड़ी–बड़ी सिंदूरी बिंदियाँ हँस रही थीं। छोटे बच्चों को घर के बदले माहौल की भले ही समझ न हो पर उन्हें यह पता है कि आज देवगुरु ने आना है। दुर्गा मंदिर से निकलकर अंबा ने आँगन की कुर्सियों के गिर्द भागते बच्चे को शरारत न करने के लिए हल्का–सा घूरा है और अपनी कीमती साड़ी को संभालते हुए गोरे पाँवों के साथ दूसरी मंजिल की सीढ़ियाँ चढ़ गई है। उसके पहुँचने तक दिबेश बाबू नहा कर तैयार हो गए हैं। दिबेश बाबू को आरती की ऊष्मा देते हुए भाल पर तिलक लगाया है और चंदन उनकी गर्दन पर भी। जल्दी–जल्दी कमरे से बाहर जाती अंबा को दिबेश बाबू ने तनिक रोककर अपने पास बैठाया है। अंबा का हाथ पकड़कर माथा चूम लिया है। उसी पल उदासी की एक तह अंबा के चेहरे पर जम गई।

''अभी भी मुझसे नाराज हो अंबा?''

''नहीं नहीं'', अंबा ने चेहरे की रंगत ठीक करते हुए कहा, ''मैं नाराज़ नहीं हूँ, मैं सिर्फ उदास हूँ पर ठीक हो जाऊँगी और मैंने सोचा है दोबारा। कभी भी मैं नीलांबर की तरफ नहीं जाऊँगी, मेरे कपड़ों के लिए आप शहर से कोई और दर्जी बुलवा लेना''।

बाबू दिबेश ने मुस्कुराकर अंबा की यह बात मान ली है। कमरे में खिड़की से धूप का एक टुकड़ा आया देख उन्होंने बाहर हो रहे प्रबंधों के बारे में विचार किया। बाहर पंडित जी आ गए थे। किसी तैयारी में कोई कभी न रहे। देवगुरु ने पाँच वर्ष में एक बार घर आना होता है पर यह एक दिन उनको ऐसा लगना चाहिए कि हमने पाँच साल से उनके आने की तैयारी की है।

''हाँ–हाँ,'' अंबा का माथा हँसा है।

''मैंने अपने हाथों से सीता भोज, संदेश और पतुआ तैयार किया है। पुरुषों के करने वाले काम तो आप ही देखोगे पर यदि सीताभोज उनको पसंद न आया तो कह देना अंबा तुम सुंदर नहीं।''

अंबा को हँसते देखकर दिबेश ने सुख की साँस ली। घर में प्रवेश करते ही पंडित जी सीधे मंदिर की ओर चले गए। गौर से उन्होंने मंदिर की तैयारी को देखा है। फूलों को, चंदन को, लाल कपड़े को, शहद–घी, कपास, बत्ती और हवन सामग्री को।

सामने आने पर दिबेश के नमस्कार का उत्तर दिया है। अंबा को सिर से पाँव तक देखा है। अंबा को इस निगाह का पता है कि यह शुद्ध नहीं। कई बार सड़क पर खड़े आदमियों की नजर हू–ब–हू इसी प्रकार की देखी है। उनकी और पंडित जी की निगाह में क्या फर्क है? अंबा ने मन ही मन सोचा है, कोई बात नहीं। उसको मालूम है यह सुंदर होने की कीमत है। दूसरी कीमत भले ही यह है कि घर की औरतें उससे ईर्ष्या करती हैं और इस बात ने उसको बहुत अकेला कर दिया है, पर यह कोई विरोध करने वाली बात नहीं है। विरोध केवल नीलांबर का ही हो सकता था। बूढ़े जैसे पिता के हाथ शरीर पर नहीं झेले गए, यह आत्मा पर घाव देते हैं और आत्मा सारे अहसास याद रखती है, शरीर भले ही इस बात में नियमी न हो।

सूरज का गोला सिर पर चढ़ आया और नौकर ने हँसते हुए आँगन में आकर ऊँची आवाज में संदेशा दिया कि देवगुरु आ गए हैं, उनकी पालकी शहर में पहुँच गई है। बिजली की भाँति यह संदेशा घर के सारे कमरों, रसोई और गलियारों में फ़ैल गया। उत्साह से भरी औरतें–आदमी घर के मुख्य द्वार के पास एकत्रित होने लगे थे। अंबा के लिए यह अनुभव नया है। उसके दिमाग में उन पकवानों का ख्याल है जो उसने बनाए हैं, उसके भीतर अचानक उनके ठीक न होने का संदेह उत्पन्न हो गया है। भले ही वह यह जानती है कि वह ठीक ही बने हैं।

''देवगुरु आ गए थे''

फिर उसी नौकर ने संदेशा दिया है। अपने हाथों से दिबेश के भाई ने दहलीज साफ की है। देवगुरु के आने से घर के प्राणी, दीवारें, तुलसी के पौधे सभी श्रद्धा से परिपूर्ण थे। हर चीज सजीव हो गई है। सबकी एड़ियों में लहू तेज–तेज दौड़ रहा है। देवगुरु के चेहरे पर ऐसा ही नूर है जैसा देवों के चेहरे पर होता है। बड़ी–बड़ी सुंदर रहमत भरी आँखें, सिर पर बाल नहीं है पर एक चुटिया है। हाथ में पकड़ी माला चल रही है पर होंठ फड़कते नहीं। यह जाप उनके मन–मस्तिष्क में लगातार होता महसूस किया जा सकता है। दिबेश बाबू ने अपना सिर देवगुरु के पाँवों में रखकर तक तक नहीं उठाया तब तक देवगुरु ने स्वंय उन्हें नहीं उठाया। इस अनुभव ने अंबा के मन में वैराग्य उत्पन्न कर दिया है। दिबेश ने पैर छूने के लिए अंबा को इशारा किया है।

श्रद्धा युक्त अंबा ने अपने दोनों हाथ देवगुरु के पाँवों पर टिका दिए हैं। अंबा के मेहंदी वाले हाथों की छुअन से देवगुरु के पाँवों में कँपकँपी हुई है। आशीर्वाद लेने के लिए अंबा ने सिर उठाकर देवगुरु की आँखों में देखा है। देवों जैसी आँखों में सड़क पर खड़े बंदों जैसा कुछ उतरने लगा है। आशीर्वाद देते समय देवगुरु के हाथ सिर से फिसल कर गर्दन तक गए।

नीलांबर जैसी छुअन एक बार फिर अंबा के शरीर पर फिर गई।

❑❑❑

मृतकों का मार्ग

मूल : चिनुआ अचेबे

नाइजीरियाई उपन्यासकार। प्रमुख रचनाएँ– 'सोल–ब्रदर', 'थिंग्स फॉल अपार्ट'आदि कई पुस्तकें प्रकाशित। मैन बुकर अंतर्राष्ट्रीय पुरस्कार से पुरस्कृत।

सुशांत सुप्रिय

प्रतिष्ठित कथाकार,कवि तथा साहित्यिक अनुवादक। नौ कथा–संग्रह, चार काव्य–संग्रह तथा विश्व की अनूदित कहानियों के नौ संग्रह प्रकाशित। कई कहानियों का नाट्य मंचन एवं फिल्म निर्माण। संप्रति–सरकारी सेवा में रहते हुए स्वतंत्र लेखन में रत हैं।

अपेक्षा से कहीं पहले माइकेल ओबी की इच्छा पूरी हो गई। जनवरी, 1949 में उसकी नियुक्ति नड्यूम केंद्रीय विद्यालय के प्रधानाचार्य के पद पर कर दी गई। यह विद्यालय हमेशा से पिछड़ा हुआ था, इसलिए स्कूल चलाने वाली संस्था के अधिकारियों ने एक युवा और ऊर्जावान व्यक्ति को वहाँ भेजने का निर्णय लिया। ओबी ने इस दायित्व को पूरे उत्साह से स्वीकार किया। उसके जेहन में कई अच्छे विचार थे और उन पर अमल करने का यह सुनहरा मौक़ा था। उसने माध्यमिक स्कूल की बेहतरीन शिक्षा पाई थी और आधिकारिक रिकॉर्ड में उसे 'महत्वपूर्ण शिक्षक' का दर्ज़ा दिया गया था। इसी वजह से उसे संस्था के अन्य प्रधानाचार्यों पर बढ़त प्राप्त थी। पुराने, कम शिक्षित प्राध्यापकों के दकियानूसी विचारों की वह खुलकर भर्त्सना करता था।

"हम यह काम बखूबी कर लेंगे, है न? "अपनी पदोन्नति की खुशख़बरी आने पर उसने अपनी युवा पत्नी से पूछा।

"बेशक," पत्नी बोली, "हम विद्यालय परिसर में खूबसूरत बग़ीचे भी लगाएँगे और हर चीज़ आधुनिक और सुंदर होगी...। "अपने विवाहित जीवन के दो वर्षों में वह ओबी के आधुनिक तौर–तरीकों के विचार से बेहद प्रभावित हो चुकी थी। उसके पति की राय थी कि ये बूढ़े सेवानिवृत्त लोग शिक्षा के क्षेत्र की बजाए ओनित्शा के बाज़ार में बेहतर व्यापारी साबित होंगे और वह इससे सहमत थी। अभी से वह खुद को एक युवा प्रधानाचार्य की सराही जा रही पत्नी के रूप में देखने लगी थी जो स्कूल की रानी होगी।

अन्य शिक्षकों की पत्नियाँ उससे जलेंगी। वह हर चीज़ में फ़ैशन का प्रतिमान स्थापित करेगी...।

फिर, अचानक उसे लगा कि शायद अन्य शिक्षकों की पत्नियाँ होंगी ही नहीं। चिंतातुर नज़रें लिए उम्मीद और आशंका के बीच झूलते हुए उसने इसके बारे में अपने पति से पूछा।

"हमारे सभी सहकर्मी युवा और अविवाहित हैं। उसके पति ने जोश से भरकर कहा, पर इस बार वह इस जोश की सहभागी नहीं बन सकी।

यह एक अच्छी बात है। ओबी ने अपनी बात जारी रखी।

क्यों?

क्यों क्या? वे सभी युवा शिक्षक अपना पूरा समय और अपनी पूरी ऊर्जा विद्यालय के उत्थान के लिए लगाएँगे।"

नैन्सी दुखी हो गई। कुछ मिनटों के लिए उसके दिमाग में विद्यालय को लेकर कई सवालिया निशान लग गए; लेकिन यह केवल कुछ मिनटों की ही बात थी। उसके छोटे–से व्यक्तिगत दुर्भाग्य ने उसके पति की बेहतर संभावनाओं के प्रति उसे कुंठित नहीं किया। उसने अपने पति की ओर देखा जो एक कुर्सी पर अपने पैर मोड़कर बैठा हुआ था। वह थोड़ा कुबड़ा–सा था और कमज़ोर लगता था, लेकिन कभी–कभी वह अचानक उभरी अपनी शारीरिक ऊर्जा के वेग से लोगों को हैरान कर देता था। किंतु अभी जिस अवस्था में वह बैठा था उससे ऐसा लगता था जैसे उसकी सारी शारीरिक ऊर्जा उसकी गहरी आँखों में समाहित हो चुकी थी, जिससे उन आँखों में एक असामान्य भेदक शक्ति आ गई थी। हालाँकि उसकी उम्र केवल छब्बीस वर्ष की थी, वह देखने में तीस साल या उससे अधिक का लगता था। पर मोटे तौर पर उसे बदसूरत नहीं कहा जा सकता था।

क्या सोच रहे हो, माइक? नैन्सी ने पूछा।

"मैं सोच रहा था कि हमारे पास यह दिखाने का बढ़िया अवसर है कि एक विद्यालय को कैसे चलाया जाना चाहिए।"

नड्यूम स्कूल एक बेहद पिछड़ा हुआ विद्यालय था। श्री ओबी ने अपनी पूरी ऊर्जा स्कूल के कल्याण के लिए लगा दी। उसकी पत्नी ने भी ऐसा ही किया। श्री ओबी के दो उद्देश्य थे। वे शिक्षण का उच्च मानदंड स्थापित करना चाहते थे। साथ ही वे विद्यालय–परिसर को एक खूबसूरत जगह के रूप में विकसित करना चाहते थे। वर्षा ऋतु के आते ही श्रीमती ओबी के सपनों का बग़ीचा अस्तित्व में आ गया जहाँ तरह–तरह के रंग–बिरंगे, सुंदर फूल खिल गए। क़रीने से कटी हुई विदेशी झाड़ियाँ स्कूल–परिसर को आसपास के इलाक़े में उगी हुई जंगली, देसी झाड़ियों से अलग करती थीं।

एक शाम जब ओबी विद्यालय के सौंदर्य को सराह रहा था, गाँव की एक वृद्धा लँगड़ाती हुई स्कूल–परिसर से होकर गुज़री। उसने फूलों भरी एक क्यारी को धाँगा और स्कूल की बाड़ को पार करके वह दूसरी ओर की झाड़ियों की ओर ग़ायब हो गई। उस जगह जाने पर ओबी को गाँव की ओर से आ रही एक धूमिल पगडंडी के चिह्न मिले जो स्कूल–परिसर से गुज़रकर दूसरी ओर की झाड़ियों में गुम हो जाती थी।

"मैं इस बात से हैरान हूँ कि आप लोगों ने गाँववालों को विद्यालय–परिसर के बीच से गुज़रने से कभी नहीं रोका। यह कमाल की बात है। "ओबी ने उसमें से एक शिक्षक से कहा जो उस स्कूल में पिछले तीन वर्षों से पढ़ा रहा था।

वह शिक्षक खिसियाने–से स्वर में बोला, "दरअसल यह रास्ता गाँववालों के लिए बेहद महत्त्वपूर्ण लगता है। हालाँकि वे इसका इस्तेमाल कम ही करते हैं, पर यह गाँव को उनके धार्मिक–स्थल से जोड़ता है।"

लेकिन स्कूल को इससे क्या लेना–देना है? ओबी ने पूछा।

यह तो पता नहीं पर कुछ समय पहले जब हमने गाँववालों को इस रास्ते से आने–जाने से रोका था तो बहुत हंगामा हुआ था, शिक्षक ने कंधे उचकाते हुए जवाब दिया।

"वह कुछ समय पहले की बात थी। पर अब यह सब नहीं चलेगा, वहाँ से जाते हुए ओबी ने अपना फ़ैसला सुनाया। सरकार के शिक्षा अधिकारी अगले हफ़्ते ही स्कूल का निरीक्षण करने यहाँ आने वाले हैं। वे इसके बारे में कैसा महसूस करेंगे? गाँववालों का क्या है, हो सकता है निरीक्षण वाले दिन वे इस बात के लिए ज़िद करने लगें कि वे स्कूल के एक कमरे का इस्तेमाल अपने क़बीलाई रीति–रिवाजों के लिए करना चाहते हैं। फिर?"

पगडंडी के स्कूल–परिसर में प्रवेश करने तथा बाहर निकलने वाली दोनों जगहों पर मोटी और भारी लकड़ियों की बाड़ लगा दी गई। इस बाड़ को सुदृढ़ करने के लिए कँटीली तारों से इसकी घेराबंदी कर दी गई।

तीन दिनों के बाद उस क़बीलाई गाँव का पुजारी ऐनी प्रधानाचार्य ओबी से मिलने आया। वह एक बूढ़ा और थोड़ा कुबड़ा आदमी था। उसके पास एक मोटा–सा डंडा था। वह जब भी अपनी दलील के पक्ष में कोई नया बिंदु रखता था तो अपनी बात पर बल देने के लिए आदतन उस डंडे से ज़मीन को थपथपाता था।

शुरुआती शिष्टाचार के बाद पुजारी बोला, "मैंने सुना है कि हमारे पूर्वजों की पगडंडी को हाल ही में बंद कर दिया गया है...।"

"हाँ, हम स्कूल–परिसर को सार्वजनिक रास्ता बनाने की इजाज़त नहीं दे सकते," ओबी ने कहा।

"देखो बेटा, यह रास्ता तुम्हारे या तुम्हारे पिता के जन्म के भी पहले से यहाँ मौजूद था। हमारे इस गाँव का पूरा जीवन इस पर निर्भर करता है। हमारे मृत संबंधी इसी रास्ते से जाते हैं और हमारे पूर्वज इसी रास्ते से हो कर हमसे मिलने आते हैं। लेकिन इससे भी ज्यादा ज़रूरी बात यह है कि जन्म लेने वाले बच्चों के आने का भी यही रास्ता है...।"

श्री ओबी ने एक संतुष्ट मुस्कान के साथ पुजारी की बात सुनी।

हमारे स्कूल का असल उद्देश्य ही इस तरह के अंधविश्वासों को जड़ से उखाड़ फेंकना है। मृतकों को पगडंडियों की ज़रूरत नहीं होती। यह पूरा विचार ही बकवास है। यह हमारा फ़र्ज़ है कि हम बच्चों को ऐसे हास्यास्पद विचारों से बचाएँ। ओबी ने अंत में कहा।

"जो आप कह रहे हों, हो सकता है वह सही हो। लेकिन हम अपने पूर्वजों के रीति–रिवाजों का पालन करते हैं। यदि आप यह रास्ता खोल देंगे तो हमें झगड़ने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी। मैं हमेशा से कहता आया हूँ: हम मिल–जुलकर रह सकते हैं।" पुजारी जाने के लिए उठा।

"मुझे माफ़ करें। किंतु मैं विद्यालय परिसर को सार्वजनिक रास्ता नहीं बनने दे सकता। यह हमारे नियमों के विरुद्ध है। मैं आपको सलाह दूँगा कि आप अपने पूर्वजों के लिए स्कूल के बग़ल से होकर एक दूसरा रास्ता बना लीजिए। हमारे स्कूल के छात्र उस रास्ते को बनाने में आप की मदद भी कर सकते हैं। मुझे नहीं लगता कि आपके मृतक पूर्वजों को इस नए रास्ते से आने–जाने में ज्यादा असुविधा होगी! युवा प्रधानाचार्य ने कहा।

मुझे आपसे और कुछ नहीं कहना। बाहर जाते हुए पुजारी बोला।

दो दिन बाद प्रसव–पीड़ा के दौरान गाँव की एक युवती की मृत्यु हो गई। फ़ौरन गाँव के ओझा को बुलाकर सलाह ली गई। उसने स्कूल–परिसर के इर्द–गिर्द कँटीली तारों वाली बाड़ लगाने की वजह से अपमानित हुए पूर्वजों को मनाने के लिए भारी बलि चढ़ाए जाने का मार्ग सुझाया।

अगली सुबह जब ओबी की नींद खुली तो उसने खुद को स्कूल के खंडहर के बीच पाया। कँटीली तारों वाली बाड़ को पूरी तरह तोड़ दिया गया था। क़रीने से कटी विदेशी झाड़ियों और रंग–बिरंगे फूलों वाले बग़ीचे को तहस–नहस कर दिया गया था। यहाँ तक कि स्कूल के भवन के एक हिस्से को भी मलबे में तब्दील कर दिया गया था। उसी दिन गोरा सरकारी निरीक्षक वहाँ आया और यह सब देखकर उसने प्रधानाचार्य के विरुद्ध एक गंदी टिप्पणी लिखी। बाड़ और फूलों के बग़ीचे के ध्वंस से ज्यादा गंभीर बात उसे यह लगी कि 'नए प्रधानाचार्य की ग़लत नीतियों की वजह से विद्यालय और गाँव वालों के बीच क़बीलाई–युद्ध जैसी विकट स्थिति पैदा हो गई है।

❑❑❑

आइजो

मूल : अनिल बोडो

बोडो भाषा के प्रतिष्ठित कवि, अनुवादक, आलोचक, संपादक एवं लोकसाहित्यविद। एक दर्जन से भी अधिक मौलिक, अनूदित एवं संपादित पुस्तकें प्रकाशित। साहित्य अकादेमी पुरस्कार सहित अनेक पुरस्कार एवं सम्मान प्राप्त। संप्रति–गुवाहाटी विश्वविद्यालय में लोकसाहित्य विभाग में प्रोफेसर।

नों अर बायदि गुदुं
दै बायदि गुसु
नो अर नौं दै

नोंनि सोलेराव आखाइ दोनोब्ला
मोनदांगोन आं जिउआ बेसे दुंहाव
गोलोम बोथोरनि पिस् होजेननाय लामा

नों दै बायदि गुसु
हाजोनिफ्राय बाज्रुमबोनाय
बरफ गुसु दै
नोंनि बिखायाव आखाइ दोनोब्ला
सुदेम थाजिम जायो
दुंहाव थैनि गोदौनाय
नों सोमखोर गोथां गाबजों
समायफब होयो बुहुमनि मोनफ्रोम
मुहिनि गोनां सोरजि

नों एखनब्ला खायमा एखनब्ला गोमो
दसेनोबा गोजा दसेनोबा गुफुर
नोंनि गुस्थियाव नेना थायो
गोथौ गोजोनथिनि मंखराव हाबलांनायनि लामा
मेगनाव थाखुमाना थायो

मुलुग संसारखौ मोसा होनायनि आबां जुबां
दोंसे लेवा बेन्दों बायदि फानफबना लायो
नोंनि फोलाव हरनाय आखाइ फारनैजों
गोबाख्रबो मानसिनि उखैनाय
दुंहावैनो सुहाब जाना
नोंनि फेनदा फारनैजों
मन'ग्लाबना लायो सोरजिनि दुंबुर
बोज'बनाय गोरबोनि खबाम
लाभानि गोदौफबनाय
आदिम सोरजिनि फुंखा

❑❑❑

एक औरत

अनुवाद : अंशु सारडा 'अन्वि'

काव्य रचना, साक्षात्कार, अनुवाद, समीक्षा आदि में विशेष रुचि। विभिन्न राष्ट्रीय पत्र–पत्रिकाओं, समाचारपत्रों और पुस्तकों में प्रेरक साहित्य लेखन। विशेष रूप से स्त्री विमर्श विषयों पर स्वतंत्र लेखन कार्य। संप्रति–पूर्वोत्तर के अग्रणी हिंदी समाचार पत्र 'दैनिक पूर्वोदय' में छह वर्षों से नियमित रूप से साप्ताहिक स्तंभ लेखन कार्य।

वह उतनी दहकती हुई है जैसे जलती हुई आग
वह उतनी ठंडी है जैसे पानी
वह आग है
वह पानी है
अपनी बाँह को उसके दिल पर रखो
तुम महसूस करोगे कि वह कितनी गरम है
जिंदगी की आग कितनी गरम होती है
उतनी गर्म जैसे अलकतरे से ढाली हुई कोई नई सड़क
वह उतनी ही ठंडी है जैसे पानी
जो पहाड़ियों से नीचे को बहता है
वह उतनी ही ठंडी है जैसे बर्फ
उसकी शांत गंभीरता की शीतलता को महसूस करने के लिए
अपनी हथेली को उसके हृदय पर रखना
तुम्हारा गर्म और पिघलता हुआ रक्त ठंडा हो जाएगा
अकस्मात संसार सुंदरता से हरा दिखने लगता है
उसके जादुई स्पर्श से
वह अब हरी दिखाई देती है
वह पीली दिखाई देती है शायद कुछ देर बाद

वह अब लाल दिखाई देती है
कुछ क्षण के बाद में वह सफेद दिखाई देने लगती है
उसके पास आओ और उसे स्पर्श करो
उसके अधरों पर, जो कि इंतजार में हैं
गहरे आकर्षण का प्रवेशद्वार
उसकी आँखों में छिपा हुआ है झूठ
तुमको धोखा देने की चाल
झूठ के खजाने की इस शरारती दुनिया में
जो अपनी लतिका जैसी बाहों से तुम्हें घनिष्ठ
और वासनापूर्ण आलिंगन करे
जितनी ठंडी उतनी गर्म
वो तुम्हें वैसे ही समाप्त कर देती है
जैसे कि पिघलता हुआ लावा
दिलों के ताल का सामंजस्य
पहले सृजन का बसंत।

❑❑❑

लोहे दी मिज़राब

मूल : वनिता

पंजाबी की चर्चित कवयित्री एवं आलोचक। 'सुपनियां दी पगडंडी', 'हरियां छावां दी कबर', 'बोल अलाप', 'मंदर सप्तक', 'खरज नाद एवं काल', 'पहर', 'घड़ियां' आदि अनेक पुस्तकें प्रकाशित। साहित्य अकादेमी, पंजाबी अकादेमी सहित अनेक प्रतिष्ठित साहित्यिक संस्थानों द्वारा सम्मानित। संप्रति स्वतंत्र लेखन

दादी,
तू सांभ के रक्ख
उह पिओ, दादे, पड़दादे वाला सन्दूक
मैं इस सन्दूक दी छनकार विच
रता वी नहीओं वरचणा
तेरी नूँह जाणदी कि पोती तेरी
इन्हा गहिणिआँ दे शिंगार तो है बागी
ते मैनूँ कतई चंगे नहीं लगदे इह तेरे
फुल–पॅट्टीआँ, रानीहारे, ते पंजांगड़े जड़ाऊ

मेरी माँ ने पढ़ लई सी
मेरीआँ अक्खां विच लिश्कदी
उह बागी नज़म
ते ऊह जान गयी सी
इन्हां हत्थां विच पंजांगड़े नहीं सजने
इन्हां हत्थां नें लिखणी है
सोने विच लद्दीआँ
मिट्टीआं दे साहां दी इबारत
माँ जान गयी सी
सोने दी मिज़राब नाल नहीं वजेगी सितार
इसदी कोमलता नूं पुंगारन लई
लोहें दीआँ तारां विंचों
सिरजण लची सारे रस
ज़रूरी है लोहे दी मिज़राब

❑❑❑

❑❑❑

लोहे की मिजराव

अनुवाद : रेखा सेठी

लेखक, आलोचक, संपादक और अनुवादक। विविध पत्र–पत्रिकाओं में लेख प्रकाशित। कुल पंद्रह पुस्तकें प्रकाशित।प्रमुख पुस्तकें– 'स्त्री– कविताः पक्ष और परिप्रेक्ष्य', 'स्त्री–कविताः पहचान और द्वंद्व'। 'वातायन अंतरराष्ट्रीय शिक्षा सम्मान' से सम्मानित । संप्रति–इंद्रप्रस्थ कॉलेज (दिल्ली विश्वविद्यालय) में प्रोफेसर के पद पर कार्यरत।

दादी,
तू सँभालकर रख
पिता, दादा, परदादा वाला संदूक
इस संदूक की झंकार
ज़रा भी नहीं बहला पाएगी मुझे।
तेरी बहू, माँ मेरी
जानती है कि तुम्हारी पोती
बागी है
इन गहनों के शृंगार से
मुझे तो ज़रा भी नहीं जँचते
ये तेरे रानीहार, माथा–पट्टियाँ या जड़ाऊ हथफूल
मेरी माँ ने पढ़ ली थी
मेरी आँखों में चमकती
वह बागी नज़्म।
और वह जान गई थी
कि इन हाथों में हथफूल नहीं सजेंगे
इन हाथों ने लिखनी है
सोने से लदी मिट्टियों की साँसों की इबारत।
माँ जान गई थी
सोने की मिजराव से नहीं बजता सितार
लोहे की तारों के बीच
संगीत की रस लहरियाँ सजाने को
ज़रूरी है लोहे की मिजराव।

❑❑❑

❑❑❑

धरोहर

भोलाराम का जीव

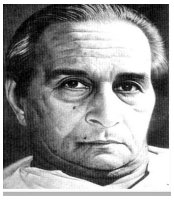

हरिशंकर परसाई

ऐसा कभी नहीं हुआ था।

धर्मराज लाखों वर्षों से असंख्य आदमियों को कर्म और सिफारिश के आधार पर स्वर्ग या नरक में निवास–स्थान 'अलाट' करते आ रहे थे। पर ऐसा कभी नहीं हुआ था। सामने बैठे चित्रगुप्त बार–बार चश्मा पोंछ, बार–बार थूक से पन्ने पलट, रजिस्टर पर रजिस्टर देख रहे थे। गलती पकड़ में ही नहीं आ रही थी। आखिर उन्होंने खोजकर रजिस्टर इतने जोर से बंद किया कि मक्खी चपेट में आ गई। उसे निकालते हुए वे बोले, ''महाराज रिकॉर्ड सब ठीक है। भोलाराम के जीव ने पाँच दिन पहले देह त्यागी और यमदूत के साथ इस लोक के लिए रवाना भी हुआ, पर यहाँ अभी तक नही पहुँचा।''

धर्मराज ने पूछा, ''और वह दूत कहाँ है?''

''महाराज, वह भी लापता है।''

इसी समय द्वार खुले और एक यमदूत बड़ा बदहवास वहाँ आया। उसका मौलिक कुरूप चेहरा परिश्रम, परेशानी और भय के कारण और भी विकृत हो गया था। उसे देखते ही चित्रगुप्त चिल्ला उठे, ''अरे, तू कहाँ रहा इतने दिन? भोलाराम का जीव कहाँ है?''

यमदूत हाथ जोड़कर बोला, ''दयानिधान, मैं कैसे बतलाऊँ कि क्या हो गया। आज तक मैंने धोखा नहीं खाया था, पर भोलाराम का जीव मुझे चकमा दे गया। पाँच दिन पहले जब जीव ने भोलाराम की देह को त्यागा, तब मैंने उसे पकड़ा और इस लोक की यात्रा आरंभ की। नगर के बाहर ज्योंही मैं उसे लेकर एक तीव्र वायु–तरंग पर सवार हुआ त्योंही वह मेरे चंगुल से छूटकर न जाने कहाँ गायब हो गया। इन पाँच दिनों में मैंने सारा ब्रह्मांड छान डाला, पर उसका कहीं पता नहीं चला।''

धर्मराज क्रोध से बोले, ''मूर्ख! जीवों को लाते–लाते बूढ़ा हो गया, फिर भी एक मामूली बूढ़े आदमी के जीव ने तुझे चकमा दे दिया।''

दूत ने सिर झुकाकर कहा, ''महाराज, मेरी सावधानी में बिलकुल कसर नहीं थी। मेरे इन अभ्यस्त हाथों से, अच्छे–अच्छे वकील भी नहीं छूट सके। पर इस बार तो कोई इंद्रजाल ही हो गया।''

चित्रगुप्त ने कहा, ''महाराज, आजकल पृथ्वी पर इस प्रकार का व्यापार बहुत चला है। लोग दोस्तों को कुछ चीज भेजते हैं और उसे रास्ते में ही रेलवेवाले उड़ा लेते हैं। हौजरी के पार्सलों के मोजे रेलवे अफसर पहनते हैं। मालगाड़ी के डब्बे–के–डब्बे रास्ते में कट जाते हैं। एक बात और हो रही है। राजनीतिक दलों के नेता विरोधी नेता को उड़ाकर बंद कर देते हैं। कहीं भोलाराम के जीव को भी तो किसी विरोधी ने मरने के बाद दुर्गति करने के लिए नहीं उड़ा दिया?''

धर्मराज ने व्यंग्य से चित्रगुप्त की ओर देखते हुए कहा, ''तुम्हारी भी रिटायर होने की उम्र आ गई। भला भोलाराम जैसे नगण्य, दीन आदमी से किसी को क्या लेना–देना?''

इसी समय कहीं से घूमते–घामते नारद मुनि वहाँ आ गए। धर्मराज को गुमसुम बैठे देख बोले, ''क्यों धर्मराज, कैसे चिन्तित बैठे हैं? क्या नरक में निवास स्थान की समस्या अभी हल नहीं हुई?''

धर्मराज ने कहा, ''वह समस्या तो कभी की हल हो गई। नरक में पिछले सालों में बड़े गुणी कारीगर आ गए हैं। कई इमारतों के ठेकेदार हैं, जिन्होंने पूरे पैसे लेकर रद्दी इमारतें बनाई। बड़े–बड़े इंजीनियर भी आ गए हैं, जिन्होंने ठेकेदारों से मिलकर पंचवर्षीय योजनाओं का पैसा खाया। ओयरसीयर हैं, जिन्होंने उन मजदूरों की हाजिरी भरकर पैसा हड़पा, जो कभी काम पर गए ही नहीं। इन्होंने बहुत जल्दी नरक में कई इमारतें तान दी हैं। वह समस्या तो हल हो गई, पर एक बड़ी विकट उलझन आ गई है। भोलाराम नाम के एक आदमी की पाँच दिन पहले मृत्यु हुई। उसके जीव को यह दूत यहाँ ला रहा था, कि जीव इसे रास्ते में चकमा देकर भाग गया। इसने सारा ब्रह्मांड छान डाला, पर यह कहीं नहीं मिला। अगर ऐसा होने लगा, तो पाप–पुण्य का भेद ही मिट जाएगा।''

नारद ने पूछा, ''उस पर इनकम टैक्स तो बकाया नहीं था? हो सकता है, उन लोगों ने रोक लिया हो।''

चित्रगुप्त ने कहा, ''इनकम होती तो टैक्स होता। भुखमरा था।''

नारद बोले, ''मामला बड़ा दिलचस्प है। अच्छा मुझे उसका नाम, पता तो बताओ। मैं पृथ्वी पर जाता हूँ।

चित्रगुप्त ने रजिस्टर देखकर बताया, ''भोलाराम नाम था उसका। जबलपुर शहर में घमापुर मोहल्ले में नाले के किनारे एक–डेढ़ कमरे के टूटे–फूटे मकान में वह परिवार समेत रहता था। उसकी एक स्त्री थी, दो लड़के और एक लड़की। उम्र लगभग साठ साल। सरकारी नौकर था। पाँच साल पहले रिटायर हो गया था। मकान का किराया

उसने एक साल से नहीं दिया, इसलिए मकान–मालिक उसे निकालना चाहता था। इतने में भोलाराम ने संसार ही छोड़ दिया। आज पाँचवाँ दिन है। बहुत संभव है कि अगर मकान मालिक वास्तविक मकान मालिक है, तो उसने भोलाराम के मरते ही, उसके परिवार को निकाल दिया होगा। इसलिए आपको परिवार की तलाश में काफी घूमना पड़ेगा।''

माँ–बेटी के सम्मिलित क्रंदन से ही नारद भोलाराम का मकान पहचान गए।

द्वार पर जाकर उन्होंने आवाज लगाई, ''नारायन! नारायन!'' लड़की ने देखकर कहा, ''आगे जाओ महाराज!''

नारद ने कहा, ''मुझे भिक्षा नहीं चाहिए; मुझे भोलाराम के बारे में कुछ पूछताछ करनी है। अपनी माँ को जरा बाहर भेजो, बेटी!''

भोलाराम की पत्नी बाहर आई। नारद ने कहा, ''माता, भोलाराम को क्या बीमारी थी?''

''क्या बताऊँ? गरीबी की बीमारी थी। पाँच साल हो गए, पेंशन पर बैठे, पर पेंशन अभी तक नहीं मिली। हर दस–पंद्रह दिन में एक दरख्वास्त देते थे, पर वहाँ से या तो जवाब आता ही नहीं था और आता, तो यही की तुम्हारी पेंशन के मामले पर विचार हो रहा है। इन पाँच सालों में सब गहने बेचकर हम लोग खा गए। फिर बरतन बिके। अब कुछ नहीं बचा था। फाके होने लगे थे। चिंता में घुलते–घुलते और भूखे मरते–मरते उन्होंने दम तोड़ दिया।''

नारद ने कहा, ''क्या करोगी माँ? उनकी इतनी ही उम्र थी।''

'ऐसा तो मत कहो, महाराज! उम्र तो बहुत थी। पचास–साठ रुपया महीना पेंशन मिलती तो कुछ और काम कहीं करके गुजारा हो जाता। पर क्या करें? पाँच साल नौकरी से बैठे हो गए और अभी तक एक कौड़ी नहीं मिली।''

दुःख की कथा सुनने की फुरसत नारद को थी नहीं। ये अपने मुद्दे पर आए, ''माँ, यह तो बताओ कि यहाँ किसी से उनका विशेष प्रेम था, जिसमें उनका जी लगा हो?'' पत्नी बोली, ''लगाव तो महाराज, बाल–बच्चों से ही होता है।''

''नहीं, परिवार के बाहर भी हो सकता है। मेरा मतलब है, किसी स्त्री–''

स्त्री ने गुर्राकर नारद की ओर देखा। बोली, ''हर कुछ मत बको महाराज! तुम साधु हो, उचक्के नहीं हो। जिंदगी–भर उन्होंने किसी दूसरी स्त्री को आँख उठाकर नहीं देखा।''

नारद हँसकर बोले, ''हाँ, तुम्हारा यह सोचना ठीक ही है। यही हर अच्छी गृहस्थी का आधार है। अच्छा, माता मैं चला।''

स्त्री ने कहा, ''महाराज, आप तो साधु हैं, सिद्ध पुरुष हैं कुछ ऐसा नहीं कर सकते कि उनकी रुकी हुई पेंशन मिल जाए। इन बच्चों का पेट कुछ दिन भर जाए।''

नारद को दया आ गई थी। वे कहने लगे, ''साधुओं की बात कौन मानता है?

मेरा यहाँ कोई मठ तो है नहीं। फिर भी मैं सरकारी दफ्तर में जाऊँगा और कोशिश करूँगा।''

वहाँ से चलकर नारद सरकारी दफ्तर में पहुँचे। वहाँ पहले ही कमरे में बैठे बाबू से उन्होंने भोलाराम के केस के बारे में बातें कीं। उस बाबू ने उन्हें ध्यानपूर्वक देखा और बोला, ''भोलाराम ने दरख्वास्तें तो भेजी थीं, पर उन पर वजन नहीं रखा था, इसलिए कहीं उड़ गई होंगी।''

नारद ने कहा, ''भई, ये बहुत–से 'पेपर–वेट' तो रखे हैं। इन्हें क्यों नहीं रख दिया?''

बाबू हँसा– ''आप साधु हैं, आपको दुनियादारी समझ में नहीं आती। दरख्वास्तें 'पेपर–वेट' से नहीं दबतीं। खैर, आप उस कमरे में बैठे बाबू से मिलिए।''

नारद उस बाबू के पास गए। उसने तीसरे के पास भेजा, तीसरे ने चौथे के पास, चौथे ने पाँचवें के पास। जब नारद पच्चीस–तीस बाबुओं और अफसरों के पास घूम आए तब एक चपरासी ने कहा, 'महाराज, आप क्यों इस झंझट में पड़ गए। आप अगर सालभर भी यहाँ चक्कर लगाते रहें, तो भी काम नहीं होगा। आप तो सीधे बड़े साहब से मिलिए। उन्हें खुश कर लिया, तो अभी काम हो जाएगा।''

नारद बड़े साहब के कमरे में पहुँचे। बाहर चपरासी ऊँघ रहा था, इसलिए उन्हें किसी ने छेड़ा नहीं। बिना 'विजिटिंग कार्ड– के आया देख, साहब बड़े नाराज हुए। बोले, 'इसे कोई मंदिर–वंदिर समझ लिया है क्या? धड़धड़ाते चले आए। चिट क्यों नहीं भेजी?''

नारद ने कहा, ''कैसे भेजता? चपरासी सो रहा है।''

''क्या काम है?'' साहब ने रोव से पूछा।

नारद ने भोलाराम का पेंशन–केस बतलाया।

साहब बोले, ''आप हैं वैरागी। दफ्तरों के रीति–रिवाज नहीं जानते। असल में भोलाराम ने गलती की। भई, यह भी एक मंदिर है। यहाँ भी दान–पुण्य करना पड़ता है। आप भोलाराम के आत्मीय मालूम होते हैं। भोलाराम की दरख्वास्तें उड़ रही हैं, उन पर वजन रखिए।''

नारद ने सोचा कि फिर यहाँ वजन की समस्या खड़ी हो गई। साहब बोले, ''भई, सरकारी पैसे का मामला है। पेंशन का केस बीसों दफ्तरों में जाता है। देर लग ही जाती है। बीसों बार एक ही बात को बीस जगह लिखना पड़ता है, तब पक्की होती है। जितनी पेंशन मिलती है, उतने ही स्टेशनरी लग जाती है। हाँ, जल्दी भी हो सकता है, मगर–'' साहब रुके।

नारद ने कहा, ''मगर क्या?''

साहब ने कुटिल मुसकान के साथ कहा, ''मगर वजन चाहिए। आप समझे नहीं। जैसे आपकी यह सुंदर वीणा है, उसका भी वजन भोलाराम की दरख्वास्त पर रखा जा

सकता है। मेरी लड़की गाना–बजाना सीखती है। यह मैं उसे दे दूँगा। साधु–संतों की वीणा से तो और अच्छे स्वर निकलते हैं।''

नारद अपनी वीणा छिनते देख जरा घबड़ाए। पर फिर सँभलकर उन्होंने वीणा टेबिल पर रखकर कहा, ''यह लीजिए। अब जरा जल्दी उसकी पेंशन का आर्डर निकाल दीजिए।''

साहब ने प्रसन्नता से उन्हें कुरसी दी, वीणा को एक कोने मे ंरखा और घंटी बजाई। चपरासी हाजिर हुआ।

साहब ने हुक्म दिया, ''बड़े बाबू से भोलाराम के केस की फाइल लाओ।''

थोड़ी देर बाद चपरासी भोलाराम की सौ–डेढ़ सौ दरख्वास्तों से भरी फाइल लेकर आया। उसमें पेंशन के कागजात भी थे। साहब ने फाइल पर का नाम देखा और निश्चित करने के लिए पूछा, ''क्या नाम बताया साधुजी आपने?''

नारद समझे कि साहब कुछ ऊँचा सुनता है। इसीलिए जोर से बोले, ''भोलाराम!''

सहसा फाइल में से आवाज आई, ''कौन पुकार रहा है मुझे? पोस्टमैन है? क्या पेंशन का ऑर्डर आ गया?''

नारद चौंके। पर दूसरे ही क्षण बात समझ गए। बोले, ''भोलाराम! तुम क्या भोलाराम के जीव हो?''

''हाँ,'' आवाज आई।

नारद ने कहा, ''मैं नारद हूँ। मैं तुम्हें लेने आया हूँ। चलो, स्वर्ग में तुम्हारा इंतजार हो रहा है।''

आवाज आई, ''मुझे नहीं जाना। मैं तो पेंशन की दरख्वास्तों में अटका हूँ। यहीं मेरा मन लगा है। मैं अपनी दरख्वास्तें छोड़कर नहीं जा सकता।''

❑❑❑

अर्थ तलाशते शब्द

राकेश शर्मा

कवि, पत्रकार और संपादक। अनेक पत्र–पत्रिकाओं और पुस्तकों में लेख एवं समीक्षाएं प्रकाशित। 'समय के हस्ताक्षर', 'अंतस के स्वर','गाँव में बसा मन', सहित अनेक कविता, कहानी और निबंध संग्रह प्रकाशित। श्रीकृष्ण सरल सम्मान (साहित्य अकादेमी, मध्यप्रदेश, भोपाल), नई धारा सम्मान सहित अनेक पुरस्कारों से सम्मानित। संप्रति– संपादक, 'वीणा' पत्रिका।

गौरव गौतम

विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में कई रचनाएँ/समीक्षाएँ प्रकाशित। संप्रति– शोधार्थी, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इंदौर।

भारतीय वाङ्मय में आधुनिक काल से पूर्व मुख्यतः काव्य ही साहित्य के अंतर्गत आता था। गद्य लेखन भी होता ही था तभी 'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति' जैसी उक्तियाँ आज भी प्रचलित हैं। किंतु गद्य का विकास आधुनिक युग में ही हुआ। गद्य में प्रचुर लेखन ने अनेक विधाओं को जन्म दिया जिनमें कहानी, उपन्यास, संस्मरण आदि के साथ 'साक्षात्कार' विधा का भी उन्नयन हुआ। जो अंग्रेजी के शब्द 'इंटरव्यू' का हिंदी अनुवाद है। यद्यपि 'आत्म साक्षात्कार' की बात भारतीय साहित्य की प्रमुख विशेषता है। जैसे जब तुलसी श्री गुरु की चरण रज से मनरूपी दर्पण साफ करने की बात करते हैं तो वह आत्म साक्षात्कार' की ही बात करते हैं। महावीर प्रसाद द्विवेदी, धर्मवीर भारती, प्रभाकर श्रोत्रिय की परंपरा के साहित्यकार और 'बहुरंग' एवं 'वीणा' जैसी पत्रिका के संपादक राकेश शर्मा जी की साक्षात्कार कृति 'अर्थ तलाशते शब्द' जहाँ लेखक के निजी जीवन के बारे में बताती है वहीं समय के परिप्रेक्ष्य में साहित्य की नब्ज़ भी टटोलती है।

भारतीय संस्कृति में उत्तर के बराबर ही प्रश्न तथा उत्तर देने वाले के समकक्ष ही प्रश्नकर्ता को भी महत्व दिया गया है। हम नचिकेता और गार्गी को उनके प्रश्नों के कारण ही याद करते हैं। यम–नचिकेता संवाद 'कठोपनिषद' में एवं गार्गी–याज्ञवल्क्य संवाद 'बृहदारण्यक' उपनिषद में वर्णित हैं। राकेश जी की इस कृति में भी प्रश्नकर्ताओं

अर्थ तलाशते शब्द (साक्षात्कार)/प्रकाशन–बिंब प्रतिबिंब प्रकाशन, शॉप नंबर4, ट्रैक ऑन कोरियर, फगवाड़ा, पंजाब–144401/संस्करण–2023/कुल पृष्ठ–198/मूल्य– 320रुपए

ने बड़े सटीक प्रश्न किए हैं जिनका उत्तर भी राकेश जी ने बड़ी बेबाकी और सहजता से दिया है चाहे वह उनके निजी जीवन से संबंधित प्रश्न हों अथवा साहित्य या राजनीति से संबंधित। 'राजनीति' को यहाँ सरकारी सत्ता या विपक्ष के रूप में ही प्रयुक्त नहीं किया है बल्कि व्यापक अर्थ में किया गया है जिसके अंतर्गत शिविरबद्ध लेखनक्रिया को भी शामिल किया गया है।

इस कृति में प्रश्न करने वाले राकेश जी के हमउम्र भी हैं और हमपेशा भी। जैसे विकास दवे जी और गोपाल माहेश्वरी जी संपादन का कार्य करते हैं। वहीं उत्कर्ष अग्निहोत्री जी, पिंकी एक्का जी का साहित्य में नवोदित आगमन हुआ है, निधि अग्रवाल जी पेशे से चिकित्सक हैं। आयु और पेशे में वैविध्य होने से प्रश्नों में भी विविध आयामों का समावेश हुआ है जिससे साहित्य के क्षितिज को व्यापकता मिली है।

राकेश शर्मा के लेखन व जीवन में सबसे ज्यादा प्रभाव तुलसीदास का और तुलसी साहित्य के अनुरूप आदर्श जीवन जीने वाले रामविलास शर्मा जी का है। विकास दवे जी के प्रश्न कि "आपको साहित्य में आने की प्रेरणा कहाँ से मिली"; का उत्तर देते हुए राकेश शर्मा जी कहते है कि "घर में श्री रामचरित मानस का पाठ पिताजी करते थे। उन्हें देखकर मैं भी पाठ करने लगा। अब लगता है कि इस ग्रंथ ने ही पूर्व जन्मों के सोए साहित्यिक संस्कार जगा दिए।" इस ग्रंथ की महत्ता के बारे में राकेश शर्मा जी कहते हैं "मेरे जैसे पता नहीं कितने और लोगों का जीवन इस ग्रंथ ने बदला होगा। यह तो केवल व्यक्तियों की बात है। मॉरिशस, सूरीनाम आदि अनेक राष्ट्रों की सांस्कृतिक आधारशिला इसी ग्रंथ पर टिकी है। जो लोग इसे केवल भक्ति का ग्रंथ मानते हैं वे पूरी तरह सही नहीं है। अपार काव्य सौंदर्य भी है, इसमें जीवन दर्शन भी है और जीवन का पथनयन करने वाला भी हैं।"

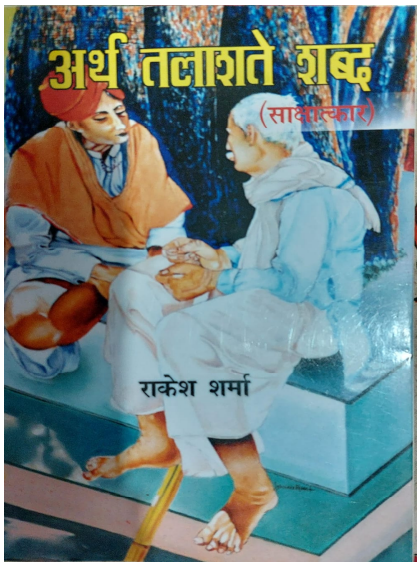

इस कृति में राकेश जी जब अपने जीवन की बात करते हैं तो अनायास ही मुझे तुलसीदास जी का जीवन याद आता है। यद्यपि तुलसीदास ने संत की भाँति जीवन जिया, निजी जीवन में वैराग्य को महत्व दिया वहीं राकेश शर्मा जी पूर्णतः गृहस्थ हैं किंतु तुलसी के काव्य में गृह और गृहस्थ के लिए कुछ आदर्श प्रस्तुत किए गए हैं उनका पालन राकेश जी कुछ–कुछ वैसे ही कर रहे हैं जैसा रामविलास शर्मा जी ने किया।

तुलसी को बचपन से ही माता–पिता का आसरा नहीं मिला था। 'कवितावली' में वो लिखते भी हैं कि ''मातु पिता जग जाय तज्यो विधि हू न लिखी कछु भाल भलाई।'' राकेश जी को भी माता–पिता का साथ बहुत दिन तक नहीं मिला।'' घर में बड़े भाई और उनकी पत्नियाँ थीं। चार बड़े भाई थे। इसलिए पत्नियाँ शब्द का प्रयोग किया है। भाभी शब्द का प्रयोग करूँ इसके लिए अंतर्मन तैयार नहीं है।'' शर्मा जी के इस वाक्य से उनकी पीड़ा का अंदाजा लगाया जा सकता है जो साठ बसंत बीतने के बाद आज भी आँखें नम कर देती है। तुलसीदास ने भी अपनी प्रतिभा के बल पर ही प्रसिद्धि और सम्मान प्राप्त किया। इसी तरह राकेश जी ने अपने परिश्रम, अध्ययन और धैर्य के बल पर ही सफलता के सोपान चढ़ते हुए अध्यापक, राजभाषा अधिकारी जैसी शासकीय सेवा से निवृत्त होने के बाद शताब्दी की ओर बढ़ती 'वीणा' पत्रिका के संपादक का दायित्व अवैतनिक रूप में निभा रहे है।

तुलसीदास जी को नरहरिदास जैसा गुरु भी मिला जिन्होंने उन्हें छूकर खेत में रामकथा सुनाई थी जब वह अचेत अवस्था में थे किंतु राकेश जी को ऐसा कोई गुरु नहीं मिला। डॉ. अभिषेक शर्मा राकेश जी से सवाल करते हैं कि ''आपकी दृष्टि में यदि कोई बहुमान्य व्यक्ति या गुरु हो, तो कृपया हमें उनके विषय में कुछ बताएँ। इस प्रश्न के जवाब में राकेश जी गुरु की परिभाषा बताते हुए कहते हैं कि ''जीवन में गुरु का महत्व वही है जो पिता की अँगुली पकड़कर शिशु के चलने का होता है।'' इसी उत्तर में वो आगे कहते है कि ''जीवन में गुरु की महिमा अपार है। वे भाग्यशाली हैं जिन्हें गुरु मिले। वे और भाग्यशाली हैं जो बिना गुरु को पाए ही इस संसार से पार हो गए।'' राकेश जी नियति को ही अपना गुरु मानते हैं। (इनका मतलब यह नहीं कि इनका भरोसा केवल भाग्य पर है बल्कि ''कर्म प्रधान विश्व करि राखा'' के प्रति उनकी पूर्ण श्रद्धा है।) तुलसीदास के जीवन में व्यापक परिवर्तन रत्नावली के कारण आया। महाप्राण निराला ने अपनी काव्य कृति 'तुलसीदास' में इसे बड़े ही बढ़िया तरीके से दिखलाया है। राकेश जी अपनी जीवनसंगिनी श्रीमती अर्चना शर्मा के बारे में कहते हैं कि ''मरी पत्नी अर्चना ने मेरे लिए श्रम भी किया और त्याग भी। मेरे किसी काम में रोक–टोक नहीं की, अवरोधों का तो प्रश्न ही नहीं। एक समर्पित मित्र की भाँति वे मुझे संभालती रही हैं और सँभाल रही हैं। घर का संचालन, बाजार, बच्चों की पढ़ाई और उनकी देख–रेख का दायित्व कुशलता से किया। इस सहयोग से मैं घर से निश्चिंत

रहा और वीणा समेत बारह पत्रिकाओं का संपादन कार्य कर पाया। मेरे जीवन में किसी और स्त्री का पदार्पण नहीं हुआ। इस कारण मैं और कोई भी श्रेय किसी और को दे भी नहीं सकता।''

राकेश जी की तुलसीविषयक समझ को उनकी कृति 'तुलसी का प्रजातांत्रिक दृष्टिकोण' में देखा जा सकता है लेकिन बाबा के प्रति उनके अपनत्व का एक कारण यह भी है कि तुलसी साहित्य ने उन्हें जीवन में आगे बढ़ने के लिए मानसिक रूप से तैयार किया जिसकी बानगी हम ऊपर देख चुके हैं।

रामविलास शर्मा भारतीय मानस की ऐसी बौद्धिकता है जिन्हें वामपंथ और दक्षिणपंथ दोनों अपने खेमे में लेना चाहते हैं किंतु एकांगी रूप से; समग्रता में नहीं। पहला पक्ष उनके आरंभिक लेखन को प्रगतिशील मानते हुए उनके अंतिम समय के लेखन के लिए यह कहते हैं 'उन्होंने इतिहास की शव साधना' की है। वहीं दूसरा पक्ष उनके आरंभिक लेखन को वैचारिक चश्मे से लिखा मानता है और प्रायः उसपर बात करने से बचता है। राकेश जी रामविलास शर्मा के ज्ञान की परिमिति और वैचारिक दृढ़ता के कायल हैं। इन्हें ''रामविलास शर्मा कठमुल्लों से सर्वथा भिन्न दिखाई पड़ते हैं। वे भारतीयता के उपासक हैं। मौलिक चिंतक हैं। उन्होंने कभी भी और कहीं भी भारतीय मूल्यों को यूरोप की अवधारणाओं के समक्ष छोटा नहीं माना, हमेशा ऊपर रखा। मार्क्सवाद तो उनके लिए एक टॉर्च थी जिसके प्रकाश में वे भारतीय समस्याओं का हल ढूँढ़ना चाहते थे।'' विकास दवे जी के प्रश्न के उत्तर देने के दौरान राकेश जी रामविलास शर्मा का एक कथन उद्धरित करते हैं कि ''ताजमहल, तुलसीदास और तानसेन की बराबरी विश्व में कोई कर सकता है तो उदाहरण दे।'' रामविलास जी ने अपनी अर्जित वैचारिक भूमि पर खड़े होकर ओरियंटलिस्ट विद्वानों के साथ उन भारतीय बुद्धिजीवियों को भी आड़े हाथों लिया जो केवल पश्चिमी वैचारिक साँचे में भारतीय समाज को ढालने पर आतुर थे। राकेश जी भी रामविलास जी से ज्ञान और प्रेरणा लेकर अपने लेखों में पश्चिम की चालबाजियों को आईना दिखाते हैं जिसे राकेश जी की कृति 'समय के पग चिह्न' के पहले ही लेख में देखा जा सकता है।

राकेश जी की इस कृति में 'लोक' से संबंधित प्रश्न भी पूछे गए हैं। डॉ सत्य प्रिय पांडे ने जो साक्षात्कार किया है उसका शीर्षक ही है– ''लोक से ही फूटता है सर्जना का अंकुरण।''

ऊपर हमने शर्मा जी पर तुलसी बाबा और रामविलास जी के प्रभाव की चर्चा की है। विदित है कि दोनों रचनाकार 'लोक' की गहराई से परिचित हैं। इनकी 'लोक' सम्मत धारणा अंग्रेजी के 'folk' की तरह नहीं है वरन् उससे व्यापक है। राकेश जी की लोकसंबंधी धारणा इन्हें पढ़कर, गुनकर तो विकसित हुई है लेकिन इनकी ''आँखों देखी'' का भी योगदान कम नहीं है। राकेश जी का आरंभिक जीवन गाँव में बीता। जहाँ वो पिता जी के साथ खेती भी करते थे और गाँव की रामलीला मंडली में परशुराम

जी का रोल भी अदा करते थे। राकेश जी की बढ़ती आयु के साथ शहर का विस्तार गाँव तक होने लगा जिससे गाँव का गँवईपन क्षीण होता गया। आज गाँव में रोड पहुँची है, बिजली आई है। लेकिन जितना लोगों का गाँव से पलायन हुआ, उससे गुणोत्तर श्रेणी में भावनाओं का पलायन हुआ है जिसे विवेकी राय ने अपने ललित निबंधों में मर्माहत पीड़ा के साथ व्यक्त किया है।

राकेश जी लोक का अभिप्राय बताते हुए उसमें चराचर जगत को शामिल करते हैं। ''मनुष्य यहाँ अकेला नहीं रह सकता है। उसकी जीवन–यात्रा के सहयात्री के रूप में पर्यावरण भी है और जीवन की जरूरतों के लिए खेत–खलिहान, पवन–जल, पशु–पक्षी सभी हैं।'' भारतीय मनीषियों ने इसीलिए प्रकृति के साथ पवित्रता का भाव जोड़ा ''माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः'' (अथर्ववेद 12.1.12) की धारणा इसीलिए लोक से जुड़ाव होने और लोक से जुड़ने के लिए ही विकसित की गई थी। साहित्य में भी वही रचना जन–जन तक पहुँची है जिसमें प्रकृति के साथ मानव का जुड़ाव हो। इसीलिए ''जनता के मानस को कैसी कविता चाहिए, यह जानना और सीखना हो तो लोकगीतों को सुनना चाहिए। लोकगीतों का अर्थ जानने के लिए, किसी को भी शब्दकोश खोलने की जरूरत नहीं पड़ती है। इनमें व्याप्त अर्थ दर्पण की तरह साफ हैं।'' आज सोशल मीडिया के 'यूट्यूब' प्लेटफॉर्म में मालिनी अवस्थी जी, शारदा सिन्हा जी और मैथिली ठाकुर की प्रसिद्धि इस बात की गवाही देती है कि जन के भीतरी मन में 'लोक साहित्य' के लिए प्रेम अभी भी बरकरार है।

राकेश जी के अनुसार ''भारत में लोक के दार्शनिक अर्थ भी हैं। लोक, परलोक अर्थात मृत्यु लोक और इसके बाद स्वर्ग लोक। इसे हम अंधविश्वास कहें यह हमारी आजादी है लेकिन इस सबके सहारे मनुष्य–जीवन को अनुशासन में रखा जाता है। हिंसा को जगह नहीं मिलती। किसी मान्यता के परंपरा में बदलने के पीछे अनेक कारण और सिद्धांत होते हैं। लोक–लाज में यही मनोवैज्ञानिक सिद्धांत काम करता है। लोक–लाज का डर सामाजिक पुलिस की तरह पीढ़ियों की रक्षा करता आया है। लोक–लाज के कुछ बंधन थे। कुछ बंदिशें भी थीं जिससे व्यक्ति के व्यक्तित्व के निर्माण में बाधाएँ थीं किंतु अंधविश्वास की समाप्ति के लिए लोक के परिष्कार की जरूरत है न कि बहिष्कार की क्योंकि व्यक्ति के चित्त का निर्माण लोक में ही होता है।

शर्मा जी तकनीकी युग के संपादक हैं जिसने छपास प्रवृत्ति को और बलवती बनाया है। स्वयं की रचना सभी को अच्छी लगती है जिसे लोग जल्द से जल्द छपते देखना चाहते हैं। संपादक की कुर्सी में बैठकर राकेश जी ऐसी प्रवृत्तियों से लगभग प्रतिदिन ही दो–चार होते है। उत्कर्ष अग्निहोत्री जी जब यह सवाल करते है कि ''संपादक होने के कारण आप रचे जा रहे साहित्य को बहुत भीतर तक समझ बूझ पा रहे हैं। इसके विषय में कुछ कहेंगे?'' तब राकेश जी उत्तर देते हुए कहते है कि ''आज के अधिकांश लेखक प्रायः बहुत जल्दी में हैं जिसका प्रतिफल यह हो रहा है कि रचना

अधकचरी रह जाती है। यश की कामना रचनाकारों में बहुत तीव्र है। साहित्य यश देता है मगर साहित्य से यश प्राप्त करने के लिए जो धैर्य चाहिए वह प्रायः देखने को नहीं मिलता। यह एक ऐसा युग है जब भाषा में पारंगत हुए बिना लोग रचना कर्म करने के लिए तैयार हुए हैं।''

भाषा, साहित्य और संस्कृति की जड़ है। भाषा का परिष्कार व्याकरण से होता है। यह कितनी चिंताजनक बात है कि जिस देश में विश्व का अब तक ज्ञात सबसे प्राचीन व्याकरण पाणिनि का 'अष्टाध्यायी' लिखा गया हो वहीं हिंदी में सर्वमान्य व्याकरणिक नियम न हो। राकेश जी अपने निबंधों और संपादकीय में तो यह बात उठाते ही हैं। इस साक्षात्कार कृति में भी उन्होंने अपनी यह चिंता प्रकट की है। राकेश जी साहित्य को भाषा का पुंकेसर कहते हैं और उसे सर्वहित की बात करने वाला मानते हैं। इसी संदर्भ मे डॉ शोभा जैन को दिए गए साक्षात्कार में राकेश जी कहते हैं कि ''लेखक को विचारधाराओं का कठमुल्ला नहीं होना चाहिए''।

'वार्ता का विवेक' कैसा होना चाहिए इसकी समझ और अनुभव लेखक को है जिससे कुछ प्रश्नों के उत्तर इस प्रकार दिए हैं कि मन में उठने वाले आगे के प्रश्नों का भी समाधान हो जाता है। ऊपर बताया गया है कि भारतीय संस्कृति में प्रश्नकर्ताओं को महत्व दिया जाता है। इसके लिए उन्हें स्वर्ग से बेदखल कर धरती पर भेजने की सजा नहीं दी जाती। राकेश जी ने अपनी कृति में प्रश्न करने वालों का भी विवरण विस्तार से दिया है। अपनी इस कृति में राकेश जी ने और भी अनेक प्रयोग किए हैं जैसे 'अंतस' के नाम से आत्मसंवाद करना। जिससे हम लेखक की नज़र से ही लेखक को जान पाते हैं कि उनके अंतर्मन में क्या चल रहा है। इन प्रयोगों के कारण यह कृति इस विधा की अन्य रचनाओं से अपना अलग स्थान रखती है।

❑❑❑

आलोचक का आत्मावलोकन

गोपेश्वर सिंह

सामाजिक सांस्कृतिक विषयों पर निरंतर लेखन। महत्वपूर्ण पत्र–पत्रिकाओं में लेख इत्यादि प्रकाशित। 'साहित्य से संवाद','आलोचना का नया पाठ','भक्ति आंदोलन और काव्य','आलोचना के परिसर' आदि कई पुस्तकें प्रकाशित। रामविलास शर्मा आलोचना सम्मान, कबीर विवेक आलोचना सम्मान सहित अनेक सम्मानों से सम्मानित। संप्रति–स्वतंत्र लेखन।

चंद्रभान सिंह यादव

विविध पत्र–पत्रिकाओं में लेख प्रकाशित। प्रमुख पुस्तकें –'भक्तिकाव्य में स्त्री चिंतन', 'हिंदी साहित्य में दलित चिंतन'। संप्रति–एसोसिएट प्रोफेसर, स्नातकोत्तर हिंदी विभाग, के. जी. के. (पी.जी.) महाविद्यालय, मुरादाबाद ।

"साहित्य को विचार के साथ आत्मानुभव के धरातल पर देखना मुझे हमेशा जरूरी लगता रहा हे। साहित्य रचना में जितनी भूमिका विचार की है, उससे कम आत्मानुभव की नहीं है। यह बात जितनी रचना के लिए सही है, उतनी ही आलोचना के लिए भी।" लेखक का उक्त कथन 'आलोचक का आत्मावलोकन' शीर्षक की सार्थकता को सिद्ध करता है। गोपेश्वर सिंह की यह नवीनतम कृति दो खंडों में विभक्त है। प्रथम खंड 'प्रवृत्ति, रचनाकार और आलोचक' पर केंद्रित है तो द्वितीय खंड में 'विविध विधाएँ' संकलित हैं। आजादी के बाद की हिंदी कविता, रामविलास शर्मा की आलोचना–दृष्टि, रेणुःकथा–शिल्प का नैरेटिव, छायावाद की अर्थवत्ता, रामकथा का बहुवचनात्मक पाठ, भीमराव अंबेडकर : विचार यात्रा की पड़ताल, हिंदी में शोध : दशा और दिशा नामक अध्यायों से विषय की विविधता और व्यापकता का सहज अनुमान लगाया जा सकता है। गोपेश्वर सिंह की आलोचनात्मक दृष्टि मात्र साहित्य तक सीमित नहीं है। उसमें समाज और इतिहास का मणिकांचन संयोग है। साहित्यिक के साथ राजनीतिक आंदोलनों की आँच से आपकी आलोचनात्मक समझ परिपक्व होती है। साहित्य–समाज के परिवर्तनों पर लेखक की पैनी नजर है– "हाशिए के समाज के साहित्य की प्रमुखता बढ़ी है। इस बदलाव से अब तक अनछुए विषय सामने आए हैं। सच को व्यक्त करने के तरीके में नयापन आया है। आलोचना में अस्मिता की पहचान का आग्रह प्रमुख हो गया है।" (पुस्तक की भूमिका से)

भारतवर्ष के इतिहास में आजादी का आंदोलन लंबे समय तक चलने वाला बड़ा आंदोलन है। जिसका प्रभाव कला–संस्कृति के हर क्षेत्र में देखा जा सकता है। आजादी के उल्लास के साथ विभाजन से उपजा दर्द भी मिला। विभाजन की महात्रासदी को कथा साहित्य में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। किंतु, "विश्व वेदना

आलोचक का आत्मावलोकन(आलोचना)/गोपेश्वर सिंह/प्रकाशक–वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली/संस्करण–प्रथम 2022 /पृ. सं.– 236/मूल्य– 299 रुपए

की चिंता करने वाली हिंदी कविता अपने ही देश की इस महात्रासदी से आँखें मूंदे रही। हिंदी के किसी कवि ने विभाजन की विभीषिका को मानो देखा ही नहीं। अपवाद सिर्फ अज्ञेय हैं जिन्होंने विभाजन पर 'शरणार्थी' सीरीज में ग्यारह कविताएँ लिखीं।'' (पृ.15) लेकिन आजादी के बाद सत्ताधारी नेताओं पर हिंदी कवियों की पैनी नजर है। महात्मा गांधी के नाम पर संचालित राजनीति पर नागार्जुन का व्यंग्य काबिले गौर है– 'बापू के भी ताऊ निकले तीनों बंदर बापू के/सरल सूत्र उलझाऊ निकले तीनों बंदर बापू के...।' आजादी के बाद बच्चन और दिनकर का सृजन अनवरत चलता रहा तो दूसरी ओर प्रगतिशील नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल और त्रिलोचन का भी। दूसरा सप्तक (1951) के माध्यम से प्रयोगवादी कवियों का समूह सामने आया। यह कहना अतिश्योक्ति पूर्ण नहीं होगा कि आजादी के बाद सबसे अधिक गंभीर प्रभाव छोड़ने वाली नई कविता रही। तुलनात्मक आधार पर कहा जा सकता है कि छायावाद के बाद उतना प्रतापी काव्य आंदोलन नई कविता का ही था। छायावाद की स्वीकृति सहज नहीं थी तो नई कविता के कवियों को भी स्वीकृति के लिए संघर्ष करना पड़ा। ''हिंदी कविता में प्रगतिशील बनाम गैर–प्रगतिशील की जो खींचतान थी उसकी चिंता किए बगैर 1980–90 के वर्षों में स्त्रियों, दलितों और आदिवासियों ने पुराने सारे काव्य विमर्शों को नकारते हुए कविता का नया दरवाजा खोल दिया।'' (पृ. 23) इन समकालीन विमर्शों में अनुभूति से अधिक स्वानुभूति को महत्वपूर्ण माना गया है।

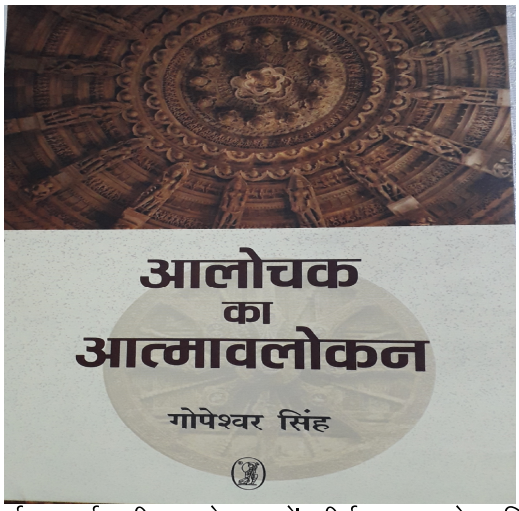

रामविलास शर्मा मार्क्सवादी आलोचना में शीर्ष स्थान के अधिकारी हैं। 45 खंडों मे प्रकाशित आपका संपूर्ण साहित्य वैचारिक प्रतिबद्धता के साथ व्यापक मानवीय सरोकारों का द्योतक है। आपका लेखन साहित्य के साथ भाषा विज्ञान, इतिहास, दर्शनशास्त्र, संगीत आदि अनुशासनों में अनुकरणीय है। अर्थात 'वे बहु–अनुशासनात्मक ज्ञान के धनी लेखक थे।' आपकी आलोचना का दायरा भक्तिकाल से लेकर छायावाद तक व्याप्त है। लोक जागरण का संबंध भक्ति साहित्य से है जबकि नवजागरण का

संबंध भारतेंदु युग और उसके बाद के साहित्य से है। ''रामविलास शर्मा भक्तिकाल के उदय में 'लोक जागरण' की महत्वपूर्ण भूमिका मानते हैं जो मूल रूप से सामंत विरोधी है और जिसकी मूल चेतना प्रेम की है। इसलिए रामविलास शर्मा किसी निर्गुण–सगुण और कबीर–तुलसी संबंधी विवाद में नहीं पड़ते। वे मानते हैं कि भक्ति काव्य की केंद्रीय धारा प्रेम की है और इस कारण कबीर और तुलसी दोनों प्रेममार्गी कवि हैं।'' (पृ.31) रामविलास जी मार्क्सवाद में गहरी आस्था के कारण भाववादी दर्शन व साहित्य में रहस्यवाद का विरोध करते हैं। गोपेश्वर सिंह रामविलास शर्मा की आलोचनात्मक शक्ति के साथ सीमाओं पर भी दृष्टिपात करते हैं– ''रामविलास शर्मा मुख्य रूप से छायावाद के आलोचक हैं।... प्रयोगवाद, नई कविता और प्रेमचंदोत्तर कथा साहित्य के मूल्यांकन में उनकी आलोचनात्मक गति और मति शिथिल पड़ने लगती है। वे तारसप्तक के कवियों में शामिल हैं, बावजूद इसके वे प्रयोगवाद, नई कविता का महत्व ठीक–ठीक नहीं रेखांकित कर पाते हैं।'' (पृ. 36)

नलिनविलोचन शर्मा का हिंदी आलोचना में वही स्थान है जो शीतयुद्ध में गुटनिरपेक्ष देशों का था। आप आलोचना में भौतिकता, यथार्थता, मानवता को आवश्यक मानते हैं। नलिन जी, रामचंद्र शुक्ल, निराला और प्रेमचंद को क्रमशः शिखर आलोचक, कवि और कथाकार मानते हैं। यह मान्यता रामविलास शर्मा के आलोचनात्मक निष्कर्ष से समानता रखती है। नलिन जी साहित्य और समाज की रूढ़ियाँ तोड़ने के कारण प्रगतिवादियों की प्रशंसा करते हैं तो दूसरी ओर उनकी निषेधकारी और एकांगी दृष्टि की आलोचना भी करते हैं। ''जब हिंदी में इतिहास–दर्शन की चर्चा से प्राायः लोग अनजान थे, तब उन्होंने 'साहित्य का इतिहास–दर्शन' जैसी महत्वपूर्ण पुस्तक लिखकर इतिहास–लेखन की आधार भूमि को मजबूती दी थी। वे मानते हैं कि साहित्य का इतिहास वस्तुतः गौण लेखकों का इतिहास है।'' (पृ. 55) यहाँ आलोचक की वैचारिक प्रतिबद्धता स्पष्ट है। इतिहास लेखन की समाजवादी पद्धति के केंद्र में भी राजा नहीं जनता होती है। कहा जा सकता है कि नलिन जी विज्ञान में विश्वास रखने वाले और अलौकिक सत्ता में अविश्वास रखने वाले आलोचक हैं।

फणीश्वर नाथ 'रेणु' पर चर्चा के बिना कथा आलोचना अधूरी रह जाती है। अकारण नहीं, पुस्तक में रेणु पर दो अध्याय है। पहला 'रेणुः कथा शिल्प का नैरेटिव' तथा दूसरा 'रेणु जी का कोना' है। पहला समीक्षात्मक है तो दूसरा संस्मरणात्मक। 'रेणु जी का कोना' पटना के कॉफ़ी हाउस का वह कोना है जहाँ वे प्रायः बैठते थे। सत्तर और अस्सी के दशक में कॉफ़ी हाउस, वह स्थान था जहाँ शहर के बुद्धिजीवी समाज–साहित्य–राजनीति पर चर्चा करते थे। स्वतंत्र, निष्पक्ष और निर्भीक होकर। नलिन विलोचन शर्मा का मानना है कि हिंदी उपन्यास साहित्य में गोदान के बाद यदि गत्यावरोध था तो वह 'मैला आँचल' के बाद हट गया। रेणु जी न सिर्फ कथा को ग्रामीण अंचल से लेते हैं अपितु भाषा को भी वहीं से उठाते हैं। आंचलिक उपन्यासों

में लोकभाषा के साथ लोकगीत, लोकसंगीत, लोकोक्ति और मुहावरे भी आते हैं। साहित्य के साथ संगीत की समझ रेणु जी को विशिष्ट बनाती है। ''रेणु यथार्थवाद से भिन्न अपनी कहानियों को 'ठुमरी धर्मा' कहते हैं और कथा–शिल्प का नया नैरेटिव बनाते हैं। नया नैरेटिव तब खड़ा होता है जब नए शिल्प के साथ नया यथार्थ रचा जाता है। नई कथा–भाषा, कहन की नई शैली, फूल और शूल में बिंधा सामाजिक यथार्थ, थोड़ा रोमानी अंदाज–यह सब प्रेमचंद की परंपरा का नए युग में प्रवेश था जो रेणु के हाथों घटित हो रहा था।'' (पृ.58) रेणु जी कोरे बुद्धिजीवी नहीं थे। वे किसानी अनुभव से संपन्न कथाकार और आंदोलनधर्मी रचनाकार थे। आप सन् 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन से लेकर 1974 की जेपी की संपूर्ण क्रांति में सहभागी रहे थे। अनेक बार जेल जाने के बाद भी क्रांतिकारी–समाजवादियों से संबंध बनाए रखे। रेणु जी समाज के शोषित–पीड़ित वर्ग से संपर्क–संबंध रखते थे। इन संबंधों से मिली ऊर्जा व अनुभव से रेणु का रचना–संसार समृद्ध होता है।

विजयदेव नारायण साही अपनी कविता का आधार 'आस्था' को मानते हैं। संख्या की दृष्टि से कम कविता लिखकर भी साही जी नई कविता को नया अर्थ विस्तार प्रदान करते हैं। 'मछलीघर' और 'साखी' मात्र दो कविता संकलन के द्वारा आपका कवि व्यक्तित्व निर्मित होता है। ''मछलीघर की भूमिका में साही ने अपनी कविताओं को 'आतंरिक एकालाप' कहा है। इससे यह भ्रम नहीं होना चाहिए कि साही की कविता में समाज निरपेक्ष होने का किसी तरह का प्रयत्न है। दरअसल साही की प्रगतिशीलता अलग तरह की है। वे कम्युनिस्ट प्रगतिशीलता के कायल नहीं हैं।'' (पृ.66) उनकी प्रगतिशीलता में कहीं भी भारतीयता का निषेध और विरोध नहीं है। उनकी कविताओं में नैतिकता और ईमानदारी की आभा है। जहाँ निरंतर जिज्ञासा और खोज की यात्रा है। उर्दू का प्रभाव कविता के भाषा–शिल्प पर ही नहीं संवेदन पर भी है। लेखक की निगाह में 'साही एक कुजात मार्क्सवादी आलोचक' हैं। 'जायसी' नामक पुस्तक साही की आलोचना का उत्कर्ष है। जिसमें साही ने जायसी को सूफी मानने की धारणा का खंडन अंतः और बहिर्साक्ष्य के आधार पर किया है। प्रमाणों के आधार पर जायसी को किसी मतवाद का प्रचारक नहीं, अपितु शुद्ध प्रेम का कवि सिद्ध किया है।

नामवर सिंह पर चर्चा के बिना हिंदी आलोचना पूर्ण नहीं हो सकती है। 'नामवर सिंह : आलोचक का आत्मावलोकन' अध्याय पुस्तक के केंद्र में है तो केंद्रीयता में भी। आलोचना का काम रचना को बोधगम्य बनाना ही नहीं है, अपितु पाठक–आलोचक के बीच संबंध स्थापित करना भी है। 'कविता के नए प्रतिमान' (1968) और 'दूसरी परंपरा की खोज' (1982) के बीच लंबा अंतराल होने के कारण विरोधियों ने व्यंग्य में नामवर सिंह को वाचिक परंपरा का आलोचक कहना शुरु कर दिया था। जबकि उनके व्याख्यान भी श्रोता–जनता के बौद्धिक शिक्षण का माध्यम हैं। आलोचक छायावाद को रहस्यवाद की तरह अबूझ पहेली बनाकर प्रस्तुत कर रहे थे तो नामवर जी ने उसे भक्तिकाव्य के समान महत्व देते हुए बोधगम्य बनाया। ''नामवर सिंह की पूरी आलोचना यात्रा नए रस्ते की खोज है। हिंदी में जो इकहरी मार्क्सवादी समझ उस ज़माने में काम कर रही थी, उसे बदलने में मुक्तिबोध के साथ नामवर सिंह ने महत्वपूर्ण भूमिका

निभाई। इस क्रम में वे रूढ़िवादी मार्क्सवादियों से टकराने में भी न हिचके और गैर–मार्क्सवादी लेखकों से संवाद करने से भी उन्होंने परहेज नहीं किया।'' (पृ.87) कहना न होगा कि नामवर सिंह आलोचना की दुनिया में लोकतांत्रिक मूल्यों के हिमायती हैं।

'भीमराव अंबेडकर : विचार यात्रा की पड़ताल अध्याय क्रिस्तोफ जाफ्रालो लिखित 'भीमराव अंबेडकर : एक जीवनी' पर आधारित है। यह व्यक्तिगत जीवन से अधिक वैचारिक चिंतन को महत्व प्रदान करने वाली जीवनी है। अमानवीय असमानता तथा जाति–व्यवस्था का विरोध करने वालों में बुद्ध, विवेकानंद, गांधी सवर्ण समाज से आते हैं तो कबीर, रैदास, चोखामेला, ज्योतिबा फुले अवर्ण समाज से। यहाँ गोपेश्वर जी का अंबेडकर के विषय में कथन उल्लेखनीय है– ''दलितों की मुक्ति की अथक लड़ाई लड़ने वाले भारत के सबसे बड़े और प्रखर नेता के रूप में उन्हें जो प्रतिष्ठा मिली, वह किसी को न मिली थी। दलित जातियों के राजनीतिक अधिकारों की न सिर्फ उन्होंने लड़ाई लड़ी, बल्कि उसे कानूनी जामा पहनाने में भी वे सफल हुए।'' (पृ.136) गांधी जी के अनुसार भारत की आत्मा गाँव में निवास करती है, किंतु अंबेडकर के अनुसार गाँव 'अज्ञानता के दड़बे, संकुचित दिमागों और सांप्रदायिकता की मोरी' हैं। भारत का सवर्ण समाज ही नहीं दलित समाज भी जातियों–उपजातियों में विभक्त था जो एक–दूसरे को अस्पृश्य मानती थीं। यही कारण था कि अंबेडकर राजनीतिक आजादी से अधिक प्राथमिकता सामाजिक आजादी को देते रहे। बाबा साहब के जीवन–दर्शन पर फ्रांसीसी क्रांति के नारों–समता, स्वतंत्रता ओर विश्वबंधुत्व का गहरा प्रभाव देखा जा सकता है। ''अंबेडकर ने दलितों के भीतर जो आत्मविश्वास और चेतना दी, उस महत्व को सभी मानते हैं। दलितों के कानूनी अधिकार के लिए उनका जो संघर्ष है, वह अन्यतम है। लेकिन गांधी ने गैर–दलितों के भीतर दलितों के प्रति मानवोचित व्यवहार का भाव पैदा करने की कोशिश की, उसका भी महत्व है।'' (पृ.149) ऐसे अनेक स्थानों पर गोपेश्वर सिंह की तुलनात्मक दृष्टि अतुलनीय है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल की सूत्रात्मक शैली का प्रभाव यत्र–तत्र दर्शनीय है। यथा–'विमर्शमूलक साहित्य ने नई रचनाशीलता के गवाक्ष खोले हें।

अशोक वाजपेयी : सृजनात्मक आलोचना..., तुम्हीं से मोहब्बत, तुम्हीं से लड़ाई तथा आलोचना इन दिनों के द्वारा समकालीन आलोचना की गंभीर पड़ताल की गई है। पुस्तक समीक्षा आलोचना की आधार भूमि तैयार करती है। यही कारण है कि कमलानंद झा की पुस्तक 'तुलसी का काव्य विवेक और मर्यादा–बोध, मैनेजर पांडे की 'आलोचना की सामाजिकता', कृष्णदत्त पालीवाल की 'भक्ति काव्य से साक्षात्कार' पर समीक्षात्मक आलेख हैं। ये आलेख पुस्तक समीक्षा के बौद्धिक क्षितिज को विस्तारित करने वाले हैं।

❑❑❑

संपर्क सूत्र

1. **तेनसुबम मंलेम्बा सिंह**, शोधार्थी, हिंदी विभाग, मणिपुर विश्वविद्यालय, कांचीपुर इंफाल–795003
2. **ह. सुवदनी देवी**, विभागाध्यक्ष, हिंदी विभाग, मणिपुर विश्वविद्यालय, कांचीपुर, इंफाल–795003 फोन– 9774452826 ई मेल– hsubadani.devi@gmail.com
3. **ओमप्रकाश शर्मा 'प्रकाश'**, सी–4बी/110, पॉकेट–13 जनकपुरी, नई दिल्ली–110058 फोन– 9870103433 ई मेल– baggaskdu@gmail.com
4. **रीना कुमारी चौधरी**, गारूलिया, ठाकुरबाड़ी रोड उत्तर 24 परगना, पिन–743133 फोन– 8240529732 ई मेल– Choudharyrina19@gmail.com
5. **दिनेश साहू**, हिंदी विभाग, सिक्किम विश्वविद्यालय, काजी रोड़ गंगटोक, सिक्किम–737101 फोन– 7864878427 ई मेल– dshahu@cus.ac.in
6. **मृगांक मलासी**, सहायक प्राध्यापक (संस्कृत), कला संकाय डॉ. शिवानंद नौटियाल राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कर्णप्रयाग (चमोली) उत्तराखंड–246444 फोन– 8010583262 ई मेल– mrigankmalasi@gmail.com
7. **अजीत प्रियदर्शी**, 1/358, विजयंत खंड, गोमतीनगर, लखनऊ–226010 फोन– 7376620633 ई मेल– ajitjales@gmail.com
8. **गुरमीत सिंह**, प्रोफेसर, हिंदी विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़–160014 फोन– 9815801908 ई मेल– gurmeetpu@gmail.com
9. **अनिता रश्मि**, 1, सी–डी ब्लॉक, सत्यभाषा ग्रैंड, कुसई डोरंडा, राँची–झारखंड–834002 फोन– 9431701893 ई मेल– rashmianita25@gmail.com
10. **सुरभि बेहेरा**, स्वरांजली, गड़ासाही, पो. जाँला, खोरधा(ओडिशा) भुवनेश्वर–752054 फोन– 9438621510 ई मेल– surabhibehera@gmail.com
11. **किशनलाल शर्मा**, 103, रामस्वरूप कॉलोनी, शाहंगज, आगरा–282010 फोन– 9760617001 ई मेल– Kishanlalsharma18750@gmail.com
12. **प्रमोद कोवप्रत**, प्रोफेसर, हिंदी विभाग, कालिकट विश्वविद्यालय, मलाप्पुरम जिला, केरल–673633 फोन– 9447887384 ई मेल– drpramodcu@uoc.ac.in
13. **ऋता शुक्ल**, मोराबादी, राँची, झारखंड–834008 फोन– 9431174319 ई मेल– shukirita@gmail.com
14. **सुमन सिंह**, एस–8/108, आर–1 डी.आई.जी.कॉलोनी खजुरी, वाराणसी–221002 फोन– 9889554341 ई मेल– ssingh445@gmail.com

15. **भावना शेखर**, 'शब्दायन' 1, विश्वश्वरैया कोऑपरेटिव ट्रेम्पोलिन पार्क के पास (कुसुम होम्स के सामने) रूपसपुर, बेली रोड़ पटना–801503 फोन. 8809931217 ई मेल– bhavnashekar8@gmail.com
16. **सोनी पांडे**, भारतीय शिक्षा परिषद, संस्कार चैनल, एफ–सी 16, फिल्म सिटी, सेक्टर–16 ए, नोएडा–201301 फोन– 9415907958
ई मेल– Pandeysoni.azh@gmail.com
17. **भरत प्रसाद**, प्रोफेसर, हिंदी विभाग, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय शिलांग–793022 फोन– 9383049141 ई मेल– bharatharpur25@gmail.com
18. **रेमन**, 'रेमन हाउस', स्ट्रीट नं.–3, संधु कॉलोनी, नियर सेंट सोलिडर स्कूल श्री मुक्तसर साहिब, पंजाब–152026 फोन– 7307111161
ई मेल– ramandeeprabbit@gmail.com
19. **केवल गोस्वामी**, जे–363 सरिता विहार, मथुरा रोड़, नई दिल्ली–110076 फोन– 9871638634 ई मेल– Kewal.goswami@gmail.com
20. **सुशांत सुप्रिय**, ए–5001, गौड़ ग्रीन सिटी वैभव खंड, इंदिरापुरम, गाजियाबाद–201014 फोन– 8512070086 ई मेल– Sushant1968@me.com
21. **अनिल बोडो**, एसोसिएट प्रोफेसर, लोकगीत अनुसंधान विभाग गुवाहाटी विश्वविद्यालय, गुवाहाटी–781014 फोन– 9864114151
22. **अंशु सारडा 'अन्वि'**, प्रेम ऑटोमोबाइल्स, एक्सिस बैंक के विपरीत, नियर सरफ बिल्डिंग, ए.टी.रोड़, असम–781001 फोन– 9864331662
ई मेल– anshusarda11@gmail.com
23. **वनिता**, एफ–23, राजौरी गॉर्डन, माधव पार्क के विपरीत, नियर जिया आइसक्रीम, नई दिल्ली–110027 फोन– 9811323640 ई मेल– vanitadoctor@yahoo.co.in
24. **रेखा सेठी**, 2ए, यमुना रोड, प्रथम तल, सिविल लाइंस दिल्ली–110054 फोन– 9810985759 ई मेल– reksethi22@gmail.com
25. **राकेश शर्मा,** मानस निलयम, एम–2, वीणानगर (सुखलिया के पास) इंदौर–452010 फोन– 9425321223 ई मेल– rakeshsharmaindore@gmail.com
26. **गौरव गौतम**, तुलनात्मक भाषा एवं संस्कृति अध्ययनशाला, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, खंडवा रोड, इंदौर–452016, फोन–6263610187,
ई मेल– gaurav7222919271@gmail.com
27. **गोपेश्वर सिंह**, सी–1203, अरुणिमा पैलेस, सेक्टर–4, वसुन्धरा, ग़ाज़ियाबाद–201012 (उ.प्र) ई मेल– gopeshwar1955@gmail.com
28. **चंद्रभान सिंह यादव**, हिंदी विभाग, के जी के पीजी कॉलेज, मुरादाबाद उत्तर प्रदेश–244001, फोन– 9412448575
ई मेल– dr.chandrabhan.kgk@gmail.com

❑❑❑

केंद्रीय हिंदी निदेशालय
भाषा पत्रिका की सदस्यता हेतु आवेदन पत्र

सेवा में,

निदेशक
केंद्रीय हिंदी निदेशालय, उच्चतर शिक्षा विभाग,
शिक्षा मंत्रालय, पश्चिमी खंड–7, आर. के. पुरम्, नई दिल्ली – 110066
ई.मेल – chdsalesunit@gmail.com
फोन नं. – 011–26105211 एक्सटेंशन नं. 201, 244

महोदय/महोदया,

कृपया मुझे भाषा (द्वैमासिक पत्रिका) का एक वर्ष के लिए / पाँच वर्ष के लिए/ दस वर्ष के लिए/ बीस वर्ष के लिए दिनांक ..... से सदस्य बनाने की कृपा करें। मैं पत्रिका का वार्षिक/ पंचवर्षीय/ दसवर्षीय/ बीसवर्षीय सदस्यता शुल्क ..... रुपए, निदेशक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नई दिल्ली के पक्ष में नई दिल्ली स्थित अनुसूचित बैंक में देय डिमांड ड्राफ्ट सं. ..... दिनांक ..... विश्लेषण भेज रहा/रही हूँ। कृपया पावती भिजवाएँ।

नाम : .....
पूरा पता : .....
.....
.....
मोबाइल/दूरभाष : .....
ई–मेल : .....
संबद्धता/व्यवसाय : .....
आयु : .....
पूरा पता जिस पर : .....
पत्रिका प्रेषित की जाए .....

सदस्यता	शुल्क डाक खर्च सहित
वार्षिक सदस्यता	रु. 125.00
पंचवर्षीय सदस्यता	रु. 625.00
दसवर्षीय सदस्यता	रु. 1250.00
बीसवर्षीय सदस्यता	रु. 2500.00

सदस्यता शुल्क सीधे www.bharatkosh.gov.in – Quick Payment – Ministry (007 Higher Education)- Purpose (Education receipt) में digital mode से जमा करवाई जा सकती है।

डिमांड ड्राफ्ट निदेशक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय के पक्ष में नई दिल्ली स्थित अनुसूचित बैंक में देय होना चाहिए। कृपया ड्राफ्ट के पीछे अपना नाम एवं पूरा पता भी लिखें।

नाम एवं हस्ताक्षर

नोट : कृपया पते में परिवर्तन होने की दशा में कम से कम दो माह पूर्व सूचित करने का कष्ट करें।

केंद्रीय हिंदी निदेशालय, शिक्षा मंत्रालय, उच्चतर शिक्षा विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली तथा कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर के संयुक्त तत्वावधान में कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर में दिनांक 14–21 सितंबर, 2023 तक 'हिंदीतरभाषी हिंदी नवलेखक शिविर' का आयोजन किया गया।

दिनांक 13–12–2023 से 15–12–2023 तक केंद्रीय हिंदी निदेशालय, शिक्षा मंत्रालय, उच्चतर शिक्षा विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली एवं मूलजी जेठा महाविद्यालय, जलगाँव (महाराष्ट्र) के संयुक्त तत्वावधान में 'हिंदीतरभाषी हिंदी नवलेखक शिविर' संपन्न।

केंद्रीय हिंदी निदेशालय, शिक्षा मंत्रालय, उच्चतर शिक्षा विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली एवं पंजाब केंद्रीय विश्वविद्यालय, बठिंडा, पंजाब के संयुक्त तत्वावधान में पंजाब विश्वविद्यालय में दिनांक 07–10–2023 से 11–10–2023 तक आयोजित 'हिंदीतरभाषी हिंदी नवलेखक शिविर' के उद्घाटन सत्र की तस्वीर।

दिनांक 13–12–2023 से15–12–2023 तक केंद्रीय हिंदी निदेशालय, शिक्षा मंत्रालय, उच्चतर शिक्षा विभाग, भारत सरकार तथा त्रिपुरा केंद्रीय विश्वविद्यालय, सूर्यमणिनगर, त्रिपुरा के संयुक्त तत्वावधान में 'भाषा' पत्रिका की ओर से 'भारतीय ज्ञान परंपरा और पूर्वोत्तर की भाषाएँ' विषय पर आयोजित राष्ट्रीय साहित्यिक परिसंवाद में भाग लेने वाले बाहरी विशेषज्ञों, स्थानीय विशेषज्ञों, प्रतिभागियों और विद्यार्थियों के साथ केंद्रीय हिंदी निदेशालय के माननीय निदेशक प्रो. सुनील बाबुराव कुलकर्णी जी।

पंजी संख्या. 10646/61
ISSN 0523-1418

भाषा (दवैमासिक)
BHASHA-BIMONTHLY
पी. ई. डी. 305-4-2023
700

भाषा

जुलाई–अगस्त 2023

केंद्रीय हिंदी निदेशालय
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार
पश्चिमी खंड–7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली–110066
दूरभाष:–011–20862356
एक्सटेंशन– 253/213/217
www.chd.education.gov.in
www.chdpublication.education.gov.in
bhashaunit@gmail.com